TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182362
UNIVERSAL LIBRARY

सुलभ-साहित्य-माला—१५

ब्रजमाधुरीसार

(सटिप्पण)

संपादक

वियोगी हरि

१९९९

हिंदी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

प्रथम संस्करण	सं० १९८०
द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण	सं० १९९०
तृतीय संशोधित संस्करण	सं० १९९६
चतुर्थ संस्करण	सं० १९९९

Checked 1969

प्रकाशक—हिंदी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

मुद्रक—गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग

पत्र-पुष्प

प्यारे ब्रजवल्लभ !

सेवक ने तुम्हारे लिये एक हार गूँथा है, उसमें तुम्हारी ही ब्रज-माधुरी-कुंज की कलियां चुन-चुन कर पिरोई गई हैं। क्या तुम, नाम के ही नाते सही, इस हार को अपना कंठाभरण बनाओगे ?

भक्तवत्सल ! विश्वास है, इस तुच्छ भेंट को अपनाकर इस दास को अवश्य कृतार्थ करोगे।

तुम्हारा,

वियोगी हरि

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् बड़ौदा-नरेश स्वर्गीय महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने बंबई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपए की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उसी सहायता से सम्मेलन इस "सुलभ-साहित्य माला" के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस "माला" में जिन सुंदर और मनोरम ग्रंथ-पुष्पों का ग्रंथन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिंदी-संसार सुवासित हो रहा है। इस "माला" के द्वारा जो हिंदी-साहित्य की श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय श्रीमान् बड़ौदा नरेश को है। श्रीमान् का यह हिंदी-प्रेम भारत के अन्य हिंदी-प्रेमी श्रीमानों के लिये अनुकरणीय है।

साहित्य-मंत्री,
हिंदी साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग

प्रकाशकीय वक्तव्य

इस संस्करण में पाठ के छोटे-मोटे सुधारों के अतिरिक्त पदटिप्पणी का क्रम बदल दिया गया है, जिस से स्थान-संकोच का लाभ तो हुआ ही है पाठकों की सुविधा भी बढ़ गई है। आशा है कि विद्यार्थीगण और साधारण पाठक समान रूप से इस नए संस्करण से लाभ उठावेंगे।

१–१०–४२

रामचंद्र टंडन
साहित्य-मंत्री

तीसरे संस्करण का वक्तव्य

इस ग्रंथ का यह तृतीय संस्करण बड़े ध्यान से संशोधित किया गया है। इस संशोधन में इस बात का विचार रक्खा गया है कि कवियों की कोई ऐसी रचना न सम्मिलित की जावे जो अत्यंत श्रृंगार पूर्ण या अश्लील हो। इस प्रकार का संशोधन इसलिये उचित समझा गया कि यह ग्रंथ अनेक परीक्षाओं के लिये स्वीकार किया गया है और विद्यार्थियों को उत्तान श्रृंगार की रचनाओं से दूर ही रखना उचित है। इस संशोधन में सम्मेलन के प्रधान मंत्री डा० बाबूराम सक्सेना और प्रबंध-मंत्री पं० रामलखन शुक्ल ने विशेष सहयोग प्रदान किया है। इसी संशोधन के कारण इस ग्रंथ की पृष्ठ-संख्या कुछ कम हो गई है।

हिंदी साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग
१२-४-३९

रामकुमार वर्मा
साहित्य-मंत्री

द्वितीय संस्करण का वक्तव्य

पुराना ब्रजभाषा-साहित्य आज जिस शोचनीय उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है, उस पर विचार करते हुए मुझे निस्संदेह संतोष होता है कि ब्रजमाधुरीसार का—१० वर्ष बाद ही सही—दूसरा संस्करण हुआ तो ! अपने तुच्छ परिश्रम का फल मुझे मिल गया, यही मेरे लिये बहुत है। ब्रजभाषा का सुंदर, सुमधुर साहित्य सदा आदर-स्थान पाता रहे, यही प्रार्थना प्रभु से है।

पहले संस्करण का 'वक्तव्य' बहुत लंबा था। उसमें मुझे खुद ही बहुत-सी बातें निरर्थक और कृत्रिम दिखाई दीं। ऐसी बनाई हुई अस्वाभाविक रोचकता मुझे स्वयं ही आज रुचिकर नहीं मालूम होती। अतः उसका प्रायः अधिकांश निकाल कर मैं बहुत थोड़े में ही अपना नया वक्तव्य 'ब्रजमाधुरीसार' के संबंध में नीचे देता हूं।

वैसे तो संस्कृत-साहित्य-सागर में श्रीमद्भागवत, गीतगोविंद, कर्णामृत, विदग्धमाधव, हंसदूत, भक्ति-संदर्भ प्रभृति अप्राकृत साहित्य के अमूल्य ग्रंथ-रत्न विद्यमान हैं ही, परंतु उस भाषा के पीयूष-पयोधि में, जिसमें कि :

मचलि-मचलि माँगी हरि माखन रोटा —

उस ब्रजभाषा के प्राचीन साहित्य में तो अपूर्व ही चीज़ें मिलेंगी। वह रस, वह भाव, वह माधुर्य मुश्किल से अन्यत्र देखने में आयेगा। उस युग में सूरदास, नंददास, हितहरिवंश, व्यास, रसखानि, नागरीदास इत्यादि भक्त-सत्कवियों ने प्रेम-जाह्नवी की दिव्य-दिव्य धाराएं बहा दी थीं। दशों दिशाओं में जगन्मोहन की मधुर मधुर बाँसुरी गूँजने लगी थी। सहस्रों संसार-परितप्त जीव सुशीतल प्रेम-निकुंज की सुखद छाया में विश्राम और शांति पाने लगे। सैकड़ों प्रेमोन्मत्त भक्त आपे को भूल कर नाच उठे थे। अहा !

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर ।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर ॥

इन भक्त-महात्माओं ने भक्ति-रस का जो अनुपम स्रोत बहाया था, वह बराबर बहता ही गया । कल ही की बात है, हरिश्चंद्र, रत्नाकर और सत्यनारायण ने इस कृष्ण-प्रेम-रस का पान कर ब्रजभाषा-साहित्य को विभूषित किया । हां, ब्रजभाषा के इस गये बीते ज़माने में भी इन सुकवियों ने उसी पुराने राग में प्रेम-भक्ति के मधुर गीत गाये । कौन कहता है कि इनके गीतों में स्थायित्व नहीं है ?

यह ठीक है, कि सहृदयवर सत्यनारायण निराशा की आह भर कर यह कह गये हैं कि :

पहिले को सो अब न तिहारो यह वृंदावन ;
जाके चारों ओर भये बहु विधि परिवर्तन ॥
बने खेत चौरस नये, काट घने वन-पुंज ।
उपवन को सम नहिं रह्यो, नहिं वन-लताकुंज ।

फिर भी उन्हीं की इस प्रार्थना पर :

गरजन सरस घनश्याम अब, दीन रस बरसाय ।
जासों ब्रजभाषा-लता हरी-भरी लहराय ॥

कान देकर ब्रजवल्लभ श्रीकृष्ण अपनी प्यारी ब्रजभाषा को सदा अपनाते ही रहेंगे । हमारी ब्रजभाषा-लता सदा हरी-भरी ही लहराती रहेगी । जब तक भारत का हृदयस्थल ब्रजप्रांत विद्यमान रहेगा, जब तक कालिंदी की श्याम धारा बहती रहेगी, जब तक ब्रजवल्लभ श्रीकृष्ण की मधुर मूर्ति हमारे हृदय-पटल पर खचित रहेगी, जब तक सूर और हरिश्चंद्र का नाम शेष रहेगा, तब तक ब्रजभाषा साहित्य का लोप होने का नहीं !

इस दूसरे संस्करण में थोड़ा-सा कुछ हेर-फेर मैंने किया है । 'अष्टछाप' के भक्त-कवियों में पहले केवल सूरदास, नंददास और कृष्णदास, ये तीन कवि थे । इस बार परमानंददास और कुंभनदास को भी ले लिया है । इनकी कविता कृष्णदास की कविता से कुछ कम महत्व की नहीं है ।

परमानंददास के कई पद तो सूरदास के पदों से भी टक्कर लेते हैं। इस प्रकार अब अष्टछाप के पाँच भक्त-कवि आगये हैं। नंददास के 'भ्रमर-गीत' से लेकर कुछ पद्य और बढ़ाये हैं। पाठ तो प्रायः कई पद्यों का शुद्ध कर दिया गया है। सूरदास के भी कुछ पद इस संस्करण में और जोड़ दिये गये हैं। कुछ सवैये रसखानि के भी इसी तरह और संकलित कर दिये हैं।

इस संस्करण में संग्रह के दो खंड कर दिये गये हैं। पहले खंड में तो सूरदास से लेकर ललितकिशोरी तक और दूसरे में बिहारी, देव, हरिश्चंद्र, रत्नाकर और सत्यनारायण रखे गये हैं। जिन भक्त कवियों ने केवल 'कृष्ण साहित्य' का ही प्रणयन किया और एक प्रेम-भक्ति को ही प्रधानता दी, प्रथम खंड में उन्हीं को मैंने स्थान दिया है। इसमें संदेह नहीं, द्वितीय खंड के कुछ कवि प्रथम खंड के कवियों से, कविता की दृष्टि से, बहुत आगे निकल जाते हैं पर उन्होंने कृष्ण-भक्ति के अलावा अन्य विषयों पर भी लिखा है। इसलिए उन्हें मैंने द्वितीय खंड में स्थान देना ही उचित समझा। इसमें 'प्रथम' और 'द्वितीय' कोटि-जैसी कोई बात नहीं है। मेरे इस खंड-विभाग को कोई 'श्रेणी-विभाजन' न समझें।

श्रीस्वामी हरिदासजी तथा गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी की संक्षिप्त जीवनी के संबंध में कुछ आपत्तियां उठाई गई थीं। जो प्रमाण उस समय मुझे उपलब्ध हुए थे उन्हीं के आधार पर वे संक्षिप्त जीवनियां लिखी गई थीं। स्वामी हरिदासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे या सारस्वत, इस पर मेरा कोई ख़ास आग्रह नहीं है। मैं तो उनको महान् भक्त के रूप में ही देखता हूं। यदि उनके सारस्वत ब्राह्मण होने के संबंध में प्रबल प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं तो मुझे वैसा मानने में कोई आपत्ति नहीं। श्री-हितहरिवंशजी के जन्म-संवत् में यदि कोई भूल हुई हो तो वह भी मैं मान लूँगा। मुझे इन बातों में कोई आग्रह नहीं। किसी संप्रदाय या व्यक्ति का दिल दुखाने के हेतु से यह जीवनियां हरगिज़ नहीं लिखी गई थीं। पहले संस्करण के वक्तव्य में मिश्रबंधुविनोद आदि साहित्यिक ग्रंथों की कुछ आलोचना की गई थी; तब की अपनी उस 'आलोचना-शैली'

से आज मैं बहुत दूर हो जाना चाहता हूं। इसी से वह सब अंश मैंने निकाल दिया है।

स्वर्गीय श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर' को यदि स्थान न देता तो निश्चय ही यह संग्रह अपूर्ण रहता। 'रत्नाकरजी' ब्रजभाषा के एक (शायद अंतिम) महाकवि थे, इसमें संदेह नहीं। उनका सारा जीवन ब्रजभाषा की साहित्य-सेवा में ही लगा रहा। भाषा और भाव दोनों पर ही उनका अच्छा खासा अधिकार था। 'उद्धवशतक' तो उनकी एक अमर रचना है। ब्रजमाधुरी-सार में मैंने 'उद्धवशतक' के ही कुछ पद्यों का संकलन किया है। मैं समझता हूं कि 'शतक' में हमें 'रत्नाकरत्व' की पूरी झाँकी मिल जाती है।

ब्रजमाधुरीसार में कुछ ऐसी भी रचनाओं का संग्रह है, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं: जैसे, गदाधर भट्ट, श्रीभट्ट व्यास, सूरदास मदन-मोहन, कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास आदि की रचनाएं। मुझे इन महात्माओं के हस्तलिखित ग्रंथों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस छोटे से संग्रह को फिर भी मैं तो अपूर्ण और अस्तव्यस्त ही समझता हूं। योग्यता और समय दोनों का ही जब यहां अभाव है, तब यह आशा करना व्यर्थ है कि मेरे अनाड़ीपने से विद्वानों को कुछ संतोष प्राप्त होगा।

इस ग्रंथ में आये हुए प्रत्येक महात्मा की जीवनी के आदि में एक छप्पय दिया गया है। ऐसा करने की प्रेरणा मुझे भक्तवर नाभाजी की भक्तमाल देख कर हुई। जिनके संबंध के नाभाकृत छप्पय न मिले वहां बाबू हरिश्चंद्र और गोस्वामी राधाचरण-रचित 'उत्तरार्द्धभक्तमाल' और 'नव-भक्तमाल' से काम चला लिया गया। किंतु, इसमें कुछ ऐसे भी महानुभाव आ गये जिनके संबंध के छप्पय, उपर्युक्त तीनों भक्तमालाओं में ढूँढ़ने पर भी, न मिल सके। इस मजबूरी की दशा में मैंने तत्संबंधी छप्पय स्वयं बना कर यथेष्ट स्थान पर रख दिये हैं। अशर्फ़ियों में कौड़ियां मिला देने की मेरी यह ढिठाई, आशा है, दयालु पाठक क्षमा करेंगे।

इस ग्रंथ का संकलन करने की शुभ सम्मति मुझे सब से पहले गोलोकवासी श्रद्धेय पं० राधाचरणजी गोस्वामी ने दे दी थी। आपने बड़े

अनुग्रहपूर्वक कई संत-महात्माओं के पद लिखा कर मुझे प्रोत्साहन दिया था। अतः उनका स्मरण मैं अत्यंत श्रद्धा-भक्ति से करता हूं। एक बात और। मैंने कठिन शब्दों के बोध के लिए प्रत्येक पद्य की कुछ पाद-टिप्पणियां लिख दी हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं इन पद्यों का भलीभाँति अर्थ समझता हूं। कविता समझने-समझाने की योग्यता वास्तव में मुझ में नहीं है।

अंत में, हिंदी साहित्य-सम्मेलन के सभापति पूज्य पुरुषोत्तमदासजी टंडन को हार्दिक धन्यवाद देता हूं जिनकी शुभेच्छा से ही सम्मेलन ने व्रजमाधुरीसार को प्रकाशित किया है।

हरिजन-सेवक-संघ,
दिल्ली
दीपावली, सं. २०१०

विनयावत
वियोगी हरि

विषय-सूची

पहला खंड

पृष्ठ

१—सूरदास १७

२—नंददास ४६

३—हितहरिवंश ६५

४—गदाधर भट्ट ७७

५—स्वामी हरिदास ८३

६—सूरदास मदनमोहन १०२

७—श्रीभट्ट ११०

८—हरिराम व्यास ११७

९—कृष्णदास १३७

१०—परमानंददास १४१

११—कुंभनदास १४६

१२—रसखानि १४९

१३—ध्रुवदास १६१

१४—आनंदघन १७५

१५—नागरीदास १८५

१६—अलबेलीअलि २०९

१७—चाचा हितवृंदावनदास २१७

१८—भगवतरसिक २२१

१९—हठी २३८

२०—सहचरिशरण २४७

२१—गुणमंजरीदास २५५
२२—नारायण स्वामी २६०
२३—ललितकिशोरी २६६

दूसरा खंड

२४—बिहारीलाल २८५
२५—देव ३००
२६—भारतेंदु हरिश्चंद्र ३१७
२७—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ३४७
२८—सत्यनारायण ३६६

पहला खंड

तक कोई पूर्ण प्रति नहीं मिली।[1] वह दिन कब आयेगा, जब संपूर्ण 'सूर-सागर' प्रकाशित होकर हिंदी-साहित्य को जगमगा देगा।

गोसाईं विट्ठलनाथजी ने सूरदासजी को पुष्टिमार्गीय आठ सर्वोत्तम कवियों में सर्वोच्च स्थान दिया था, जैसा कि स्वयं सूरदासजी ने कहा है :

थपि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप।

पारासोली गाँव में, गोसाईं विट्ठलनाथ के सामने, संवत् १६२० के लगभग सूरदासजी का शरीरांत हुआ। आपका अंतिम पद यह कहा जाता है :

खंजन नैन रूप-रस-माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल-पिंजरा न समाते॥
चलि-चलि जात निकट स्रवननि के, उलटि-पलटि ताटंक फँदाते।
'सूरदास' अंजन-गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते॥

सूरदासजी के अंतकाल के प्रसंग पर भारतेंदुजी ने लिखा है :

मन समुद्र भो सूर को, सीप भये चख लाल।
हरि-मुक्ताहल परत ही, मूँदि गये ततकाल॥

सूरदासजी ब्रज-साहित्य के जन्मदाता, परिपोषक एवं उद्धारक कहे जायँ, तो भी कोई अत्युक्ति नहीं। इसमें संदेह नहीं, कि यह हिंदी के वाल्मीकि या व्यास हैं। भक्ति-पक्ष में तो यह उद्धव के अवतार माने जाते हैं। वात्सल्यरस लिखने में तो आपने ग़ज़ब किया है। इसी प्रकार गोपियों का विरह और उद्धव-संवाद अपूर्व और अत्यंत चमत्कार-पूर्ण हैं। हमारा तो यह कहना है कि जिन्हें साहित्य का कुछ रसास्वादन लेना है, उन्हें अवश्य ही सूरदास के मधुर, भावपूर्ण पदों का पारायण करना चाहिए। 'सूर-

[1] इधर गोलोकवासी महाकवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' अनेक वर्षों के घोर परिश्रम के फल-स्वरूप 'सूरसागर' का एक सुंदर, प्रामाणिक संग्रह छोड़ गये हैं। उनके इस अधूरे काम को, कुछ विद्वान, सुना है पूरा कर रहे हैं। वास्तव में वह संग्रह अपूर्व होगा।

सागर' के गान से लोक और परलोक दोनों ही आनंद-दायक हो सकते हैं, इसमें संदेह नहीं। कवि-सम्राट् सूर के सम्बंध में कई भावुक रसिकजनों ने अपनी-अपनी अनुमतियां प्रकाशित की हैं। कतिपय लोक-प्रचलित सम्मतियां ये हैं :

तत्व-तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठि ।
बची-खुची कविरा कही, और कही सब झूठि ॥
उत्तम पद कवि गंग को, कविता को बलबीर ।
केशव अर्थ गंभीर को, सूर तीन गुन धीर ॥
किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर ।
किधौं सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत सरीर ॥
सूरदास बिन पद रचना अब कौन कविहि करि आवै ?
सूर-कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै ?

सूरदास के निम्नलिखित ग्रंथों का पता चलता है :

१. सूर-सारावली; २. सूरसागर (अपूर्ण); ३. साहित्य-लहरी (दृष्टि-कूटक-पदावली), ४. ब्याहलो; ५. नल-दमयंती; ६. हरिवंश टीका। इनमें से अंतिम तीन अप्राप्य हैं।

संभव है ये पुस्तकें किसी अन्य सूरदास की लिखी हों। 'सूर-सारावली' और 'साहित्य-लहरी','सूरसागर' से निकाली गई हैं। सुतराम्, 'सूरसागर' ही सूर का एकमात्र बृहद् ग्रंथ है। इस अगाध सागर में अनेक रत्न भरे पड़े हैं। नीचे कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं :

बिलावल

चरन कमल बंदौं हरि राई[1] ।
जाकी कृपा पंगु[2] गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाई ॥
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र[3] धराई ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय, बारबार बंदौं तिहि पाई ॥ १ ॥

[1]राजा। [2]लंगड़ा। [3]राजछत्र।

गौरी

मेरी तौ गति पति[1] तुम अंतहि[2] दुख पाऊं ।
हौं कहाय तिहारौ अब कौन कौ कहाऊं ॥
कामधेनु छाँड़ि कहा अजा[3] लै दुहाऊं ।
हय गयंद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊं ॥
कंचन-मनि खोलि डारि कांच गर[4] बँधाऊं ।
कुंकुम कौ तिलक मेटि काजर मुख लाऊं ॥
पाटंबर अंबर तजि गूदर पहिराऊं ।
अंबा-फल छाँड़ि कहा सेंबर[5] कौं धाऊं ॥
सागर की लहर छाँड़ि खार[6] कत अन्हाऊं ।
'सूर' कूर आँधरो मैं द्वार पर्‍यौ गाऊं ॥२॥

सारंग

मेरो मन अनत कहां सचु पावै ।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी, फिरि जहाज पर आवै ॥
कमलनैन[7] कौं छाँड़ि महातम, और देव कौं धावै ?
परम गंग कौं छाँड़ि पियासो, दुर्मति कूप खनावै[8] ॥
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील[9]-फल खावै ?
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी[10] कौन दुहावै ॥३॥

सारंग

आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊं ।
तौ लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनु[11]-सुत न कहाऊं ॥

[1]लाज । [2]पास । [3]बकरी । [4]गला । [5]शाल्मलि वृक्ष का फल, जिसमें सिवा रूई के सार कुछ भी नहीं होता । [6]खारा । [7]श्रीकृष्ण । [8]खोदे । [9]एक कांटेदार वृक्ष । [10]बकरी । [11]शांतनु; कुरुवंशी एक प्रतापी राजा, जिन्होंने गंगा के साथ ब्याह किया था । बाल-ब्रह्मचारी भीष्म इन्हीं के पुत्र थे ।

स्यंदन[1] खंडि महारथ खंडों, कपिध्वज[2] सहित डुलाऊं ।
इती न करौं सपथ तौ हरि की, छत्रिय-गतिहिं न पाऊं ॥
पांडव-दल सन्मुख ह्वै धाऊं, सरिता रुधिर बहाऊं ।
'सूरदास' रन विजय-सखा[3] को, जियत न पीठ दिखाऊं ॥४॥

आसावरी

हम भक्तन के, भक्त हमारे ।
सुन अर्जुन, परतिग्या मेरी, यह ब्रत टरत न टारे ॥
भक्त-काज लाज हिय धरिकै, पाइ पयादे[4] धाऊं ।
जहँ-जहँ भीर[5] परै भक्तन पै, तहँ-तहँ जाय छुड़ाऊं ॥
जो मम भक्त सों बैर करत है, सो निज बैरी मेरो ।
देखि विचारि भक्त-हित-कारन, हाँकत हौं रथ तेरो ॥
जीतें जीति भक्त अपने की, हारे हारि विचारौं ।
'सूरदास' सुनि भक्त-विरोधी, चक्र-सुदर्सन[6] जारौं ॥५॥

सारंग

वा पट पीत की फहरानि ।
कर धरि चक्र चरन की धावनि[7], नहिं बिसरति वह बानि[8] ॥
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच[9] रज की लपटानि ।
मानों सिंह सैल तें निकस्यो, महामत्त गज जानि ॥
जिन गोपाल मेरो प्रन राख्यो, मेटि वेद की कानि[10] ।
सोई 'सूर' सहाय हमारे, निकट भये हैं आनि[11] ॥६॥

सोरठ

मना रे[12], माधव सों करु प्रीति ।
काम क्रोध मद लोभ मोह तू, छाँड़ि सबै बिपरीति ॥

[1]रथ । [2]अर्जुन के रथ की पताका, जिसमें हनुमानजी का चित्र था। [3]अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण । [4]पैदल। [5]कष्ट। [6]विष्णु भगवान् का चक्र। [7]दौड़। [8]स्वभाव, आदत । [9]केश । [10]कानि, मर्यादा । [11]आकर । [12]मन ।

भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप।
सब कुसुमन मिलि रस करै, कमल बँधावै आप॥
सुनि परिमित पिय प्रेम की, चातक चितवत पारि।
घन आसा सब दुख सहै, अंत[१] न जाँचै वारि॥
देखौ करनी कमल की, कीनों जल सों हेत[२]।
प्रान तज्यौ प्रेम न तज्यौ, सूख्यो सरहि समेत॥
मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूँछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहिं, रति न घटै तन जात॥
प्रीति परेवा की गनौ, चाह चढ़त आकास।
तहँ चढ़ि तीय जु देखिए, परत छाँड़ि उर स्वास॥
सुमिरि सनेह कुरंग कौ, स्रवननि राच्यो[३] राग।
धरि न सकत पग पछमनो[४], सर-सनमुख उर लाग॥
देखि जरनि जड़ नारि की, जरत प्रेत के संग।
चिता न चित फीको भयो, रची जु पिय के रंग॥
लोक वेद बरजत सबै, नयनन देखत त्रास।
चोर न जिय चोरी तजै, सरबस सहै विनास॥
तैं जु रत्न पायो भलो, जान्यो साधु-समाज।
प्रेम-कथा अनुदिन सुनी, तऊ न उपजो लाज॥
सदा सँघाती[५] आपनो, जिय कौ जीवन-प्रान।
सो तू बिसर्‌यो सहजही, हरि ईस्वर भगवान॥
वेद पुरान स्मृति सबै, सुर नर सेवत जाहि।
महामूढ़ अग्यान-मति, क्यों न सँभारत[६] ताहि॥
खग मृग मीन पतंग लौं, मैं सोधे[७] सब ठौर।
जल थल जीव जिते तिते, कहौं कहां लगि और॥

[१]अनत, अन्यत्र। [२]प्रेम। [३]मोहित हुआ। [४]पीछे। [५]साथी। [६]सेवा करता [७]ढूँढ़े।

परिपूरन पावन सखा, प्राननहूँ कौ नाथ।
परमदयालु कृपालु प्रभु, जीवन जाके हाथ॥
गर्भवास अति त्रास में, जहां न एकौ अंग[1]।
सुन सठ, तेरो प्रानपति, तहा न छाँड़्यो संग॥
दिना-राति पोषत रहै, ज्यों तम्बोली पान।
या दुख तें तोहि काढ़ि कैं, लै दीनों पयपान॥
जिन जड़ तें चेतन कियो, रचि गुन[2]-तत्व-विधान[3]।
चरन चिकुर[4] कर नख दिये, नैन नासिका कान॥
असन बसन बहु बिधि दिये, औसर-औसर आनि।
मात पिता भैया मिले, नई रुचिहि पहिचानि॥
जम जान्यो सब जग सुन्यो, बाढ़्यो अजस अपार।
बीच[5] न काहू तब कियो, दूतनि काढ़्यो बार॥
कह जानो कहवां[6] मुओ[7], ऐसे कुमति कुमीच[8]।
हरि सौं हेतु बिसारिकैं, सुख चाहत है नीच॥
जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार।
एकहुँ अंक[9] न हरि भजे, रे सठ 'सूर' गँवार॥७॥*

भैरवी

कहां लौं बरनौं सुन्दरताइ।
खेलत कुँवर कनक[10]-आँगन में, नैन निरखि छबि छाइ।
कुलहि[11] लसति सिर स्याम सुभग अति, बहुविधि सुरँग बनाइ॥
मानों नवघन ऊपर राजत, मघवा[12] धनुप चढ़ाइ।

[1]सहाय। [2]सत्व, रज और तमोगुण। [3]पंचतत्व की रचना। [4]बाल। [5]रक्षा। [6]कहां। [7]मरा। [8]बुरी मौत। [9]प्रकार। [10]सोना। [11]टोपी। [12]इंद्र।

*कहते हैं, कि यह पद सूरदासजी ने बादशाह अकबर को सुनाया था। किंतु सूरदासजी अकबर के दरबार में कभी गये थे या नहीं, यह विवादास्पद है। सूरदास मदनमोहन, निस्संदेह, अकबर के यहां जाया करते थे।

अति सुदेस[१] मृदु हरत चिकुर मन, मोहन-मुख बगराइ[२] ।
मानों प्रगट कंज पर मंजुल, अलि-अवली फिर आइ ॥
नील स्वेत पर पीत लाल मनि, लटकनि भाल रुनाइ[३] ।
सनि, गुरु असुर[४] देव गुरु[५] मिलि मनु, भौम[६] सहित समुदाइ ॥
दूध-दंत-दुति कहि न जात अति, अद्‌भुत इक उपमाइ ।
किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनु, घनमें विद्यु[७]-छपाइ ॥
खंडित बचन[८] देत पूरनसुख, अल्प-अल्प जलपाइ[९] ।
घुटुरन[१०] चलत रेनु तन मंडित, 'सूरदास' बलि जाइ ॥८॥

बधाई

आजु गई हौं नंद भवन में, कहा कहौं गृह चैनु री ।
बहु अँग चतुरँग ग्वाल बाल तहँ, कोटिक दुहियतु धैनु री ॥
घूमि रहे जित-तित दधि मथना, सुनत मेघ-धुनि लाजै री ।
बरनहुँ कहा सदन की सोभा, बैकुंठहुँ ते राजै री ॥
बोलि लई नवबधू जानिकै, खेलत जहां कहान्है री ।
मुख देखत मोहिनि-सी लागति, रूप न बरन्यो जाई री ॥
लटकनि लटक रहे भ्रू ऊपर, पंचरंग मनि पोहै री ।
मानहुँ गुरु सनि सुक्र एक ह्वै, लाल भाल पर सोहै री ॥
गोरोचन[११] को तिलक निकट ही, काजर-बिंदुक लाग्यो री ।
मनहुँ कमल गुनि पीयरागरस, निसि अलि-सुत सोइ जाग्यो री ॥
बिधु-आनन पर दीरघ लोचन, नासा लटकन मोती री ।
मानों सोम[१२] संग करि लीनो, जानि आपनो गोती री ॥
सीपज[१३] माल स्याम उर सोहै, बिच बघना[१४] छबि पावै री ।

[१]सुंदर। [२]फैले हुए। [३]अरुणाई, लाली। [४]शुक्र। [५]बृहस्पति। [६]मंगल। [७]विद्युत्, बिजली। [८]तोतले वचन। [९]बोलने का ढंग। [१०]घुटनों के बल। [११]गाय के मस्तक से निकाला हुआ सुगंधित मद। [१२]चंद्र। [१३]मोती। [१४]जिनमें बाघ का नख जड़ा हुआ होता है।

मनहुँ द्वैज-ससि नखत सहित है, उपमा कहति न आवै री ॥
बरनौं कहा अंग-अँग-सोभा, भाव धरौ जल-रासी री ।
बाल लाल गोपालहि बरनत, कविकुल करिहैं हाँसी री ॥
सोभा-सिंधु अगाध बोध बुध, उपमा नाहिन ओर री ।
रूप देखि तनु थकित रही हौं, भेइ[1] भरे कौ चोर री ॥
जो मेरी अँखियां रसना[2] होतीं, कहतीं रूप बनाइ री ।
चिरजीवौ जसुदा कौ नंदन, 'सूरदास' बलि जाइ री ॥९॥

धनाश्री

जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै[3] दुलराइ मल्हावै,[4] जोइ-सोइ कछु गावै ॥
मेरे लाल की आउ निंदरिया,[5] काहे न आनि सुआवै ।
तू काहे न बेगि सों आवति, तोकों कान्ह बुलावै ॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि-रहि, करि-करि सैन[6] बतावै ॥
इहि अंतर[7] अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरे गावै ।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि-दुर्लभ, सो नँद-भामिनी पावै ॥१०॥

ध्रुपद

छोटी-छोटी गुड़ियाँ[8] अँगुरियाँ छोटी,
छबीली नख-ज्योति मोती मानों कंजदलन पर ॥
ललित आँगन खेलै ठुमक ठुमक[9] डोलै,
झुनक-झुनक[10] बाजैं पैजनी मृदु मुखर[11] ॥
किंकिनी कलित कटि हाटक रतन-जटित,
मृदु कर-कमल पहुंचियां रुचिर बर ॥

[1]भेद । [2]जीभ । [3]हिलाती है । [4]चित्त बहलाती है । [5]निद्रा । [6]इशारा । [7]इस बीच में । [8]पैर । [9]बालकों का धीरे-धीरे चलना । [10]गहनों के बजने का शब्द विशेष । [11]बजनेवाला ।

पियरी[१] पिछौरी झीनी और उपमा भीनी[२],
बालक दामिनि मानों ओढ़े बारो[३] बारिधर।
उर बघनखा कंठ कठुला झडूले बार,
बेनी लटकनि मसि-बिंदु[४] मुनि-मनहर॥
अंजन-रंजित नैना चितवनि चित चोरै,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असम-सर[५]॥
चुटकी बजावति नचावति नंद-घरनि[६] बाल,
केलि गावति मल्हावति[७] प्रेम मुघर॥
किलकि-किलकि हँसै द्वै-द्वै दँतुरियां लसैं,
'सूरदास' मन बसैं तोतरे बचन वर॥११॥

आसावरी

मैया, मोहि दाऊ[८] बहुत खिझायो।[९]
मोसों कहत मोल कौ लीनो, तू[१०] जसुमति[११] कब जायो?
कहा कहौं यहि रिस के मारे, खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत, कौन है माता, को है तुमरो तात?
गोरे नंद, जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर?
चुटकी दै-दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलवीर॥
तू मोही को मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिससमेत लखि, जसुमति सुनि-सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई[१२], जनमत ही को धूत[१३]।
'सूरस्याम', मो गोधन की सौं[१४], हौं माता तू पूत॥१२॥

अल्हैया

मो देखत जसुमति, तेरो ढोटा[१५], अबहीं माटी खाई।

[१]पीली। [२]रसभरी, सुंदर। [३]छोटा बालक। [४]डिठौना। [५]कामदेव। [६]स्त्री। [७]खिलाती है। [८]दादा, बड़े भाई बलराम। [९]तंग किया। [१०]तुझे। [११]यशोदा। [१२]चुग़ली करनेवाला। [१३]धूर्त। [१४]सौगंध, क़सम। [१५]पुत्र।

इहि सुनिकैं रिस करि उठि धाई, बाँह पकरि लै आई ॥
इक कर सों भुज गहि गाढ़ेकरि[1], इक कर लीनें साँटी[2] ।
मारति हौं तोहिं अबहिं कन्हैया, वेग न उगलौ माटी ॥
ब्रज-लरिका सब तेरे आगे, झूठी कहत बनाई ।
मेरे कहे नहीं तू मानति, दिखरायौ मुख बाई[3] ॥
अखिल ब्रह्मांड-खंड की महिमा, दिखराई मुखमाहीं ।
सिंधु सुमेर नदी बन पर्वत, चकृत भई मन माहीं ॥
करतें साँटि गिरति नहिं जानी, भुजा छाँड़ि अकुलानी ।
'सूर' कहै जसुमति मुख मूँदहु, बलि गइ सारँगपानी[4] ॥१३॥

धनाश्री

चोरी करत कान्ह धरि पाये[5] ।
निसि बासर मोहिं बहुत सतायौ, अब हरि हाथहिं आये ॥
माखन दधि मेरो सब खायो, बहुत अचगरी[6] कीन्हीं ।
अब तौ फंद परे हौ लालन, तुम्हें भले मैं चीन्हीं ॥
दोउ भुज पकरि कह्यो, कित जैहौ, माखन लेउँ मँगाई ।
तेरी सौं मैं नेकु न चाख्यो, सखा गये सब खाई ॥
मुख तन[7] चितै बिहँसि हँसि दीनो, रिस तब गई बुझाई ।
लियौ उर लाइ ग्वालिनी हरि को, 'सूरदास' बलि जाई ॥१४॥

गौरी

देखि सखी, बन तें जु बने[8], ब्रज आवत हैं नँदनंदन ।
सीस सिखंडी[9] मुख मुरली तिमि, बन्यौ तिलकी उर चंदन ॥
कुटिल अलक मुख, चंचल लोचन, निरखत अति आनंदन ।
कमल-मध्य मानौ द्वै खंजन, बँधे आइ उड़ि फंदन[10] ॥

[1]ज़ोर से । [2]लकड़ी । [3]खोल कर, फैला कर । [4]हाथ में धनुष लेनेवाले; विष्णुरूप श्रीकृष्ण । [5]पकड़ लिये गये । [6]शरारत । [7]मुँह की तरफ़ [8]शृंगार किये हुए । [9]मोर-पंख । [10]जाल ।

अरुन अधर छबि दसन बिराजत, जब गावत कलमंदन[१] ।
मुक्ता मनों लालमनि में पुट, धरे[२] मुरकि बर बंदन ॥
गोप-वेष गोकुल गो चारत, हैं प्रभु असुर-निकंदन ।
'सूरदास' प्रभु सुजस बखानत, नेति-नेति[३] श्रुति-छंदन ॥१५॥

भैरवी

मैया, मैं न चरैहों गाइ ।
सिगरे ग्वाल घिरावत[४] मोसों, मेरे पाइँ पिराइ ॥
जो न पत्याहि[५] पूछ बलदाउहिं, अपनी सौंह[६] दिवाइ ।
यह सुनि-सुनि जसुमति ग्वालनि कों, गारी देत रिसाय ॥
मैं पठवति अपने लरिका कों, आवै मन बहराइ[७] ।
'सूरस्याम' मेरो अति बालक, मारत ताहि रिंगाइ[८] ॥१६॥

सारँग

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी । सुनि, मुनि सिद्ध समाधि[९] टरी ॥
सुनि थके देव बिमान । सुरबधू चित्र-समान ॥
गृह नखत तजत न रास[१०] । याही बँधे धुनि पास[११] ॥
सुनि आनँद-उमँग-भरे । जल-थल के अचल टरे ॥
चराचर-गति विपरीति । सुनि बेनु[१२]-कल्पित गीति ॥
झरना झरत पापान । गंधर्व मोहे गान ॥
सुनि खग-मृग मौन धरे । फल दल तृन सुधि बिसरे ॥
सुनि धेनु अति थकित रहे । तृन दंतहुँ नहीं गहे ॥
बछवा न पीव छीर । पंछी न मन में धीर ॥

[१]धीरे-धीरे मधुर ध्वनि से । [२]बंद करके रख दिये । [३]"ऐसा नहीं है" अर्थात् ब्रह्म मन और वाणी से परे है । [४]इकट्ठा कराते हैं । [५]विश्वास करता है । [६]सौगंध । [७]बहलाव । [८]चलाकर । [९]वह दशा जिसमें योगी अपने मन का आत्यंतिक निरोध कर लेता है । [१०]राशि; यहाँ के १२ स्थान । [११]पाश; जाल । [१२]वंशी ।

द्रुम बेली चपल भये। सुनि पल्लव प्रगटि नये ॥
जे बिटप चंचल पात। ते निकट कों अकुलात ॥
अकुलित जे पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात[1] ॥
सुनि चंचल पवन थके। सरिता-जल चलि न सके ॥
सुनि धुनि चली ब्रजनारि। सुत देह गेह बिसारि ॥
सुनि थकित भयो समीर। बहै उलटो जमुना-नीर ॥
मनमोहन मदनगोपाल। तनस्याम नयन बिसाल ॥
नवनील-तनु घनस्याम। नव पीतपट अभिराम ॥
नव मुकुट, नवघन दाम[2]। लावन्य कोटिक काम ॥
मनमोहन रूप धर्‍यो। तव काम कौ गर्व हर्‍यो ॥
मेरे मदनगोपाल लाल[3]। सँग नागरी ब्रजबाल ॥
नवकुंज जमुना-कूल[4]। देखत सूरदास जन फूल[5] ॥१७॥

बिलावल

माई[6] री, मुरली अति गर्व काहू बदति[7] नाहीं आजु।
हरि कों मुखकमल देखि, पायो सुखराजु ॥
देखत कर पीठ[8] ढीठ, अधर छत्रछाहीं।
चमर-चिकुर[9] राजत तहँ, सुंदर सभा माहीं ॥
जमुना के जलहिं नाहिं, जलधि जान देति।*
सुर-पुर तें सुर-बिमान, भुवि बुलाइ लेति ॥
थावर[10] चर[11] जंगम जहँ, करति जीति अजीति।
बेद की बिधि मेटि चलति, आपने ही रीति ॥

[1]चू रहा है। [2]दामिनी। [3]प्यारा। [4]किनारा। [5]प्रसन्न होता है। [6]यह शब्द 'सखी' के लिए भी आता है। [7]लेखती है, समझती है। [8]आसन। [9]अलकावली रूपी चँवर। [10]जड़। [11]चैतन्य।

* 'जमुना.........देति।' मुरली की मनोहर ध्वनि सुनकर यमुना का जल स्थिर हो जाता है।

बंसी-बस सकल 'सूर', सुर नर मुनि नाग।
श्रीपति हूँ श्री[१] बिसारी, एही अनुराग ॥१८॥

मलार

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी, जदपि नँद-नंदहिं, नाना भाँति नचावति॥
राखति एक पायँ ठाढ़ो करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु, कटि टेढ़ी ह्वै जावति॥
अति आधीन सुजान कनौड़े[२], गिरिधर नारि[३] नवावति।
आपुन पौढ़ि अधर-सेज्या[४] पर, कर सों पद पलुटावति[५]॥
भृकुटी कुटिल फरक नासापुट, हम पै कोपि कुपावति।
'सूर' प्रसन्न जानि एकौ छिन, अधर सुसीस डुलावति॥१९॥

जैतिश्री

ब्रजहिं बसे आपुहिं[६] बिसरायो।
प्रकृति[७] पुरुष[८] एकै करि जानहु, बातनि भेद करायो॥
जल-थल जहां रहौ तुम बिनु नहिं, बेद उपनिषद गायो।
द्वै तनु जीव एक हम तुम दोउ, सुख-कारन[९] उपजायो॥
'सूरस्याम' सुख देखि अलप[१०] हँसि, आनँद-पुञ्ज बढ़ायो॥२०॥*

देश

करि मन नंदनंदन-ध्यान।
सेइ चरनसरोज सीतल, तजि बिषै-रस-पान[११]।
जानु जंघ त्रिभंग सुंदर, कलित कंचन-दंड।
काछनी कटि पीतपट्ट दुति, कमल-केसर खंड॥

[१]लक्ष्मी। [२]एहसानमंद। [३]गर्दन। [४]ओंठरूपी शय्या। [५]दबवाती है।
[६]अपने स्वरूप को। [७]माया। [८]परमात्मा। [९]आनंद-अनुभव करने के लिए।
[१०] मंद-मंद। [११] भोग-विलास।

*इस पद में शुद्ध द्वैतवाद का प्रकारांतर से निरूपण किया गया है।

मनु मराल प्रवाल छौना, किंकनी-कल-राउ[१] ।
नाभि हृदय रोमावली अलि, चले सैन सुभाउ ॥
कंठ मुक्तामाल मलयज, उर बनी बनमाल ।
सुरसरी के तीर मानों, लता स्याम तमाल ॥
बाहु पानि सरोज पल्लव, गहे मुख मृदु वेनु ।
अति बिराजति बदन-बिधु पर, सुरभि-रंजित रेनु ॥
अरुन अधर कपोल नासा, परम सुंदर नैन ।
चलित[२] कुंडल गंड-मंडल, मनहुँ निर्तत मैन ॥
कुटिल कच भ्रू तिलक-रेखा, सीस सिखि[३] श्रीखंड ।
मनु मदन धनु सर सँधाने, देखि धन-कोदंड[४] ॥
'सूर' श्रीगोपाल की छवि, दृष्टि भरि-भरि लेत ।
प्रानपति की निरखि सोभा, पलक परन न देत ॥२१॥

बिहाग

लोचन भृंग भए री, मेरे ।
लोक-लाज बन घन[५] बेली तजि, आतुर ह्वै जु गड़े रे ॥
स्यामरूप-रस बारिज लोचन, तहां जाइ लुब्धे रे ।
लपटे लटकि पराग बिलोकनि, संपुट-लोभ परे रे ॥
हँसनि-प्रकास-बिभास[६] देखिकैं, निकसत पुनि तहँ बैठत ।
'सूरस्याम' अंबुज कर चरननि, जहँ-तहँ भ्रमि-भ्रमि पैठत ॥२२॥

बिहाग

नैन भये बोहित[७] के काग ।
उड़ि-उड़ि जात पार नहिं पावैं, फिरि आवत तिहिं लाग[८] ॥
ऐसी दसा भई री इनकी, अब लागे पछितान ।
मो बरजत-बरजत उठि धाए, नहिं पायो अनुमान ॥

[१]सुंदर शब्द। [२]चंचल, हिलते हुए। [३]मोर। [४]धनुष। [५]बहुत। [६]प्रभात का उजेला। [७]जहाज़। [८]लालच।

वह समुद्र ओछे[1] बासन[2] ये, धरैं कहां सुखरासि ?
सुनहूँ 'सूर' ये चतुर कहावत, वह छबि महाप्रकासि ॥२३॥

झँझोटी

रास-रस-रीति[3] नहिं बरनि आवै ।
कहां वैसी बुद्धि, कहां वह मन लहौं, कहां इह चित्त जिय भ्रम भुलावै ॥
जो कहौं कौन मानै निगम-अगम[4] जो, कृपा बिन नहीं या रसहिं पावै ॥
भाव[5] सों भजै, बिन भाव में ये नहीं, भाव ही माहिं भाव यह बसावै ॥
यहै निज मंत्र यह ज्ञान यह ध्यान है, दरस दंपति भजन सार गाऊँ ॥
इहै माँग्यों बार बार प्रभु सूर के नैन दोउ, रहैं, अरु नित्य नर-देह पाऊँ ॥२४॥*

सारंग

बाँसुरी बिधिहूं तें प्रवीन ।
कहिये काहि आहि को ऐसो, कियो जगत-आधीन ॥
चारि बदन उपदेस बिधाता, थापी थिर चर नीति ।
आठ बदन[6] गर्जति गर्बीली, क्यों चलिये यह रीति ॥
बिपुल बिभूति[7] लई चतुरानन, एक कमल करि थान[8] ।
हरिकर कमल जुगल पर बैठी, बाढ़्यो यहि अभिमान ॥
एक बेर श्रीपति के सिखये, उन लिय सब गुन गान ।
याके तौ नँदलाल लाड़िलो, लग्यौ रहत नित कान ॥
एक मराल-पीठि-आरोहन[9], बिधि भयो प्रबल प्रसंस ।
यह तौ सकल बिमान किये, गोपीजन-मानस हंस ॥
श्री[10] बैकुंठनाथ-उर-बासिनि, चाहत जा पद-रैन[11] ।

[1]छोटे । [2]पात्र । [3]भगवान् की भक्ति का रहस्य । [4]असमर्थ । [5]प्रेम । [6]आठ मुख, अर्थात् आठ छेद । [7]ऐश्वर्य । [8]स्थान । [9]मन रूपी हंस; वंशी ने गोपियों के मन पर सवारी की है, अर्थात् उनके मन को मोहित कर लिया है । [10]लक्ष्मी । [11]रेणु, धूल ।

*यह पद वैष्णव-संप्रदाय के अनुसार रास-रस के सिद्धांत का द्योतक है ।

ताकौ मुख सुखमय सिंहासन, करि बैठी[1] यह ऐन ॥
अधर-सुधा पी कुल-व्रत टारयौ, नहीं सिखा नहिं ताग[2] ।
तदपि 'सूर' या नंद-सुवन कौं, याही सौं अनुराग ॥२५॥

बिहाग

जसोदा बार-बार यों भाखै ।
है व्रज में कोउ हितू हमारो, चलत गोपालहिं राखै ?
कहा काज मेरे छगन-मगन[3] कौ, नृप[4] मधुपुरी[5] बुलायो ।
सुफलक-सुत[6] मेरे प्रान हनन कौं, कालरूप ह्वै आयो ॥
वरु[7] ये गोधन हरौ कंस सब, मोहि बंदि लै मेलो ।
इतने ही सुख कमल-नयन मेरी, अँखियन आगे खेलो ॥
वासर वदन विलोकत जीवौं, निसि निज अंकम लाऊं ।
तेहि बिछुरत जो जीवौं कर्मवस, तौ हँसि काहि बोलाऊं ?
कमल-नैन गुन टेरत-टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी ।
'सूर' कहां लगि प्रगट जनाऊं, दुखित नंद की रानी ॥२६॥

बिहाग

मेरे कुँअर कान्ह बिन सब कछु, वैसेहि[8] धरयो रहै ।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत[9] गहै ?
सूने भवन जसोदा सुत के, गुन-गुनि[10] सूल सहै ।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि, उरहन[11] कोउ न कहै ॥
जो व्रज में आनँद हो[12] सो तो, मुनि मनसहु न गहै ।
'सूरदास' स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हूं न लहै ॥२७॥

सोहनी

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।

[1]बैठी । [2]यज्ञोपवीत । [3]बचपन में श्रीकृष्ण का छोटा-सा प्यार का नाम । [4]कंस से तात्पर्य । [5]मथुरा । [6]अक्रूर । [7]चाहे, बल्कि । [8]ज्यों का त्यों । [9]मंथानी । [10]गुणों की याद करके । [11]उपालंभ । [12]था ।

प्रीति पतंग करी दीपक सों, आपै प्रान दह्यो ॥
अलिसुत[1] प्रीति करी जलसुत[2] सों संपति हाथ गह्यो ।
सारँग[3] प्रीति करी जो नाद[4] सों, सन्मुख बान सह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यो ।
'सूरदास' प्रभु बिनु दुख दूनो, नैननि नीर बह्यो ॥२८॥

सोहनी

बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारो ।
बासर रैनि नाँव लै बोलत, भयो बिरह-ज्वर कारो ॥
आपु दुखित पर दुखित जानि जिय, चातक नाँव तुम्हारो ।
देखो सकल बिचारि सखी जिय, बिछुरन को दुख न्यारो[5] ॥
जाहि लगै सोई पै जानै, प्रेम-बान अनियारो[6] ।
'सूरदास' प्रभु स्वातिबूँद लगि, तज्यो सिंधु करि खारो ॥२९॥

सारंग

काहे को पिय पियहिं रटत हो, पिय को प्रेम तेरो प्रान हरैगो ।
काहे को लेत नयन जल भरि-भरि, नयन भरे तें कैसे सूल[7] टरैगो ॥
काहे को स्वाँस उसाँस लेति हौ, बैरी बिरह को दावा[8] जरैगो ।
छाल सुगंध सेज पुहुपावलि[9], हारु छुए तें हियहारु जरैगो ॥
बदन दुराइ बैठि मंदिर में, बहुरि निसापति उदय करैगो ।
'सूर' सखी अपने इन नैननि, चंद्र चितै जिनि,चंद्र जरैगो ॥३०॥*

बिलावल

नाथ, अनाथन की सुधि लीजै ।
गोपी ग्वाल गाइ गोसुत सब, दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै[10] ॥
नैन सजल धारा बाढ़ी अति, बूड़त ब्रज किन[11] कर गहि लीजै ।

[1]भौंरे का बच्चा । [2]कमल । [3]हिरण । [4]गान । [5]निराला । [6]नुकीला । [7]कष्ट । [8]आग । [9]पुष्पावलि । [10]दुबले होते जाते हैं । [11]क्यों नहीं ।

*इस पद में कविता के उत्तमोत्तम गुण पाये जाते हैं ।

इतनी बिनती सुनहु हमारी, बारक[1] हूं पतियां[2] लिखि दीजै ॥
चरनकमल-दरसन-नवनौका, करुनासिंधु जगत जसु लीजै।
'सूरदास' प्रभु आस मिलन की, एक बार आवन ब्रज कीजे ॥३१॥

मलार

सखी, इन नैनन तें घन हारे।
बिनही रितु बरषत निसिबासर, सदा मलिन दोउ तारे[3] ॥
ऊरधस्वास[4]-समीर तेज अति, सुख-अनेक-द्रुम डारे[5]।
दिसिन्ह सदन करि बसे बचन-खग, दुख पावस के मारे ॥*
सुमिरि-सुमिरि गरजत जल छांड़त, अंसु सलिल के धारे।
बूड़त ब्रजहिं 'सूर' को राखै, बिनु गिरिवरधर प्यारे ॥३२॥

मलार

ब्रज पर बदरा[6] आये गाजन[7]।
मधुबन को पठये सुन सजनी, फौज मदन लाग्यो साजन ॥
ग्रीवा रंध्र[8] नैन चातक जल, पिकगन मुख बाजे बाजन।
चहुँदिसि तें तनु बिरहा घेरो, अब कैसे पावतु भाजन।
कहियतु हुते स्याम परपीरक[9], आये संकट के काजन।
'सूरदास' श्रीपति की महिमा, मथुरा लागे राजन ॥३३॥

सोरठ

नैना भये अनाथ हमारे।
मदनगोपाल वहां तें[10] सजनी, सुनियतु दूरि सिधारे ॥
वे हरि जल, हम मीन बापुरी, कैसे जिवहिं निनारे[11]।
हम चातक चकोर स्यामघन, बदन-सुधा नित प्यारे ॥
मधुबन बसत आस दरसन की, जोइ[12] नैन मग हारे।

[1]एक बार। [2]चिट्ठी। [3]आँखों की पुतलियां। [4]आह। [5]ढहाये। [6]बादल। [7]गरजने के लिए। [8]छेद। [9]दूसरे की पीड़ा जाननेवाले। [10]मथुरा से। [11]न्यारे। [12]देख कर।
*यहां तो अतिशयोक्ति की भी अति हो गई है।

'सूरस्याम' कीनीं पिय ऐसी, मृतकहुँ तें पुनि मारे ॥३४॥

आसावरी

राधा-माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट-भृंग-गति[1] होइ जो गई ॥
माधव राधा के रँग राचे, राधा माधव-रंग-रई।
माधव-राधा-प्रीति निरंतर, रसना कहि न गई।
बिहँसि कह्यो हम-तुम नहिं अंतर, यह कहि ब्रज पठई ॥
'सूरदास' प्रभु राधा माधव, ब्रज-बिहार नित नई-नई ॥३५।

कान्हरा

ऊधो, ब्रज की दसा बिचारो।
ता पाछे यह सिद्धि आपनी, जोग-कथा बिस्तारो ॥
जा कारन तुम पठये माधौ, सो सोचौ जिय माहीं।
कितनो बीच बिरह-परमारथ[2], जानत हौ किधौं नाहीं ?
तुम परबीन[3] चतुर कहियत हौ, संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ, फिर-फिर कहा गहत हौ ?
वह मुसुकानि मनोहर चितवनि, कैसे उर तें टारौं।
जोग-जुगुति अरु मुकुति परमनिधि, वा मुरली पर वारौं ॥
जिहि उर कमल-नयन जु बसत हैं, तिहि निर्गुन[4] क्यों आवै ?
'सूरदास' सो भजन बहाऊं[5], जाहि दूसरो भावै ॥३६।

श्री

ऊधो, ना हम बिरहिनि, ना तुम दास।
कहत-सुनत घट[6] प्रान रहत हैं, हरि तजि भजहु अकास ॥
बिरही मीन मरै जल बिछुरे, छाँड़ि जीवन की आस।

[1]भृंगी कीड़े को पकड़ कर अपने रूप में मिला लेता है, इसीसे कीट-भृंग एक-रूपता के अर्थ में आता है। [2]ज्ञान, आत्मबोध। [3]प्रवीण, चतुर। [4]सत्व, रज और तमोगुण से रहित ब्रह्म। [5]दूर करूं। [6]शरीर।

दास-भाव नहिं तजत पपीहा, बरु सहि रहत पियास ॥
पकज परम पंक में बिहरत, बिधि कियो नीर निरास ।
राजिव रवि कौ दोष न मानत, ससि सों सहज उदास[1] ॥
प्रगट प्रीति दशरथ प्रतिपाली, प्रियतम कौ बनबास* ।
'सूरस्याम' सों पतिब्रत कीन्हों, छाँड़ि जगत-उपहास ॥३७॥

बिलावल

सब जग तजे प्रेम के नाते ।
चातक स्वाति[2]-बूँद नहिं छाँड़त, प्रगट पुकारत ताते ॥
समुझत मीन नीर की बातैं, तजत प्रान हठि हारत ।
जानि कुरंग प्रेम नहिं त्यागत, जदपि ब्याध[3] सर मारत ॥
निमिष चकोर नैन नहिं लावत[4], ससि जोवत जुग बीते ।
ज्योति पतंग देखि बपु जारत, भये न प्रेमघट रीते[5] ॥
कहि अलि, क्यों बिसरति वै बातैं, सँग जो करी ब्रजराजैं ।
कैसे 'सूरस्याम' हम छाँड़ैं, एक देह के काजैं ॥३८॥

धनाश्री

कोउ ब्रज बाँचत नाहिंन पाती[6] ।
कत लिखि-लिखि पठवत नँद-नंदन, कठिन बिरह की काती[7] ॥
नयन सजल, कागद अति कोमल, कर अँगुरी अति ताती ।
परसत जरै बिलोकत भीजति, दुहूँ भाँति दुख छाती ॥
क्यों समुझै ये अंक[8] 'सूर' सुनु, कठिन मदन सरघाती ।
देखे जियहिं स्यामसुंदर के, रहहिं चरन दिनराती ॥३९॥

केदारा

उर में माखन-चोर गड़े[9] ।

[1]निरपेक्ष, बेपरवाह । [2]नक्षत्र, जिसमें बरसा हुआ पानी चातक पीता है । [3]बहेलिया । [4]बंद करता है । [5]खाली । [6]पत्री । [7]छूरी । [8]अक्षर । [9]बस गये ।
* राम के वन जाने पर दशरथ ने प्राण त्याग दिये ।

अब कैसहुँ निकसत नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े ॥
जदपि अहीर जसोदा-नंदन, तदपि न जात छँड़े[१] ।
वहां बने जदुबंस महाकुल, हमहिं न लगत बड़े ॥
को बसुदेव, देवकी है को, ना जानैं औ बूझैं ।
'सूर' स्यामसुंदर बिनु देखे, और न कोऊ सूझैं ॥४०॥

बिलावल

ऊधो, मन-माने की बात ।
दाख, छोहारा छाँड़ि अमृतफल, विषकीरा विष खात ॥
जो चकोर[२] को देइ कपूर कोइ, तजि अंगार अघात ।
मधुप करत घर कोरे काठ में, बँधत कमल के पात[३] ॥
ज्यों पतंग हित जानि आपनो, दीपक सों लपटात ।
'सूरदास' जाकौ मन जासों, सोई ताहि सुहात ॥४१॥

भैरवी

कहां लौं कहिए ब्रज की बात ।
सुनहु स्याम, तुम बिन उन लोगनि, जैसे दिवस बिहात[४] ॥
गोपी ग्वाल गाइ गो सुत वै, मलिन-बदन कृसगात ।
परमदान जनु सिसिर-हिमीहत[५], अंबुजगन बिन पात ॥
जो कहुँ आवत देखि दूर ते, सब पूँछति कुसलात ।
चलन न देत प्रेम-आतुर उर, कर चरनन लपटात ॥
पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस[६] बलिहिं न खात ।
'सूरस्याम' संदेसन के डर, पथिक न वहि मग जात॥४२॥

देश

चित दै सुनौ स्याम प्रवीन ।

[१] छोड़े । [२] एक पक्षी; प्रवाद है, कि यह आग खाया करता है । [३] पत्ता । [४] बीतते हैं । [५] पाले से मारा हुआ । [६] कौए ब्रज में नहीं जाते हैं और न वहां कुछ खाते ही हैं, क्योंकि वहां के लोग इनसे सदा संदेसा ही कहते रहते हैं ।

हरि तुम्हारे बिरह राधा, मैं जु देखी छीन ॥
तज्यौ तेल तमोल[1] भूषन, अंग बसन मलीन ।
कंकना कर बाम राख्यो, गाढ़ भुज गहि लीन ॥
जब सँदेसों कहन सुंदरि, गवन मोतन[2] कीन ।
खसि[3] मुद्रावलि[4] चरन अरुझी, गिरि धरनि बलहीन ॥
कंठ बचन न बोल आवै, हृदय आँसुनि भीन ।
नैन जल भरि रोइ दीनों, ग्रसित-आपद दीन ॥
उठी बहुरि सँभारि भट[5] ज्यों, परम साहस कीन ।
'सूर' प्रभु कल्यान ऐसे, जियहि आसा लीन ॥४३॥

मलार

मधुकर, ये मन बिगरि परे ।
समुझत नाहिं ज्ञान गीता कौ, हरि-मुसुकानि-अरे[6] ।
बालमुकुंद रूप-रस-राचे[7], ताते बक्र[8] खरे ॥
होय न सूधी स्वान-पूंछ ज्यों कोटिक जतन करे ।
हरिपद नलिन-बिसारत नाहिंन, सीतल उर सँचरे ।
जोग गँभीर[9] है अंधकूप तेहि, देखत दूरि डरे ॥
हरि-अनुराग-सुहाग-भाग-भरे, अमिय तें गरल[10] गरे ।
'सूरदास' बरु[11] ऐसेहिं रहिहैं, कान्ह - बियोग - भरे ॥४४॥

धनाश्री

ऊधो, मन नाहीं दस-बीस ।
एक हुतो सो गयो स्यामसँग, को आराधै ईस ?
भई अति सिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिनु सीस ।
स्वासा अटकि रही आसा लगि, जीवहिं कोटि-बरीस[12] ॥

[1]तांबूल, पान । [2]मेरी ओर । [3]ढीली होने के कारण खिसक कर । [4]अँगूठियां । [5]योद्धा । [6]अड़े हुए, फँसे हुए । [7]रँगे हुए । [8]टेढ़ा । [9]गहरा । [10]विष । [11]चाहे, भले ही । [12]वर्ष ।

तुम तो सखा स्यामसुंदर के, सकल जोग के ईस।
'सूरजदास' रसिक की बतियां, पुरवौ मन जगदीस ॥४५॥

ईमन

ऊधो, मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
बृंदाबन गोकुल-तन[1] आवत, सघन तृनन की छाहीं ॥
प्रातसमय माता जसुमति अरु, नंद देखि सुख पावत।
माखन-रोटी दह्यो[2] सजायो,[3] अति हित साथ खवावत ॥
गोपी ग्वाल-बाल-सँग खेलत, सब दिन हँसत सिरात[4]।
'सूरदास' धनि-धनि ब्रजबासी, जिनसों हँसत ब्रजनाथ ॥४६।

ईमन

अब मोहिं निसि देखत डर भागै।
बार-बार अकुलाइ देह तें, निकसि-निकसि मन भागै ॥
प्राची[5] दिसा पेखि पूरन ससि, ह्वै आयो तन तातो[6]।
मानहुँ मदन बदन बिरहिनि को, करि लीन्हों रिस रातो ॥
भ्रकुटी कुटिल कलंक चाप मनु, अति रिसि सों सर साधे।
चहुँधा किरिनि पसारे पासिनि[7], हठि कर जोगिन बाँधे ॥
सुनि सठ सोइ प्रानपति मेरो, जाको जमु जग जानै।
'सूर' सिंधु बूड़त तें राख्यो, ताहू कृतहिं[8] न मानै ॥४७॥

मलार

हमारे माई, मोरउ बैर परे।
घन गरजे बरजे नहिं मानत, त्यों-त्यों रटत खरे ॥
करि इक ठौर बीनि इनके पँख, मोहन सीस धरे।
याही तें हमहीं कों मारत, हरि ही ढीठ करे ॥
कह जानिए, कौन गुन सखि री, हमसों रहत अरे।

[1]ओर। [2]दही। [3]सजा हुआ। [4]बीतता है। [5]पूर्व। [6]गरम। [7]जाल में फँसाने को। [8]उपकार को।

'सूरदास' परदेस बसत हरि, ये बन तें न टरे ॥४८॥

मालकोश

ब्रजवासिन सों कह्यो, सबन तें ब्रज हित मेरे ।
तुमसों मैं नहिं दूर रहत हौं, हौं सबहिन के नेरे[1] ॥
भजै मोहि जो कोइ भजों मैं, निसिदिन तिनकों भाई ।
मुकुर[2] माँहि ज्यों रूप आपुनों, आपुन सम दरसाई ॥
यह कहिकैं सम देत सकलजन, नयन रहे जल छाई ।
'सूरस्याम' कौ प्रेम कछू अब, मोपै कह्यो न जाई ॥४९॥

बिलावल

नमो नमस्ते बारंबार । मदन-सदन[3] गोविंद मुरार ॥
माया लोभ क्रोध अरु मान । ये सब त्रय गुन[4] फाँस समान ॥
काल सदा सर साधे रहै । क्यों करि नर तुव सुमिरन कहै ॥
तुम निर्गुन उदय निराकार । 'सूर' अमर हम रहे पचि हार ॥
तुमरो मर्म न जानै सार । नर बपुरो क्यों करै बिचार ?
अरुन[5] असित[6] सित[7] बपु अनुहार । करत जगत में तुम अवतार ॥
सो जग को मिथ्या कहि जाय ? जहाँ तरे तुम्हरे गुन गाइ ॥
प्रेमभक्ति बिनु मुक्ति न होइ । नाथ, कृपा करि दीजै सोइ ॥
और सकल हम देख्यो जोइ । तुम्हरी कृपा होइ सो होइ ॥
इह तनु है प्रभु जैसे ग्राम । यामें सब्दादिक[8] बिस्राम ॥
अधिष्ठाता तुम हौ भगवान । जान्यो जगत न तुम अस्थान[9] ॥
तुव स्वासा में पुहुमी[10] नाथ । स्वास रूप हम लख्यो न बात ॥
कहा कहि तुम्हरी अस्तुति करैं । बानी नमो नमो उच्चरैं ॥

[1]पास । [2]दर्पण । [3]कामदेव के समान सुंदर । [4]सत्व, रज और तम । [5]लाल, द्वापर में भगवान् का रंग लाल माना गया है । [6]कृष्ण, कलि में भगवान् का रंग काला माना गया है । [7]सफ़ेद, सत्ययुग में श्वेतवर्ण माना गया है । [8]शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श, ये पंचेंद्रियों के विषय हैं । [9]स्थान । [10]पृथ्वी ।

जगत-पिता तुमहीं हौ ईस । यातें हम बिनवत जगदीस ॥
तुम-सम द्वितिया और न आहि । पटतर देहिं नाथ हम काहि ?
सुक[1] जैसे वेद-स्तुति गाई । तैसे हीं मैं कहि समुझाई ॥
'सूर' कह्यौ श्रीमुख उच्चार । कहै-सुनै सो तरै भवपार ॥५०॥

जैतिश्री

जैसे राखहु वैसेहि रहौं ।
जानत दुख-सुख सब जन के तुम, मुख करि कहा कहौं ?
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कबहूँ भूख सहौं ।
कबहुँक चढ़ौं तुरंग[2] महागज, कबहुँक भार बहौं[3] ॥
कमल-नयन घनस्याम मनोहर, अनुचर भयो रहौं ।
'सूरदास' प्रभुभक्त कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं ॥५१॥

धनाश्री

सुआ[4], चलु वा बन को रसु लीजै ।
जा बन[5] कृष्ण-नाम-अमरित-रस, श्रवन-पात्र भरि पीजै ॥
को तेरो पुत्र पिता तू काको, मिथ्या भ्रम जग केरो ।
काल-मँजार[6] लै जैहै तोकों, तू कहै 'मेरो-मेरो' ॥
हरि नाना रस मुकति-क्षेत्र चलु, तोकों हौं दिखराऊं ।
'सूरदास' साधुनि को संगति, बड़े भाग्य जो पाऊं ॥५२॥

बिहाग

रे मन मूरख, जन्म गँवायो ।
करि अभिमान विषयरस रॉच्यो[7], स्यामसरन नहिं आयो ॥
यह संसार फूल सेमर[8] कौ, सुंदर देखि भुलायो ।

[1]वेदव्यास के पुत्र श्री शुकदेव जी । [2]घोड़ा । [3]ढोऊं । [4]तोता; यहां जीव से आशय है । [5]वह वन अर्थात् दिव्य गोलोक । [6]बिल्ली । [7]रंग गया, लीन हो गया । [8]शाल्मलि; इस पेड़ में सिर्फ़ लाल-लाल फूल होते हैं, जिनमें बड़ी मुलायम रुई निकलती है ।

चाखन लाग्यो रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहि आयो ॥
कहा भयो अब के मन सोचे, पहिले नाहिं कमायो।
कहत 'सूर' भगवंत-भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायो ॥५३॥

गौरी

जादिन मन-पंछी[1] उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं।
घर के कहें, वेगि ही काढ़ौ, भूत भये कोउ खैहैं।
जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं।
कहँ वह ताल[2] कहां वह सोभा, देखत धूरि उड़ैहैं॥
भाइ बंधु अरु कुटुँब-कबीला[3], सुमिरि-सुमिरि पछितैहैं।
बिनु गोपाल कोउ नहिं अपनां, जसु अपजसु रहि जैहैं॥
जो 'सूरज' दुर्लभ देवन कों, सतसंगति में पैहैं॥५४॥

सारंग

रे मन, जन्म अकारथ[4] जात।
बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वैहै, ज्यों तरुवर के पात॥
सन्निपात[5] कफ कंठ-बिरोधी, रसना टूटी बात।
प्रान लिये जम जात मूढ़मति, देखत जननी तात॥
छिन इक माहिं कोटि जुग बीतत, पीछे नरक की बात।
यह जग प्रीति सुआ सेमर कौ, चाखत हीं उड़ि जात॥
जम के फंद नाहिं परि बौरे, चरनन चित्त लगात।
कहत 'सूर' बिरथा यह देही, अंतर क्यों इतरात[6]॥५५॥

सारंग

कहां सुख ब्रज कौ सो संसार।

[1]पक्षी, प्राण। [2]शरीर। [3]स्त्री-पुत्रादि। [4]व्यर्थ। [5]त्रिदोष नाम की महा भयंकर बीमारी। [6]घमंड करता है।

कहां सुखद बंसीबट[१] जमुना, यह मन सदा बिचार ।
कहँ बनधाम, कहां राधा सँग, कहां संग ब्रज-बाम ।
कहँ रस रास बीच अंतरसुख[२], कहां नारि तनु दाम ।।
कहां लता, तरु-तरु प्रति झूलनि, कुंज-कुंज बनधाम ।
कहां बिरह-सुख[३] बिनु गोपिन सँग, 'सूरस्याम' मम काम ।।५६।।

भैरवी

सदा एकरस एक अखंडित, आदि अनादि अनूप ।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत जुगलस्वरूप[४] ।।
सकल तत्व[५] ब्रह्मांड देव पुनि, माया सब बिधि काल ।
प्रकृतिरूप श्रीपति[६] नारायण, सब हैं अंस गोपाल[७] ।।
कर्मयोग पुनि ज्ञान, उपासन, सबहीं भ्रम भरमायो ।
श्रीबल्लभ[८] गुरु तत्व[९] सुनायो, लीला-भेद बतायो ।।
तादिन तें हरि-लीला गायी, एक लच्छ पद बंद ।
ताको सार 'सूर सारावलि', गावत अति आनंद[१०] ।।५७।।*

बिलावल

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ । हरि-चरनारबिंद उर धरौ ।।

[१] एक बटवृक्ष, जिसके नीचे खड़े होकर श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे। आज भी वह स्थान 'वंशीबट' के नाम से प्रसिद्ध है। [२] आत्मानंद। [३] विरहानंद, विरह में भी बड़ा भारी आनंद होता है। अत्यंत विरहासक्ति ही भक्ति की पराकाष्ठा है। [४] राधा-कृष्ण। [५] पच्चीस तत्व। [६] लक्ष्मीपति विष्णु। [७] महाविष्णु। [८] श्रीवल्लभाचार्य, जिन्होंने विष्णुस्वामि संप्रदाय के अंतर्गत "पुष्टिमार्ग" सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। सूरदासजी इनके पट्टशिष्य थे। [९] सारस्वरूपा प्रेमपरा भक्ति।

*इस पद में सूरदासजी अपना वैष्णव सिद्धांत कह रहे हैं। युगल-स्वरूप राधाकृष्ण निरंतर विहार करते हैं। उस विहारस्थली में केवल गोपियों (मुक्त जीव, जिन्हें कबीर साहब 'हंस' कहते हैं) की पहुँच है। वहां काल की गति नहीं। प्रकृति, पुरुष, काल आदि सब नित्यविहारी के अंश मात्र हैं।

हरि की कथा होइ जब जहां । गंगाहू चलि आवै तहां ।।
जमुना सिंधु सरस्वति आवैं । गोदावरी विलंब न लावें ।।
सर्ब तीरथ को वासा[1] तहां । 'सूर', हरि-कथा होवै जहां[2] ।।५८।।

---

[1]बास । [2]यह पद निम्नलिखित श्लोक का छायानुवाद जान पड़ता है :
तत्रैव गंगा यमुना च वेणी, गोदावरी सिंधु सरस्वती च ।
सर्वाणि तीर्थानि वसंति तत्र, यत्राच्युतोदारकथाप्रसंगः ।।

श्रीनंददास

छप्पय

लीला-पद-रस-रीति-ग्रंथ-रचना में नागर ।
सरस-उक्ति-युत युक्ति, भक्ति-रस-गान-उजागर ।।
प्रचुरय पध लौं सुजसु रामपुरग्राम-निवासी ।
सकल सुकल-संवलित भक्त-पद-रेनु-उपासी ।।
चंद्रहास-अग्रज सुहृद्, परमप्रेम-पथ में पगे ।
नंददास आनंदनिधि, रसिक सुप्रभु-हित-रँगमगे ।।

—नाभाजी

उपर्युक्त छप्पय से केवल इतना ही प्रकट होता है कि नंददासजी रामपुर ग्राम के निवासी थे, और चंद्रहास के जेठे भाई से इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। अब प्रश्न यह है कि रामपुर ग्राम और चंद्रहास से क्या तात्पर्य है ? पर इसमें संदेह नहीं, कि छप्पय में उल्लिखित नंददास अष्टछाप के ही नंददास हैं, अन्य नहीं। यह बात बहुत प्रचलित है कि नंददासजी गोसाईं तुलसीदास के बड़े या छोटे भाई थे। इसका प्रमाण "२५२ वैष्णवन की वार्ता" नामक ग्रंथ कहा जाता है। स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजी ने स्वसंपादित 'रासपंचाध्यायी' में लिखा है, कि " '२५२ वैष्णवों की वार्ता' में नंददासजी 'सनौढ़िया' ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई थे। ये दोनों भाई रामानंद जी के शिष्य थे। इत्यादि ।" 'मिश्रबंधु-विनोद' में लिखा है, कि " 'वार्ता' देखने से प्रकट हुआ कि उसमें नंददास को 'केवत' (?) ब्राह्मण और गोस्वामी तुलसीदास का भाई कहा गया है। इससे प्रकट है कि नंददासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे ।" बड़े आश्चर्य की बात है कि एक ही 'वार्ता' से एक महोदय सनौढ़िया

ब्राह्मण लिख रहे हैं, तो दूसरे केवल अर्थात् कान्यकुब्ज[1] !

हमारे सामने वैष्णव ठाकुरदास सूरदास द्वारा प्रकाशित और मुंबई के जगदीश्वर प्रेस में मुद्रित '२५२ वैष्णव की वार्ता' प्रस्तुत है। यह संस्करण संवत् १६४७ का है। उसमें २४ पृष्ठ पर नंददासजी के संबंध में जो लिखा है उसे हम यहां अविकल उद्धृत करते हैं :

"सो वे नंददासजी तुलसीदास के छोटे भाई हते। सो बिनकूं नाच तमासा देखबे को तथा गान सुनबे को सौक बहुत हतो।" इत्यादि।

नंददासजी की 'वार्ता' में न तो सनौढ़िया का ही और न केवल ब्राह्मण का ही कोई उल्लेख मिला। 'वार्ता' में श्रीरामचंद्रजी के अनन्य भक्त तुलसीदास का नाम अवश्य आया है, किंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह तुलसीदास 'रामचरित-मानस' के लेखक गोसाइं तुलसीदास ही थे। दूसरे कहीं भी गोसाइं जी ने नंददासजी के संबंध में कोई चर्चा नहीं चलाई है। तीसरे गोसाइं तुलसीदास ऐसे हठधर्मी भी नहीं थे कि वे नंददास को द्वारिकाधीश रणछोड़जी के दर्शन करने के लिए मना करते, जैसा कि 'वार्ता' में लिखा है। सारांश यह, कि नंददास और गोसाइं जी का सहोदर होना सिद्ध नहीं होता। यह भी ठीक-ठीक मालूम नहीं हो सकता कि नंददासजी सनौढ़िया थे, सरयूपारीण थे, केवल या कान्यकुब्ज थे, अथवा कोई और जाति। यदि गोसाइं तुलसीदास से ही किसी प्रकार संबंध जोड़ना इष्ट है, तो यह संभव हो सकता है कि ये दोनों महानुभाव गुरु-भाई रहे हों।

राजा प्रतापसिंह-कृत 'भक्तकल्पद्रुम' (जो 'विनोद' में भी प्रामाणिक समझा गया है) में, नाभाजी के ही अनुसार, नंददास को रामपुर-

[1] समझ में नहीं आता कि 'हिंदी-नवरत्न' में यह कैसे लिखा गया कि "पूरा ज़िला बांदा और राजापुर के इर्द-गिर्द कान्यकुब्ज द्विवेदियों की बस्ती है न कि सरवरिया ब्राह्मणों की।" राजापुर ख़ास में कुछ घर कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के आज-कल हैं। इर्द-गिर्द तो कान्यकुब्ज शायद हैं ही नहीं। उधर सरयूपारीण ब्राह्मण ही पाये जाते हैं।

निवासी चंद्रहास का पुत्र माना है। राजा साहब ने यह भारी भूल की है कि नंददास को चंद्रहास का पुत्र लिखा है। नाम, ग्राम और कुल के संबंध में हमें नाभाजी की 'भक्तमाल' ही अधिक प्रामाणिक जँचती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि 'वार्ता' में उल्लिखित चरित्र असत्य है। 'वार्ता' अक्षरशः सत्य है, किंतु उससे यह ध्वनि ज़रा भी नहीं निकलती कि नंददास कहां के निवासी थे, किस तुलसीदास के भाई थे और किस जाति के थे।

'वार्ता' में लिखा है कि द्वारिका जाते हुए नंददासजी सिंधुनद ग्राम में एक रूपवती खत्रानी पर आसक्त हो गये। यह उस स्त्री के घर की फेरी दिया करते थे। घरवालों ने इन्हें बहुत कुछ हटाया, पर यह वहां से किसी तरह न हटे। इन्होंने उस सुंदरी खत्रानी को रणछोड़नाथ और उसके घर को द्वारिका समझ लिया। लाचार हो घरवाले उस स्त्री को लेकर इनसे पिंड छुड़ाने गोकुल को चले। आप भी उन लोगों के पीछे-पीछे चलने लगे। गोकुल गाँव में आकर गोसाईं बिट्ठलनाथजी के सदुपदेश से इनका सारा मोह दूर हो गया और कुछ दिनों के बाद यह गोसाईं जी के पट्टशिष्यों में गिने जाने लगे। श्रीनवनीतप्रियजी के आगे नंददासजी प्रायः कृष्ण-कीर्त्तन किया करते थे। इनकी भक्ति-भाव-भरी पदावली पर गोसाईं बिट्ठलनाथजी ऐसे मुग्ध हो गये कि उन्हें 'अष्टछाप' में उपयुक्त स्थान दे दिया। अष्टछाप में यदि सूरदास सूर्य हैं, तो नंददास निश्चय ही चंद्रमा हैं। इन्होंने 'रासपंचाध्यायी', 'दशमस्कंध भागवत', 'रुक्मिणीमंगल', 'रूप-मंजरी', 'रसमंजरी', 'विरहमंजरी', 'नामचिंतामणिमाला', 'अनेकार्थमाला', 'दानलीला', 'मानलीला', 'अनेकार्थमंजरी', 'ज्ञानमंजरी', 'श्यामसगाई' और 'भ्रमरगीत' की रचना की। हितोपदेश और गद्यात्मक 'नासिकेतपुराण' भी इनके बनाये कहे जाते हैं। अब तक 'रासपंचाध्यायी', 'भ्रमरगीत', 'अनेकार्थ-मंजरी' और 'नाममाला' ये चार पुस्तकें ही प्रकाशित हुई हैं। 'रासपंचाध्यायी' के तीन संस्करण हो चुके हैं। एक काशी नागरी-प्रचारिणी सभा का, दूसरा बाबू बालमुकुंद गुप्त संपादित 'भारतमित्र' का और तीसरा श्री ब्रजमोहन

लाल विशारद द्वारा संपादित ।

नंददासजी के ग्रंथ इतने रोचक और भावपूर्ण हैं, कि उनकी टक्कर लेनेवाले ग्रंथ हिंदी में बहुत ही कम होंगे । कृत्रिमता का तो कहीं नाम भी नहीं । 'रासपंचाध्यायी' को यदि हिंदी का 'गीतगोविंद' कहें तो अत्युक्ति न होगी । रोला छंद लिखने में नंददासजी जितने सफल हुए हैं उतना कोई अन्य कवि नहीं हुआ । छंदबद्ध कोष लिखनेवालों में भी यही सर्व-प्रथम आते हैं । 'अनेकार्थमाला' में एक शब्द के कई अर्थ दिये हैं । उदाहरण के लिये 'सारँग' शब्द नीचे दिया जाता है :

पिक, चामर, कच, संघ, कुच, कर, वायस हू होय ।
खंजन, चंचल, मिरगमद, काम, बिसन हैं सोय ।।
छिती, तलाव, भुजंग पुनि, को बड़ भानु समान ।
सारँग श्रीभगवान को, भजिए कृपानिधान ।।
सारँग सुंदर को कहत, रात दिवस, बड़ भाग ।
खग, पानी अरु धन कहिय, अंबर, अबला, राग ।।
रवि, ससि, दीपक, गगन हरि, केहरि, कुंज, कुरंग ।
चातक, दादुर, दीप, हल, ये कहिए सारंग ।।

'नाममाला' में और भी चमत्कार है । नामों के साथ-साथ साहित्यिक सामग्री भी उसमें जुटाई गई है । जैसे :

अग, नग, भूभृत, दरीभृत, शृंगी, शिखरी होय ।
शैल, शिलोच्चय, गोत्र, हरि, अद्रि, ग्राव पुनि सोय ।।
गिरि गोबर्धन बाम कर, धर्‌यो स्याम अभिराम ।
तो उरतें वा धकधकी, गईं न अबलौं बाम ।।

इन रचनाओं के अतिरिक्त आपके कुछ फुटकर पद भी मिलते हैं । किंतु सर्वोत्तम रचना में 'रासपंचाध्यायी' और 'भ्रमरगीत', ये दो ग्रंथ ही आते हैं । 'मिश्रबंधुविनोद' में नंददासजी पद्माकर-श्रेणी में रखे गये हैं । यह निर्णय सुरसिक-साहित्य-मर्मज्ञ पाठकों पर ही छोड़ा जाता है, कि नंददास और पद्माकर में कितना कुछ अंतर है ।

नंददास के समसामयिक ध्रुवदासजी ने इनकी भक्ति-भावना और भाव-रसकिता को बड़ी ही सुंदर पंक्तियों में अंकित किया है :

नंददास जो कछु कह्यौ, राग-रंग में पागि।
अच्छर सरस सनेहमय, सुनत होत हिय जागि॥
रसिक-दसा अद्भुत हुती, करत कवित्त सुढार।
बात प्रेम की सुनत ही, छुटत प्रेमजल-धार॥
रसिक बावरो-सो फिरे, खोजत हित की बात।
आछे रस के वचन सुनि, बेगि बिवस ह्वै जात॥

वास्तव में, नंददासजी परमभागवत, महान् भावुक और उच्च प्रतिभावान सत्कवि थे। इनकी रचना हृदय-बेधिनी, मर्म-स्पर्शिनी, सरस और सजीव है। नीचे इनकी सरस रचनाओं से कुछ पद्य उद्धृत किये जाते हैं :

रासपचाध्यायी

रोला

बंदन करौं कृपानिधान श्रीसुक सुभकारी।
सुद्ध ज्योतिमय रूप, सदा सुंदर अविकारी॥
हरि-लीला-रस-मत्त मुदित नित बिचरत जग में।
अद्भुतगति, कहुँ नहीं अटक, ह्वै निकसे मग में॥
नीलोत्पल[1]-दल-स्याम अंग नवजोबन भ्राजै।
कुटिल अलक मुखकमल, मनों अलि-अवलि बिराजै॥
सुंदर भाल बिसाल दिपति जनु निकर निसाकर।
कृष्ण-भक्ति-प्रतिबिंब, तिमिर[2] कौं कोटि दिवाकर॥
कृपा-रंग-रस-अयन नयन राजत रतनारे[3]।
कृष्ण-रसामृत-पान-अलस कछु घूमघुमारे[4]॥
स्रवन कृष्ण-रस-भवन गंड-मंडल भल दरसै।
प्रेमानंद-मलिंद[5] मंद मुसकनि मधु बरसै॥

[1]नीला कमल। [2]अँधेरा, अज्ञान। [3]लाल। [4]उनींदे, मस्त। [5]भ्रमर।

उन्नत नासा, अधर-बिंब, सुक की छबि छीनी ।
तिन बिच अद्भुत भाँति लसत कछु इक मसिभीनी[1] ॥
कंबु-कंठ की रेख देखि हरि धर्म प्रकासैं ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह जिहिं निरखत नासैं ॥
उरवर पर अति छबि की भीरा[2] बरनि न जाई ।
जेहि भीतर जगमगत[3] निरंतर कुँवर कन्हाई ॥
सुंदर उदर उदार रोमावलि राजति भारी ।
हिय सरवर रसभरी चली मनु उमगि पनारी[4] ॥
ता रस[5] की कुंडिका[6] नाभि सोभित अति गहरी ।
त्रिवली तामें ललित भाँति जनु उपजति लहरी ॥
अति सुदेस कटि देस सिंह सोभित सघनन अस ।
जोबन-मद आकरसत[7], बरसत प्रेम सुधा-रस ॥
गूढ़ जानु, आजानुबाहु, मद-गज गति लोलैं[8] ।
गंगादिकन पवित्रकरन अवनी में डोलैं ॥
सुंदर पद अरबिंद मधुर मकरंद सुग्ध जहँ ।
मुनि-मन-मधुकर-निकर[9] सदा सेवत लोभी तहँ ॥
जब दिनमणि श्रीकृष्ण द्रगन तें दूरि भये दुरि ।
पसरि पर्‌यो अँधियार सकल संसार घुमड़ घुरि ॥
तिमिर ग्रसित सब लोक-ओक-दुख देखि दयाकर ।
प्रगट कियौ अद्भुत प्रभाव भागवत-बिभाकर[10] ॥
जे सँसार अँधियार अगर में मगन भये बर ।
तिन हित अद्भुत दीप प्रगट कीनों जु कृपाकर ॥

[1]मसि भीजना । ओठों पर मूछों का कुछ-कुछ दिखाई देना । इसे 'रेख निकलना' भी कहते हैं । यह वर्णन किशोरावस्था का है । [2]झलकते हैं । [3]छोटा-सा धारा । [4]पुंज । [5]प्रेमरूपी जल । [6]कुंडा, गड्ढा । [7]खींचता । [8]हिलती-डुलती है । [9]समूह । [10]प्रकाशित ।

'श्रीभागवत' सुनाम परम अभिराम, परम मति ।
निगम-सार[१] सुकुमार[२] बिना गुरु कृपा अगम अति ॥
ताही में मणि अति रहस्य यह 'पंचाध्यायी' ।
तन में जैसे पंचप्रान, असि सुक मुनि गाई ॥
परम रसिक इक मित्र[३] मोहिं तिन आग्या दीनीं ।
ताहीं तें यह कथा जथामति भाषा कीनीं ॥१॥...
ताहीं छिन उड़राज उदित रस-रास-सहायक ।
कुमकुम-मंडित-बदन प्रिया जनु नागरि-नायक ॥
कोमल किरन अरुन मानों बन व्याप रही त्यों ।
मनसिज खेल्यौ फागु घुमड़ घुरि रह्यो गुलाल ज्यों ॥
फटिक[४] -छटा-सी किरन कुंज-रंध्रन[५] जब आई ।
मानहुँ वितन[६] बितान सुदेस[७] तनाव तनाई ॥
मंद-मंद चल चारु चंद्रमा अति छवि पाई ।
झलकत है जनु रमारमन[८] पिय कौतुक आई ॥
तब लीनीं कर कमल जोग-मायासी[९] मुरली ।
अघटत-घटना-चतुर, बहुरि अधरन सुर जु-रली[१०] ॥
जाकी धुनि तें निगम अगम[११] प्रगटित बड़नागर ।
नादब्रह्म की जानि मोहिनी सब सुख-सागर ॥
पुनि मोहन सों मिली कछू कल गान कियौ अस ।
बाम बिलोचन बास तियन मनहरन होय जस ॥

[१]वेदों का निचोड़। [२]नित्यकिशोर सुकदेव। [३]मित्र का नाम स्पष्ट नहीं किया गया है। कहते हैं, नंददासजी के मित्र से यहां गंगाबाईजी से आशय है। गंगाबाई श्रीगोसाईं विट्ठलनाथजी की शिष्या थीं। यह कविता में अपना नाम "श्री विट्ठल गिरिधरन" लिखा करती थीं। [४]स्फटिक; बिल्लौर पत्थर। [५]छेद। [६]अनंग, कामदेव। [७]सुंदर। [८]विष्णु। [९]पराप्रकृति, परमेश्वर की आदिशक्ति। [१०]मिली हुई। [११]आगम, शास्त्र।

मोहन-मुरली-नाद स्रवन कीनों सब किनहूं ।
जथा-जथा-विधि रूप, तथा विधि परस्यौ तिनहूं ॥
तरनि[1]-किरन ज्यों मनि पखान[2] सबहिन के दरसे ।
सुरजकांति मणि बिना नहीं कहुँ पावक परसे ॥
सुनत चलीं ब्रजबधू गीत-धुनि कौ मारग गहि ।
भवन भीत द्रुम-कुंज-पुंज कितहुं अटकी नहि ॥
नाद-अमृत कौ पंथ रँगीलो सुच्छम भारी ।
तेहिं मग ब्रजतिय चलैं, आन कोउ नहिं अधिकारी ॥
सुद्धप्रेममय रूप पंचभूतनि[3] तें न्यारी ।
तिन्हैं कहा कोउ कहै, ज्योति-सी जगत[4] उजारी ॥
जे रुकि गईं घर अति अधीर गुनमय सरीरबस[5] ।
पुन्य-पाप-प्रारब्ध-रच्यौ तन नाहिं पच्यौ रस ॥
परम दुसह श्रीकृष्ण-विरह-दुख ब्याप्यौ जिन में ।
कोटि बरस लग नरक-भोग-अघ भुगते छिन में ॥
धातु-पात्र पापान[6] परसि कंचन ह्वै सोहै ।
नंदसुवन-सों परम प्रेम यह अचरज को[7] है ?
ते पुनि तिहिं मग चलीं रँगीलीं तजि ग्रह-संगम ।
जनु पिंजरन तें उड़े, छुड़े नवप्रेम-विहंगम ॥२॥

दोहा

कुंज-कुंज ढूँढ़त फिरीं, खोजत दीनदयाल ।
प्राननाथ पाये नहीं, बिकल भई ब्रज-बाल ॥

[1]सूर्य । [2]सूर्यकांतमणि । कहते हैं कि सूर्य के तेज से यह पत्थर आप से आप पिघलने लगता है । [3]पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच तत्व । [4]उजली । [5]बुद्धि, सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि शरीर के गुण हैं । [6]पारस पत्थर से आशय है । प्रवाद है, कि इसके स्पर्श से लोहा सुवर्ण हो जाता है । [7]क्या ।

रोला

विरहाकुल ह्वै गईं सबै पूछत बेली बन।
को जड़ को चैतन्य, न कछु जानत बिरहीजन[१]॥
हे मालति, हे जाति[२], जूथके[३], सुनि हित दै चित।
मान-हरन मन-हरन लाल गिरिधरन लखे इत?
हे केतकि, इततें कितहूं चितये पिय रूसे[४]।
कै नँदनंदन मंद मुसुकि तुम्हरे मन मूसे[५]?
हे मुक्ताफल, बेलि-धरे मुक्ताफल माला।
देखे नैन बिसाल मोहना नँद के लाला[६]॥
हे मंदार, उदार बीर करबीर[७] महामति।
देखे कहुँ बलबीर[८] धीर मन हरन धीरगति?
हे चंदन, दुख-दंदन सब की जरनि जुड़ावहु[९]।
नँदनंदन जगबंदन चंदन हमहिं बतावहु॥
पूछौ री, इन लतनि फूलि रहि फूलनि जोई[१०]।
सुंदर पिय के परस बिना अस फूल[११] न होई॥
हे सखि, हे मृग-बधू इन्हें किन पूछहु अनुसरि[१२]।
डहडहे[१३] इनके नैन, अबहिं कहुँ देखे हैं हरि॥
अहो सुभग बन गंधि, पवन सँग थिर जु रही चलि।
सुख के भवन दुखदमन रमन इतते चितये, बलि[१४]?
हे चंपक, हे कुसुम, तुम्हें छवि सब तें न्यारी।
नेकु बताय जु देउ, जहां हरि कुंज बिहारी॥

[१]यह पद मेघदूत के 'कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु' की याद दिलाता है। [२]जूही। [३]यूथिका, पुष्प-विशेष। [४]रूठे, क्रुद्ध। [५]चुराये, हरे। [६]नंद के लाड़िले पुत्र। [७]वृक्ष-विशेष। [८]बलभद्र के भाई श्रीकृष्ण। [९]जलन शीतल करते हो। [१०]योग्य। [११]आनंद। [१२]पीछे-पीछे जाकर। [१३]आनंदित। [१४]बलैया लेती हूं।

हे कदंब, हे निंब, अंब, क्यों रहे मौन गहि ?
हे बट, उतँग सुरंग वीर कहुँ तुम इत-उत लहि ?
हे असोक, हरि सोक, लोकमनि[1] पियहि बतावहु ।
अहो पनस[2], सुभ सरस मरत तिय अमिय पियावहु ॥
जमुन निकट के बिटप पूँछि भइ निपट उदासी ।
क्यों कहिहैं सखि अति कठोर ये तीरथ-बासी !
हे जमुना, सब जानि-बूझि तुम हठहि गहति हौ ।
जो जल जग-उद्धार ताहि तुम प्रगट बहति हौ ॥
हे अवनी, नवनीत-चोर चित-चोर हमारे ।
राखे कितहुँ दुराय बतावहु प्रान-पियारे ॥
हे तुलसी, कल्यानि सदा गोविंद-पद-प्यारी ।
क्यों न कहौ तुम नंदसुवन सों बिथा हमारी ॥
जहँ आवत तमकुंज[3]-पुंज गहवर[4]-तरु-छाईं ।
अपने मुख चाँदने[5] चलत सुंदर बन माईं ॥
इहि बिधि बन घन ढूँढ़ि बूझि उनमत[6] की नाईं ।
करन लगीं मनहरन लाल-लीला[7] मन भाईं ॥
मोहनलाल रसाल की लीला इनहीं सोहैं ।
केवल तन्मय[8] भईं न कछु जानैं हम कोहैं ॥३॥...
जो अनेक जोगेश्वर-हिय में ध्यान धरत हैं ।
एकहिं बेर रूप इक सब कों सुख बितरत हैं ॥
जोगीजन बन जाय जतन करि कोटि जनम पचि[9] ।
अति निर्मल करि राखत हिय में आसन रचि-रचि ॥
कछु छिन तहँ नहिं जात नवल-नागर सुंदर हरि ।

[1]त्रिभुवन शिरोमणि । [2]कटहर । [3]सघन वृक्षावलि से अँधेरी कुंज । [4]दुर्गम, सघन । [5]चंद्रमा का प्रकाश । [6]उन्मत्त, पागल । [7]प्यारे कृष्ण का चरित्र । [8]तल्लीन; कृष्ण-रूप । [9]थक कर ।

ब्रजजुवतिन के अंबर[1] पर बैठे अति रुचि करि ॥
कोटि-कोटि ब्रह्मांड जदपि एकहि ठकुराई[2] ।
ब्रजदेबिन की सभा साँवरे अति छबि पाई ॥
ज्यों नवमंडल-मध्य कमल-कर्णिका सुभ्राजै ।
त्यों सब सुंदरि-सन्मुख सुंदर स्याम बिराजै ॥४॥...
तब बोले ब्रजराज-कुँवर हौं रिनी[3] तुम्हारो ।
अपने मनतें दूरि करौ किन[4] दोष हमारो ?
कोटि कल्प लगि तुम प्रति, प्रति-उपकार करौं जौ ।
हे मनहरनी तरुनी ! उरनी[5] नाहि तबौं तौ ॥
सकल बिस्व अपबस[6] करि मो माया सोहति है ।
प्रेममयी तुम्हरी माया सो मोहिं मोहति है ॥
तुम जु करी सो कोउ न करै सुनि नवल किसोरी ।
लोक-बेद की सुदृढ़ सृंखला[7] तृन-सम तोरी ॥५॥...
सकल तियन के मध्य साँवरो पिय सोभित अस ।
रत्नावलि[8]-मधि नीलमनी अद्भुत झलकै जस ॥
नव मरकतमनि[9] स्याम कनक-मनिगन-ब्रजबाला ।
बृंदाबन को रीझि मनों पहिराई माला ॥
नूपुर, ककन, किंकिनि[10], करतल, मंजुल मुरली ।
ताल, मृदंग, उपंग[11], चंग ऐकै सुर जुरली ॥
मृदुल-मधुर टंकार, ताल, झंकार मिली धुनि ।
मधुरजंत्र की तार भँवर-गुंजार रली पुनि ॥
तैसिय मृदु पद-पटकनि, चटकनि[12] करतारनि[13] की ।

[1]कपड़ा। [2]स्वामित्व; राज्य। [3]ऋणी, अनुगृहीत। [4]क्यों नहीं। [5]उऋण, बेबाक। [6]स्वाधीन। [7]ज़ंजीर। [8]रत्नों की राशि, रत्नों के समान गोपियां। [9]नील-मणि। [10]तगड़ी। [11]नस-तरंग, एक प्रकार का बाजा। [12]चटचट-ध्वनि। [13]हाथ की तालियों से।

लटकनि, मटकनि, झलकनि कल कुंडल-हारन की ॥
साँवल पिय के संग नृतति यों ब्रज की बाला ।
जनु घन-मंडल मंजुल खेलति दामिनि माला ॥
छबिलि तियनि के पाछें आछें[1] बिलुलित[2] बेनी ।
चंचलरूप-लतानि-संग डोलति अलि-सेनी[3] ॥
मोहन पिय की मुसुकनि, ढलकनि मोर-मुकुट की ।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि[4] पियरे[5] पट की ॥
बदन-कमल पर अलक छुटी कछु श्रम की झलकनि[6] ।
सदा रहौ मन मेरे मोर-मुकुट की ढलकनि ॥
कोउ सखी कर पकरति, निरतति यों छबिली तिय ।
मानों करतल फिरत देखि नट लटू होत पिय ।
कोउ नायक के भेद-भाव लावन्य-रूप-बस ।
अभिनय कर दिखरावति, अरु गावति पिय के जस ॥६॥...
पिय के मुकुट की लटकनि, मटकनि मुरली-रव[7] अस ।
कुहुकि-कुहुकि मनु नाचत मंजुल मोर भरे-रस[8] ॥
खिरतें सुमन सुदेश जु बरसत अति आनँद-भरि ।
मनु पदगति पर रीझि अलक पूजनि फूलनि करि[9] ॥
स्रमजल संुदर बिंदु रंग भरि अति छबि बरसत ।
प्रेम-भक्ति-बिरवा[10] जिनके, तिनके हिय सरसत ॥
बृंदाबन के त्रिविध पवन[11] बिजना[12] जु बिलोलैं[13] ।
जहँ-जहँ स्रमित बिलोकत, तहँ-तहँ रस भरि डोलैं ॥
बड़े अरुन पट बासन[14] मंडल मंडित ऐसे ।
प्रेमजाल के गोलक[15] कछु छबि उपजत जैसे ॥

[1]अच्छी तरह से । [2]हिलती हुई । [3]भ्रमरों की श्रेणी, अर्थात् पंक्ति । [4]फहराना । [5]पीले । [6]पसीने की बूँदें । [7]स्वर । [8]आनंदित । [9]फूलों से । [10]पेड़ । [11]शीतल, मंद और सुगंध वायु । [12]पंखा । [13] झलते हैं । [14]वसन । [15]आँख की पुतली ।

कुसुम-धूर धूमरी[१] कुंज मधुकरनि-पुंज जहँ ।
ऐसेहुँ रस-आवेस[२] लटकि कीन्हों प्रवेस तहँ ॥७॥...
भीजि बसन तन लिपटि निपट छबि अंकित है अस ।
नैननि के नहिं बैन, बैन के नैन नहीं जस ॥
नित्यरास-रस मत्त नित्य गोपीजनवल्लभ[३] ।
नित्य निगम जो कहत नित्य, नवतन अति दुरलभ ॥
यह अद्भुत रस-रास महाछबि कहति न आवै ।
सेस सहसमुख गावत तौहूं अंत न पावै ॥
सिव मनहीं मन ध्यावै, काहू नाहिं जनावै ।
सनक सनंदन नारद सारद[४] अति मन भावै ॥८॥...
यह उज्वल रस-माल[५] कोटि जतनन करि पोई[६] ।
सावधान होइ पहिरौ, इहि तोरौ मति कोई ॥
स्रवन-कीरतन-ध्यान-सार सुमिरन कौ है पुनि ।
ग्यानसार, हरिध्यानसार, स्रुतिसार[७] गुथी पुनि ॥
अघहरनी, मनहरनी, सुंदर रस-बिस्तरनी ॥
'नंददास' के कंठ बसौ नित मंगलकरनी ॥ ९ ॥

भँवरगीत

ऊधव कौ उपदेसु सुनौ ब्रज-नागरी ।
रूप-सील-लावन्य सबै गुन-आगरी[८] ॥
प्रेम-धुजा रसरूपिनी, उपजावत सुख पुंज ।
सुंदर स्याम बिलासिनी, नव बृंदाबन कुंज ॥
सुनो ब्रज-नागरी ॥१॥
कहन स्याम-संदेस एक मैं तुम पै आयौ ।

[१]अँधेरी । [२]वेग । [३]कंत, प्यारे । [४]शारदा, सरस्वती । [५]प्रेमरस की माला, 'रासपंचाध्यायी' से तात्पर्य है । [६]पिरोई; गूँथी । [७]वेदों का निचोड़ । [८]बड़ी ।

कहन समै संकेत[1] कहूँ अवसर नहिं पायौ ॥
सोचत ही मन में रह्यौ, कब पाऊँ इक ठाउँ ।
कहि सँदेस नँदलाल कौ, बहुरि मधुपुरी जाउँ ।
सुनौ ब्रज-नागरी ॥२॥

जो उनके गुन[2] होयँ वेद क्यों नेति[3] बखानैं ?
निरगुन सगुन आत्मा रचि ऊपर सुख सानैं ॥
वेद पुराननि खोजि कै, पायो कितहुँ[4] न एक ।
गुनही के गुन होहि तें, कहौ अकासहि टेक ॥
सुनौ ब्रज-नागरी ॥३॥

जो उनके गुन नाहिं, और गुन भये कहां ते ।
बीज-बिना तरु जमै मोहिं तुम कहौ कहां ते ?
वा गुन[5] की परछाँह री, माया-दरपन बीच ।
गुन तें गुन न्यारे भये, अमल वारि मिलि कीच ।
सखा सुन स्याम के ॥४॥

प्रेम जु कोऊ वस्तु रूप देखत लौ[6] लागै ।
वस्तु दृष्टि बिन कहौ कहा प्रेमी अनुरागै ॥
तरनि चंद्र के रूप कों, गुन गहि पायो जान ।
तौ उनको कह जानिये, गुनातीत भगवान ॥
सुनौ ब्रज-नागरी ॥५॥

तरनि अकाश प्रकास तेजमय रह्यौ दुराई[7] ।
दिव्यदृष्टि बिनु कहौ, कौन पै देख्यौ जाई ?
जिनकी वे आँखें[8] नहीं, देखैं कब वह रूप ।
तिन्हैं साँच क्यों ऊपजै, परे कर्म के कूप ॥

[1]एकान्त स्थल । [2]सत्व, रज और तम । [3]'न इति' अर्थात् ऐसा नहीं । [4]कहीं भी । [5]गोपियों के गुण से तात्पर्य भगवदीय दिव्य गुणों से है, मायात्मक त्रिगुण से नहीं । [6]लव, लगन । [7]छिपा कर । [8]दिव्य नेत्र ।

सखा सुन स्याम के ॥६॥
जो गुन आवै दृष्टि माँझ नहिं ईश्वर सारे।
इन सबहिनते वासुदेव[1]-अच्युत[2] हैं न्यारे॥
इंद्री-दृष्टि-बिकार तें, रहत अधोक्षज[3] जोति।
सुद्ध सरूपी जान जिय, तृप्ति[4] जु तातें होति॥
सुनो ब्रज-नागरी ॥७॥
नास्तिक जे हैं लोग, कहा जानैं हित-रूपै[5]।
प्रगट भानु को छाँड़ि गहैं परछाहीं धूपै॥
हम कों बिन वा रूप के, और न कछू सुहाय।
ज्यों करतल आभास के, कोटिक ब्रह्म दिखाय॥
सखा सुन स्याम के ॥८॥
ताही छिन इक भँवर कहूँतें उड़ि तहँ आयो।
ब्रजवनितन के पुंज माहिँ गुंजत छवि छायो॥
चढ़्यो चहत पग-पगनिपर, अरुन कमलदल जानि।
मनु मधुकर ऊधो भयो, प्रथमहि प्रगट्यो आनि॥
मधुप को भेष धरि ॥९॥
ताहि भँवर सों कहैं सबै प्रतिउत्तर बातैं।
तर्क वितर्कन-जुक्त प्रेमरस-रूपी घातैं॥
जनि परसौ मम पाँव रे, तुम मानत हम चोर।
तुमहीं सों कपटी हुते, मोहन नंद-किसोर॥
यहां तें दूरि हो ॥१०॥
कोउ कहै, री मधुप भेष उनकौ ही धार्यो।
स्याम-पीत[6] गुंजार बैन किंकिन झनकार्यो॥

[1]श्रीकृष्ण भगवान्। [2]विष्णु का एक नाम। [3]विष्णु का एक नाम। [4]आत्म-तुष्टि। [5]प्रेम स्वरूप की। [6]कृष्ण का वर्ण श्याम और पीतांबर का पीला है। भ्रमर भी श्याम और पीत होता है।

या पुर गोरस[1] चोरि कै, फिरि आयो यहि देस।
इनकों जनि मानहु कोऊ, कपटी इनकौ भेस॥
चोरि जनि जाय कछु ॥११॥

कोउ कहै, रे मधुप कहा तू रस को जानै।
बहुत कुसुम पै बैठि सबै आपन सम मानै॥
आपन सम हमकों कियो, चाहत है मतिमंद।
दुविध ग्यान उपजाय के, दुखित प्रेम आनंद॥
कपट के छंद सों ॥१२॥

कोउ कहै, रे मधुप कौन कह तोहि मधुकारी।
लिये फिरत मुख जोग गाँठि काटन बेकारी[2]॥
रुधिर पान किय बहुत कै, अरुन अधर रँगरात[3]।
अब ब्रज में आये कहा, करन कौन की घात॥
जात किन पातकी ॥१३॥

कोउ कहै, रे मधुप प्रेम षटपद पसु देख्यो।
अबलौं यहि ब्रजदेस माहिं कोउ नाहिं बिसेख्यो॥
द्वै सिँग[4] आनन उपर रे, कारो-पीरो गात।
खल अमृत सम मानहीं, अमृत देखि डरात॥
बादि[5] यह रसिकता ॥१४॥

कोउ कहै, रे मधुप ग्यान उलटो लै आयो।
मुक्ति परे जे फेरि तिन्हें पुनि करम बतायो॥
बेद उपनिषद सार जे, मोहन गुन गहि लेत।
तिनके आतम सुद्ध करि, फिरि-फिरि संथा[6] देत॥
जोग चटसार[7] मैं ॥१५॥

कोउ कहै, रे मधुप तुम्हैं लज्जा नहिं आवै।

[1]मक्खन। [2]व्यर्थ। [3]लाल रंग। [4]सींग। [5]व्यर्थ। [6]पाठ। [7]पाठशाला।

सखा तुम्हारो स्याम कुबरी[1]-नाथ कहावै ।।
यह नीची पदवी हुती, गोपीनाथ कहाय !
अब जदुकुल पावन भयो, दासी जूठन खाय !
मरत कह बोल को ।।१६।।

कोउ कहै,हो मधुप स्याम जोगी तुम चेला ।
कुबजा-तीरथ जाय कियो इन्द्रिन कौ मेला ।।*
मधुबन सुधि बिसराय कै, आये गोकुल माहिं ।
इहां सबै प्रेमी बसैं, तुम्हरा गाहक नाहिं ।
पधारौ रावरे ।।१७।।

यहि बिधि सुमिरि गोविंद कहति ऊधव प्रति गोपी ।
भृंग[2] संग्या करि कहति सकल कुल लज्जा लोपी ।।
ता पाछे इकबार हीं, रोईं सकल ब्रजनारि ।
हा करुनामय नाथ हो, केसव कृष्ण मुरारि ।।
फाटि हियरो चल्यो ।।१८।।

प्रेम-प्रसंसा करत सुद्ध जो भक्ति प्रकासी ।
दुबिधा ज्ञान गिलानि मंदता[3] सिगरीं नासी ।।
कहत मोहि बिस्मय भयो, हरि के ये निज पात्र ।
हौं तो कृतकृत[4] ह्वै गयो, इनके दरसन मात्र ।।
मेटि मल ग्यान कौ ।।१९।।

जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन कौ ध्यावैं ।
काहे न परमानंद प्रेम-पद पी कौ पावैं ?
ज्ञान जोग सब कर्म तें, प्रेम परे है साँच ।
हौं यहि पटतर देत हौं, हीरा आगे काँच ।।

[1] कंस की एक दासी, जिसका श्रीकृष्ण पर बड़ा प्रेम था । [2] भ्रमर का नाम धारण करके । [3] मूढ़ता । [4] कृतकृत्य, सफल जीवन ।

*कुब्जा दासी के साथ भोग-विलास किया ।

विषमता बुद्धि की ॥२०॥

धन्य धन्य जे लोग भजत हरि को जो ऐसे ।
अरु जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे ॥
मेरे या लघु ग्यान को, उर मद कह्यो उपाध[1] ;
अब जान्यो ब्रज-प्रेम को, लहत न आधौ आध ॥

वृथा स्रम करि थके ॥२१॥

पुनि कहि परसत पायँ प्रथम हमें इनहिं निवारयौ[2] ।
भृंग-संग्या करि कहत निंद सबहिन में डारयौ ॥
अब रहिहौं ब्रज भूमि की ह्वै पग-मारग-धूरि ।
बिचरत पद मोपै परें, सब सुख जीवन-मूरि ॥

मुनिनहूँ दुर्लभै ॥२२॥

कैसे होहुँ द्रुमलता बेलि बल्ली बन माहीं ।
आवत जात सुभाय परें मोपै परछाहीं ॥
सोऊ मेरे बस नहीं, जो कछु करौं उपाय ।
मोहन होहिं प्रसन्न जो, यह बर माँगों जाय ॥

कृपा करि देहु जू ॥२३॥

करुनामई रसिकता है तुम्हरी सब झूठो ।
जब ही ज्यों नहिं लखो तबहि लौं बाँधी मूठो ॥*
मैं जान्यो ब्रज जायकै, तुम्हरो निर्दय रूप ।
जो तुमको अवलंबहीं, वाको मेलौ कूप ॥

कौन यह धर्म है ॥२४॥

पुनि-पुनि कहैं जु जाय चलो बृंदावन रहिये ।
प्रेम-पुंज को प्रेम जाय गोपिन सँग लहिये ॥

[1] उपाधियुक्त । [2] मना किया ।

*जब तक आपके प्रेम का साक्षात्कार नहीं हुआ, तब तक कोरा भ्रम है, हाथ में कुछ आने का नहीं ।

और काम सब छाँड़ि कै, उन लोगन सुख देहु ।
नातरु टूट्यो जात है, अब ही नेह-सनेहु ।।
करौगे तो कहा ।।२५।।

सुनत सखा के बैन नैन भरि आए दोऊ ।
बिबस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ ।।
रोम-रोम-प्रति गोपिका, ह्वै रहे साँवल गात ।*
कल्पतरोरुह साँवरो, ब्रजबनिता भईं पात ।।
उलहि अँग अंग तें ।।२६।।

फुटकर पद

राम-कृष्ण कहिए उठि भोर ।
अवध-ईस वे, धनुष धरे हैं, यह ब्रज-माखन-चोर ।।
उनके छत्र-चँवर-सिंहासन, भरत सत्रुहन लछमन जोर ।।
इनके लकुट-मुकुट-पीतांबर, नित गायन सँग नंदकिसोर ।।
उन सागर में सिला तराई, इन राख्यो गिरि नख की कोर ।
'नंददास' प्रभु सब तजि भजिए, जैसे निरतत चंद-चकोर ।।१।।

---

*श्रीकृष्ण के साँवरे शरीर के रोम-रोम में, प्रेमावेश के कारण, गोपियां हो गईं, मानों कल्पवृक्ष में स्थान-स्थान पर पत्ते लग रहे हों ।

हित हरिवंश

छप्पय

श्रीराधा-चरन-प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी ।
कुंज-केलि-दंपती तहां की करत खवासी ।।
सरबसु महाप्रसाद प्रसिध ताके अधिकारी ।
विधि-निषेध नहिं, दास अनन्य उत्कट व्रतधारी ।।
श्रीव्यास-सुवन-पथ अनुसरै, सोइ भलैं पहिचानि हैं ।
श्रीहरिवंस-गुसाइं भजन की, रीति सकृत कोइ जानि हैं ।।

—नाभाजी

अनन्य राधावल्लभीय सिद्धांत के प्रवर्तक गोसाइं हित हरिवंशजी महाराज का जन्म बाद ग्राम ज़िला मथुरा में हुआ था । इनका जन्म-संवत् किसी के मत से १५५९ और किसी के मत से १५३० है । इनके पिता का नाम केशवदास मिश्र, उपनाम व्यासजी, तथा माता का नाम तारावती था । व्यासजी देवबंद, ज़िला सहारनपुर में रहते थे । 'मिश्र-बंधुविनोद' में व्यासजी का उपनाम हरिराम शुक्ल लिखा है । हरिराम शुक्ल उपनाम कैसे हुआ—यह बड़े संदेह की बात है । यह गौड़ ब्राह्मण थे । हरिराम नाम की, तथा मिश्र के स्थान पर शुक्ल-वंश की कल्पना 'मिश्र-बंधुविनोद' में कैसे आई, समझ में नहीं आता । ओरछाधीश महाराज मधुकरशाह के राज्यगुरु एवं हित हरिवंश के शिष्य प्रसिद्ध भक्त-कवि व्यासजी का नाम हरिराम था । कदाचित् विनोद-कारों को हरिवंशजी के पिता में इसी कारण से भ्रम हो गया है । यही नहीं, हित हरिवंशजी के जन्म-स्थान के संबंध में भी भारी भूल की गई है । बाद ग्राम को जहां कि प्रति-वर्ष गोसाइंजी की जयंती मनाई जाती है, जन्म-स्थान न मानकर देवबंद (देवबन) को, न जाने किस आधार पर जन्म-भूमि माना है !

गोसाईंजी के पिता देवबंद में रहते अवश्य थे, किंतु वहां इनका जन्म नहीं हुआ था। बाद गाँव मथुरा से ४ मील दक्षिण है। गोसाईंजी के अनन्य भक्त 'सेवकजी'[1] ने भी लिखा है :

धर्म-रहित जानी सब दुनी। जहां 'बाद' प्रगटे जग धनी ॥

श्रीराधावल्लभीय पंडित गोपालप्रसादजी शर्मा ने 'श्रीहित-चरित्र' में गोसाईं जी का जन्म-संवत् १५३० माना है। 'हित-चरित्र' में आप की जीवन-यात्रा लगभग ८० वर्ष की लिखी है। इस हिसाब से आपके गोलोक-वास का संवत् अनुमानतः १६१० होता है। ओरछाधीश महाराज मधुकर-शाह के राजगुरु श्रीहरिराम व्यासजी लगभग १६२२ में गोसाईंजी के शरणापन्न हुए। सम्राट् अकबर को इस समय गद्दी पर बैठे १० वर्ष हुए थे। इसके कई साल बाद महाराज मधुकरशाह के पुत्र वीरसिंहदेव ने अकबर के विश्वासपात्र मंत्री अबुलफ़ज़ल का बध किया। इस घटना के बाद व्यासजी ओरछे से वृंदावन चले गये। फिर स्वयं महाराज मधुकर शाह के मनाने पर भी आप ओरछा नहीं गये। इनका रचना-काल १६१८ से १६५५ तक माना जाता है। व्यासजी ने श्रीहितजी एवं अन्य महात्माओं के विरह में जो पद[2] बनाये वह १६५० के ऊपर के हैं, क्योंकि उस समय इनका चित्त बहुत विरक्त हो गया था। शायद फिर इन्होंने कोई उत्सव-संबंधी कविता लिखी हो। इससे तो श्रीहितजी का लीला-संवरण सं० १६५० के लगभग आना चाहिए और जन्म-संवत् भी इस हिसाब से १६३० का नहीं बैठता।

कहते हैं कि श्रीहरिवंशजी ने स्वप्न में श्रीराधिकाजी से मंत्र ग्रहण कर

[1] 'विनोद' के ३३२ पृष्ठ पर सेवकजी को श्रीहित हरिवंशजी का पुत्र लिखा है। सेवकजी हितजी के पुत्र नहीं थे, किंतु उनके, स्वप्नद्वारा किये हुए, पट्ट-शिष्य थे।

[2] "हुतो रस रसिकन सो आधार" और "बिहारहिं स्वामी बिनु को गावै।" इत्यादि।

उनका शिष्यत्व स्वीकार किया था।

श्रीहरिवंशजी के एक कन्या और चार पुत्र हुए। पुत्रों के नाम बनचंद्र, कृष्णचंद्र, गोपीनाथ और मोहनलाल थे। सं० १५८२ कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी को गोसाइंजी ने श्री राधावल्लभजी की श्रीमूर्ति वृंदावन में स्थापित की। यह महाराज गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी प्रायः विरक्त-से रहते थे। आपके भजन-साधन-संबंधी स्थान सेवाकुंज, मानसरोवर और रासमंडल माने जाते हैं। आज भी इन स्थानों में आपका प्रेम मूर्तिमान झलकता है। आपने संस्कृत और ब्रजभाषा दोनों में ही बड़ी अपूर्व और सरस कविता की। १७० श्लोकों वाला 'राधा-सुधानिधि' काव्य आपका रचा हुआ है, यद्यपि किसी-किसी के मत से वह गौड़ीय श्रीप्रबोधानंद सरस्वती कृत भी माना जाता है। भाषा में 'हित-चौरासी' तो अनुपम ग्रंथ है। पढ़ते-पढ़ते कहीं-कहीं तो कवि-कोकिल जयदेव का स्मरण हो आता है। कुछ फुटकर सिद्धांती पद भी मिलते हैं। 'मिश्रबंधुविनोद' में आपने सेनापति की श्रेणी में स्थान पाया है! पर हमारी तुच्छ सम्मति में हित हरिवंशजी केशव या देव से कम नहीं हैं। गोसाइंजी ने ब्रजसाहित्य का भारी उपकार किया है, इनके शिष्य-प्रशिष्य भी बड़े-बड़े कवि हो गये हैं। देव और विहारी इसी कुल के अनुयायी माने जाते हैं। महाराज नरवाहन, ध्रुवदास और हित वृंदावनदास ब्रज-साहित्यसागर के अमूल्य रत्न हैं। 'विनोद' के दूसरे संस्करण में हित हरिवंशजी के संबंध में कुछ अधिक प्रामाणिक बातें लिखी गई हैं, यह संतोष का विषय है।

भक्ति-पक्ष में हरिवंशजी श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार माने जाते हैं। 'हित' इनका उपनाम था। आप श्रीराधाकृष्ण के दिव्यप्रेम की साक्षात् मूर्ति थे। परात्पर भगवत्प्रेम की प्राप्ति कर लेने पर आपने विधि-निषेध के झगड़े, काम-कांचन का मोह और हरि-विमुख धर्मों को तृणवत् तोड़ दिया था। तभी तो आपके संबंध में नाभाजी ने अपनी 'भक्तमाल' में लिखा है कि :—'श्रीहरिवंस गुसाइं भजन की रीति सकृत कोई जानिहै।'

श्रीहितजी ने, आध्यात्मिक पक्ष के अर्थानुसार, श्रीराधाकृष्ण का

विशुद्ध शृंगार वर्णन किया है। इनका वर्णित 'रास-विहार', प्रकृति-पुरुष का दिव्य-रहस्य कहा जाता है। श्रीगोसाईंजी के 'सिद्धांत' तथा 'हित-चतुरासी से' कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं :

सिद्धांती पद

गौरी

(जैश्री) 'हित हरिवंश' प्रपंच बंच[१] सब काल ब्याल कौ खायो।
यह जिय जानि स्याम-स्यामा-पद-कमल संगि[२] सिर नायो ॥१॥§

कुंडलिया

चकई प्रान जु घट रहैं, पिय बिछुरंत निकज्ज।
सर-अंतर अरु काल निसि, तरफ तेज घन गज्ज॥
तरफ तेज घन गज्ज,[३] लज्ज[४] तुव बदन न आवै।
जल-विहीन कर नैन भोर किहि भाय दिखावै॥
'हित हरिबंस', बिचारि कौन अस बाद जु बकई।
सारस यह संदेह प्रान घट रहैं जु चकई ॥२॥*

छप्पय

तैं भाजन[५] कृत जटित बिमल चंदन कृत इंधन।
अमृत[६] पूरि तिहि मध्य करत सरपप बल रिंधन॥
अद्भुत धर पर करत कष्ट कंचन हल वाहत[७]।
बारि करत पावारि मंद बोवन बिप चाहत॥

[१]वच कर। [२]प्रेमी। [३]गरज। [४]लज्जा। [५]पात्र; शरीर। [६]आत्मा। [७]चलाता है।

§ओरछा-वासी श्रीव्यासजी, कहते हैं, इसी पद को सुन कर गोसाईं हरिवंशजी के शिष्य हो गये थे। इस पद में अनन्यता, मन की एकाग्रता और निरभिमानता का बड़ा ही सुंदर उपदेश भरा हुआ है।

*इस पद में अध्यात्मदर्शन के अनुसार 'हित-सिद्धांत' का प्रतिपादन किया गया है। इसकी विस्तृत टीका प्रियादासजी ने लिखी है।

'हित हरिबंस' बिचारिकैं यह मनुज-देह गुरु-चरन गहि ।
सकहि तौ सब परपंच[1] तजि श्रीकृष्ण-कृष्ण गोविंद कहि ॥३॥*

पद

तातैं भैया, मेरी सौं[2], कृष्णगुन संचु[3] ।
कुत्सित बाद बिकारहिं परधन, सुनु सिख परतिय बंचु[4] ॥
मणि-गुण-पुंज जु ब्रजपति छाँड़त 'हित हरिबंस' सु कर गहि कंचु[5] ।
पायो जानि जगत में सब जन कपटी कुटिल कलिजुगी टंचु[6] ॥
इहि परलोक सकल सुख पावत, मेरी सौं, कृष्ण गुन संचु ॥४॥*

अरिल्ल

मानुष कौ तन पाइ भजौ ब्रजनाथ कौं ।
दर्वी[7] लैकैं मूढ़ जरावत हाथ कौं ॥
'हित हरिबंस' प्रपंच विषयरस मोह के ।
बिनु कंचन क्यों चलैं पचीसा[8] लोह के ॥५॥

बिलावल

मोहनलाल के रंग राची ।
मेरे ख्याल[9] परौ जिन कोऊ, बात दसौं दिसि माची ॥
कंत[10] अनंत करो किन कोऊ, नाहिं धारना साँची ।
यह जिय जाहु भले सिर ऊपर, हौं तु प्रगट ह्वै नाची ॥
जाग्रत सयन रहत ऊपर मणि, ज्यों कंचन सँग पाँची[11] ।
'हित हरिबंस' डरौं काके डर, हौं नाहिन मति काँची[12] ॥६॥

[1]सांसारिक झंझट । [2]शपथ । [3]संचय कर । [4]अलग रह । [5]काँच, यहाँ-विषय सुख से तात्पर्य है । [6]नीच, दुष्ट । [7]कलछी; यह शब्द केवल, 'साधु-मंडली' में ही प्रयुक्त होता है । [8]पाँसा । [9] बीच में; विषय में । [10]पति । [11]पच्ची । [12]कच्ची बुद्धिवाली ।

* इन दोनों पदों द्वारा, कहते हैं, महाराज नरबाहनजी को उपदेश दिया गया था । पीछे यह नरबाहनजी श्री हरिवंशजी के पट्टशिष्यों में माने जाने लगे ।

भैरवी

रहौ कोऊ काहू मनहि दियें ।
मेरे प्राननाथ श्रीस्यामा, सपथ करौं तिन छियें ।।
जे अवतार-कदंब[1] भजत हैं, धरि दृढ़व्रत जु हियें ।
तेऊ उमगि तजत मरजादा, बन-बिहार[2]-रस पियें ।।
खोये रतन फिरत जे घर-घर, कौन काज इमि जियें ।
'हित हरिबंस', अनतु[3] सचु[4] नाहीं, बिन या रसहि लियें ।।७।।*

गौरी

आरति कीजै स्यामसुँदर की । नंदनँदन श्रीराधाबर की ।।
भक्ति कौ दीप, प्रेम की बाती । साधु-संगति कर अनुदिन[5] राती ।
आरति ब्रज-जुवतिन-मन भावै । स्याम-लीला 'हित हरिबँस' गावै ।।८।।

दोहा

तनहिं राखु सतसंग में, मनहिं प्रेमरस भेव ।
सुख चाहत 'हरिबंस हित', कृष्ण-कल्पतरु सेव ।। ९ ।।
निकसि कुंज ठाढ़े भये, भुजा परस्पर-अंस[6] ।
राधावल्लभ-मुख-कमल , निरखत 'हित हरिबंस' ।।१०।।
सबसौं हित निहकाम[7] मन, बृंदावन बिस्राम ।
राधाबल्लभलाल कौ, हृदय ध्यान, मुख नाम ।।११।।
रसना कटौ जु अन रटौ[8] , निरखि अन फुटौ नैन ।
स्रवन फुटौ जो अन[9] सुनौ, बिनु राधा-जसु बैन ।।१२।।

[1]समूह । [2]बनविहार, जल-विहार । [3]अन्यत्र । [4]सुख । [5]नित्य । [6]गल-बाहीं दिये हुए । [7]निष्काम, बिना किसी इच्छा के । [8]दूसरे का नाम लूं । [9]अन्य, दूसरा ।

* इस सुंदर पद में श्रीहित हरिवंशजी ने अपना अनन्य प्रेम-सिद्धांत गाया है ।

श्रीहितचौरासी

सारंग

आजु बन नीको रास बनायौ ।
पुलिन[1] पवित्र सुभग जमुना-तट, मोहन बेनु बजायौ ॥
कल-कंकन किंकिनि नूपुर-धुनि, सुनि खग-मृग सचुपायौ[2] ।
जुवतिन-मंडल मध्य स्यामघन, सारँग-राग जमायौ[3] ॥
ताल मृदंग उपंग[4] मुरज डफ[5], मिलि रस-सिंधु बढ़ायौ ।
बिबिध बिसद बृषभानु-नंदिनी, अंग-सुढंग दिखायौ ॥
अभिनय[6] निपुन लटकि लटि लोचन, भृकुटि अनंद नचायौ ।
ततथेई ताथेई[7] धरति नवल गति, पति ब्रजराज रिझायौ ॥
बरसत कुसुम मुदित नभ-नायक, इंद्र निसान[8] बजायौ ।
(जैश्री) 'हित हरिबंस' रसिक राधापति, जस-बितान जग छायौ ॥१३॥

जोई-जोई प्यारो करैं सोई मोहि भावे,
भावे मोहि जोई, सोई-सोई करै प्यारे ॥
मोकों तो भावती[9] ठौर प्यारे के नैनन में,
प्यारे भये चाहैं मेरे नैनन के तारे ॥
मेरे तन-मन-प्रानहूँ तें प्रीतम प्रिय आपने,
कोटिक प्रान प्रीतम मोसों हारे ॥
(जैश्री) 'हित हरिबंस' हंस-हंसिनी[10] स्यामल गौर,
कहौ, कौन करै जल तरंगिनि न्यारे ॥१४॥*

[1]किनारा । [2]आनंद । [3]गुंजायमान कर दिया । [4]एक बाजा । [5]खाल से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा । [6]नृत्य-कला । [7]नृत्य की गति के शब्द-विशेष । [8]दुंदुभी । [9]प्यारी, अच्छी लगती है । [10]श्रीकृष्ण और राधा ।

* इस पद में श्री राधाकृष्ण की एकरूपता, भक्त की तल्लीनता एवं कुंज-केलि का विशद वर्णन किया गया है ।

बिलावल

सुनि मेरो वचन छबीली राधा। तैं पायौ रससिंधु[1] अगाधा ॥
जाहि बिरंचि उमापति नाये[2]। तापै तैं बन-फूल बिनाये ॥
तेरो रूप कहत नहिं आवै। (जैश्री) 'हित हरिबंस' कछुक जसु गावै ॥१५॥

सारंग

सरद बिमल, नभ चंद बिराजै। मधुर मधुर मुरली कल[3] बाजै ॥
अति राजत घनस्याम-तमाला। कंचन-बेलि बनी ब्रज-बाला ॥
भूषन बहुत, बिबिध रँग सारी[4]। अंग सुगंध दिखावति नारी ॥
बरसत कुसुम मुदित सुर-जोषा[5]। सुनियतु दिवि-दुंदुभि-कल-घोषा[6] ॥
(जैश्री) 'हित हरिबंस' मगन मन स्यामा। राधा-रमन सकल सुखधामा ॥१६॥

सारंग

आजु नीकी बनी राधिका नागरी।
ब्रज जुवति जूथ में रूप अरु चतुरई,
सील-सिंगार-गुन सबनि तें आगरी[7] ॥
कमल दच्छिन भुजा बाम भुज अंसु सखि,
गावती सरस मिलि मधुर सुर[8] राग री ॥
सकल बिद्या बिहित[9] रहसि 'हरिबंस' हित,
मिलत नव कुंज बर स्याम बड़ भाग री ॥१७॥

बसंत

मधुरितु[10] बृंदावन, आनंद न थोर।
राजति नागरी नव कुसल किसोर ॥
जूथिका[11] जुगलरूप मंजरी रसाल।
बिथकित अलि मधु माधवी गुलाल ॥
चंपक बकुल कुल बिबिध सरोज।

[1]सच्चिदानंद-स्वरूप श्रीकृष्ण। [2]बंदना की। [3]सुंदर। [4]साड़ी। [5]स्त्री। [6]शब्द। [7]बढ़ कर, बड़ी। [8]स्वर। [9]सहित। [10]बसंत ऋतु। [11]यूथिका, चमेली।

केतकी मेदिनी मद मुदित मनोज ॥
रोचक रुचिर बहै त्रिविध समीर[1] ।
मुकुलित[2] नूत[3] नदति[4] पिक कीर ॥
पावन पुलिन घन मंजुल निकुंज ।
किसलय सैन रचित सुखपुंज ॥
मंजीर मुरज डफ[5] मुरली मृदंग ।
बाजत उपंग बीना बर मुख-चंग[6] ॥
मृगमद[7] मलयज कुंकुम अबीर ।
बदन अगर-सत सुरभित चीर ॥
गावत सुंदर हरि सरस धमारि[8] ।
पुलकित खग-मृग बहत न बारि[9] ॥
(जैश्री) 'हित हरिवंस' हंस-हंसिनी-समाज ।
ऐसे ई करहु मिलि जुग-जुग राज ॥१८॥

देव गंधार

ब्रज-नवतरुनि-कदंब[10]-मुकुट-मनि स्यामा आजु बनी ।
नख-सिख लौं अँग-अंग-माधुरी मोहे स्याम धनी ॥
यौं राजत कबरी[11] गूथित कच कनककंज[12]-बदनी ।
चिकुर[13] चंद्रकनि बीच अरध बिधु मानौं ग्रसत फनी[14] ॥
सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी ।
भ्रकुटि काम कोदंड, नैन सर, कज्जल रेख अनी[15] ॥
भाल तिलक, ताटंक गंड[16] पर, नासा जलज मनी ।

[1]शीतल, मंद, और सुगंधित वायु । [2]बौरे हुए । [3]आम । [4]बोलते हैं । [5]चमड़े से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा, जो होली में बजाया जाता है । [6]मुँहचंग, एक बाजा, जो मुँह से बजाया जाता है । [7]कस्तूरी । [8]होली में गाने का एक राग । [9]आनंद के मारे यमुना का बहना तक बंद हो गया । [10]समूह । [11]बेन । [12]सोने के ऐसा कमल । [13]बाल । [14]साँप । [15]नोक । [16]गाल का ऊपरी भाग ।

दसन कुंद, सरसाधर-पल्लव पीतम-मन-समनी ॥
(जैश्री) 'हित हरिबंस' प्रसंसित स्यामा, कीरति बिसद घनी ।
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर बिस्व-दुरति[१] -दवनी[२] ॥१६॥

बिहाग

प्रीति न काहु कि कानि[3] बिचारै ।
मारग अपमारग[४] बिथकित मन, को अनुसरत[५] निवारै ॥
ज्यौं पावस सलिता[६] -जल उमगति सनमुख सिंधु सिधारै ।
ज्यौं नादहिं मन दिये कुरंगनि, प्रगट पारधी[७] मारै ॥
(जैश्री) 'हित हरिबंसहिं' लग सारँग[८] ज्यों सलभ[९] सरीरहिं जारै ।
नाइक निपुन नवलमोहन बिनु कौन अपनपो हारै ॥२०॥

केदारा

देखौ माई, सुंदरता की सींवां[१०] ।
व्रज-नव-तरुनि-कदंब[११]-नागरी निरखि करति अध ग्रीवा[१२] ॥
जो कोउ कोटि कलप लगि जीवै रसना कोटिक पावै ।
तऊ रुचिर बदनारबिंद की सोभा कहति न आवै ॥
देवलोक भुवलोक रसातल सुनि कबिकुल मन डरियै ।
सहज माधुरी अंग-अंग की, कहि, कासों पटतरियै[१3] ॥
(जै श्री) 'हित हरिबंस' प्रताप रूप गुन बय बल स्याम उजागर ।
जाकी भ्रू-बिलास बस पसुरिव[१४], दिन बिथकित रससागर[१५] ॥२१॥

सारंग

प्रथम जथामति प्रणऊं श्रीवृंदावन अति रम्य ।
श्रीराधिका-कृपा बिनु सब के मननि अगम्य ॥

[१]पाप, रोग । [२]नाश करनेवाली । [3]मर्यादा । [४]कुमार्ग । [५]चलते हुए । [६]सरिता, नदी । [७]बहेलिया । [८]दीपक । [९]पतिंगा । [१०]सीमा, हद । [११]समूह । [१२]नीचे को गर्दन करती हैं, लज्जित हो जाती हैं । [१3]उपमा देनी चाहिए । [१४]पशु अर्थात् पर-वश के समान । [१५]श्रीकृष्ण ।

बर जमुना-जल सींचत दिन हीं सरद बसंत।
बिबिध भाँति सुमननि के सौरभ अलि कुलमंत॥
अरुन नूत[१]-पल्लव पर कूजत कोकिल कीर।
निर्तन करत सखी-कुल अति आनंद-अधीर॥
बहत पवन रुचिदायक सीतल मंद सुगंध।
अरुन नील सित मुकुलित जहँ-तहँ पुष्पन-बंध॥
रसिक रास जहँ खेलत स्यामा-स्याम किसोर।
उभै बाहु परि-रंजित उठे उनींदे[२] भोर॥
ताल रबाब[३] मुरज डफ बाजत मधुर मृदंग।
सरस उकति गति सूचत बर बाँसुरी मुखचंग॥
दोउ मिलि चाचरि[४] गावत गौरी राग अलापि।
मानस-मृग बल बेधत भृकुटि-धनुष दृग चापि॥
दोउ करतारिनु[५] पटकति, लटकति इतउत जाति।
'हो हो' होरी बोलति अति आनँद किलकाति॥
रसिकलाल पर मेलति[६] कामिनि बंदन-धूरि[७]।
पिय पिचकारिनु छिरकतु तकि-तकि कुमकुम पूरि॥
कबहुँ-कबहुँ चंदन-तरु-निर्मित तरल हिंडोल।
चढ़ि दोऊजन झूलत, फूलत[८] करत कलोल॥
हित-चिंतक निज चेरिनु उर आनँद न समाति।
निरखि निपट नैननि सुख तृन तोरति बलि जाति॥२२॥

सारंग

मोहन मदन त्रिभंगी। मोहन मुनी मन रंगी॥
मोहन मन सघन प्रगट परमानंद गुन गंभीर गुपाला।

[१]आम। [२]निद्रित। [३]वाद्य विशेष। [४]चर्चरी। [५]करताल। [६]डालती है।

सीस किरीट, स्रवन मनि-कुंडल, उर मंडित बनमाला[1] ॥
पीतांबर तनु धातु-विचित्रित[2] कल किंकनि कटि चंगी ।
नखमणि-तरनि चरन-सरसीरुह मोहन मदन त्रिभंगी ॥
मोहन बेनु बजावै । इहि रव नारि बुलावै ।
आईं ब्रजनारि सुनि बंसी-रव[3] गृह-पति-बंधु बिसारे ।
दरसन मदन-गुपाल मनोहर मनसिज-ताप निवारे ॥
हरषित बदन बंक[4] अवलोकनि सरस मधुर धुनि गावै ।
मधुमय स्याम समान अधर धरें मोहन बेनु बजावै ॥
रास रच्यो बन-माहीं । विमल कल्पतरु-छाहीं ॥
बिमल कल्पतरु-तीर सुपेसल[5] सरद रैन बर चंदा ।
सीतल मंद सुगंध पवन बहै, तहँ खेलत नँद-नंदा ॥
अद्भुत ताल मृदंग मनोहर, किंकिन सबद कराहीं ।
जमुना-पुलिन रसिक रस-सागर रास रच्यो बन माहीं ॥२३॥

---

[1] कुंद, कमल, मंदार और तुलसी की पैर तक लटकने वाली लंबी माला।
[2] अनुरंजित। [3] ध्वनि, शब्द। [4] तिरछी। [5] कोमल, सुंदर।

गदाधर भट्ट

छप्पय

सज्जन सुहृद सुसील बचन आरज प्रतिपालै ।
निरमत्सर निष्काम, कृपा-करुणा कौ आलै ।।
अनन्य भजन दृढ़ करन धर्यौ बपु भक्तन काजै ।
परम धरम कौ सेतु, बिदित बृंदाबन गाजै ।।
भागवत-सुधा बरषै बदन, काहू को नाहिंन दुखद ।
गुण-निकर गदाधर भट्ट अति, सबहिन को लागै सुखद ।।

—नाभाजी

भक्तवर गदाधर भट्टजी दक्षिण देश के किसी ग्राम के निवासी थे। इनके जन्मसंवत् का कोई निश्चय पता नहीं चलता, पर यह तो निर्विवाद बात है, कि यह महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के समसामयिक थे। महाप्रभु को आप श्रीमद्भागवत सुनाया करते थे। 'मिश्रबंधुविनोद' में इनका कविताकाल संवत् १७२२ के लगभग लिखा है। जान पड़ता है, विनोदकारों ने इनके संबंध में ठीक-ठीक पूछताछ नहीं की। नाभा-कृत भक्तमाल के टीकाकार प्रियादासजी ने भट्टजी के संबंध में जो लिखा है, उसका सारांश नीचे दिया जाता है :

भट्टजी श्रीराधाकृष्ण के पहले से ही अनन्य भक्त थे। आप बड़ी ही सरस रचना रचा करते थे। एक दिन श्रीजीव गोसाईं जी के आगे दो साधुओं ने भट्टजी का बनाया यह पद गाया :

सखी, हौं स्याम-रंग रँगी ।
देखि बिकाय गयी वह मूरति, सूरति माहिं पगी ।।
संग हुतो अपनो सपनो सो, सोइ रही रस खोई ।

जागेहुँ आगे दृष्टि परै सखि, नैकु न न्यारो होई ।।
एक जु मेरी अँखियन में निसिद्यौस रह्यौ करि भौन ।
गाइ चरावत जात सुन्यौं सखि, सो धौं कन्हैया कौन ?
तासों कहौं, कौन पतियावै, कौन करै बकवाद ।
कैसे कै कहि जात 'गदाधर', गूँगे कौ गुर-स्वाद ।।

यह पद सुन कर जीवगोसाइंजी ने उन साधुओं के हाथ भट्टजी के पास एक पत्र लिख भेजा। उन लोगों ने जाकर भट्टजी को वह पत्र दे दिया। उसमें यह श्लोक लिखा था :

अनाराध्य राधापदाम्भोजयुग्ममनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्काम् ।
असंभाष्य तद्भावगम्भीरचित्तान्, कुतः श्यामसिंधोः रसस्यावगाहः ?

यह श्लोक पढ़ कर भट्टजी प्रेमावेश में मूर्च्छित हो गये। संज्ञा प्राप्त होने पर तुरंत, सब छोड़-छाड़कर, सीधे वृंदाबन को चल दिये। वृंदावन में आप महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के शरणापन्न हुए। श्रीमहाप्रभुजी के आप विशेष कृपा-पात्र थे। आप का चरित्र एवं स्वभाव कैसा था, यह भक्तवर नाभाजी के उपर्युक्त छप्पय से भली भाँति प्रकट हो जाता है।

भट्टजी की रचना बड़ी ही सरस, सानुप्रास और भक्ति-भावपूर्ण है। आपकी कविता अष्टछाप के उत्कृष्ट कवियों के टक्कर की है। साहित्यिक गुणों के अतिरिक्त आपके पदों में त्याग, अनुराग और भक्ति का वह चित्र खचित दिखाई देता है, जो बिरले ही भक्त-कवियों में मिलेगा। आपका कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मिलता। केवल कुछ फुटकर पद मिलते हैं, जो बड़े उत्तम और सुंदर हैं। भट्टजी ब्रजसाहित्य और गौर-संप्रदाय के अभिमान-स्वरूप हैं, इसमें संदेह नहीं।

विभास

दिन दूलह[1] मेरो कुँवर कन्हैया।
नितप्रति सखा सिंगार सँवारत, नित आरती उतारति मैया ।।

[1] नित्य बना-ठना; सदा एक रस।

नितप्रति गीत वाद्य[1] मंगल धुनि, नित सुर मुनिवर बिरद[2]-कहैया ।
सिर पर श्रीब्रजराज राजवित, तैसेही ढिग बलनिधि बलभैया[3] ॥
नितप्रति रासबिलास ब्याहबिधि, नित सुरतिय सुमनन बरसैया ।
नित नव-नव आनंद बारिनिधि, नित ही गदाधर लेत बलैया ॥१॥

चिन्तय[4] चित्त ! चिरं हरि-चरणं । गोपवधू जन-हृदयाभरणं ॥
स्वाकालंकृत वृन्दारण्यं । निज कर दयिता[5] कुंकुम धन्यं ॥
रत्नमयातुल[6] कर्णाभरणं । ध्येयं चरणाम्बुज नभ वरणं ॥
भालमिलद्वर कुंकुम-तिलकं । चन्दन चित्रित वक्षः फलकं ॥
अरुणाधर-विनिहित[7]-वर वेणुं । मुनि-दुर्लभ-चरणाम्बुज-रेणुं ॥
तारावलि-निभ[8] मौक्तिक[9] हारं । सम्भृत सौंदर्यामृत सारं ॥
विततोरसि[10] विलसद्वनमालं । कटितट-धरित सुकिंकिण-जालं ॥
वलयांगद[11] संगत[12] भुजदंडं । दनुज-कुलांत विधावति चंडं ॥
चरण-रणित[13] मणिमय मंजीरं[14] । सच्चित्सुख-घन सुभग शरीरं ॥
त्रैलोक्याद्भुत शोभा रुचिरं । गोपतनुं नर चिन्तय सुचिरं ॥
दुर्गत-बन्धुं करुणा सिंधुं । विश्वहितं हृदि[15] कुरुजन बंधुं ॥
क्रीड़तं निज सखिभिः साकं । गोपवधूजन - पुण्य - विपाकं[16] ॥
अशरण-शरणं भवभय-हरणं । प्रणम 'गदाधर' गिरिवर-धरणं ॥२॥

ध्रुपद

श्री गोविंद-पद-पल्लव सिर पर बिराजमान,
कैसे कहि आवै या सुख कौ परिमान[17] ।
ब्रजनरेस-देस बसत कालानल हूं त्रसत,
बिलसत मन हुलसत करि लीलामृत-पान ।

[1]बाजा । [2]यश । [3]बलभद्र । [4]चिंतवन कर, ध्यान कर । [5]स्त्री । [6]रत्नमय + अतुल । [7]युक्त । [8]शोभा । [9]मोती । [10]वितत + उरसि, चौड़ी छाती पर । [11]कड़े और बाजूबंद । [12]युक्त । [13]बजता हुआ । [14]नूपुर । [15]हृदय में । [16]कर्म । [17]हद ।

भीजे[1] नित नयन रहत प्रभु के गुणग्राम[2] कहत,
मानत नहिं त्रिविध ताप[3] जानत नहिं आन।
तिनके मुख-कमल-दरस, पावन पदरेनु[4] परस;
अधम जन 'गदाधर'-से पावै सनमान ॥३॥

देश

मोहन-बदन को सोभा।
जाहि देखत उठति सखि आनंद की गोभा[5] ॥
नैन धीर अधीर कछु-कछु असित[6] सित[7] राते[8]।
प्रिया आनन चंद्रिका-मधुपान-रस-माते।
बंसिका कलहंसिका[9] मुख-कमल-रस-राची[10]।
पवन परसत अलक अलिकुल कलह-सी माची।
ललित लोल कपोल, कुंडल मधुरमकराकार।
जुगल सिसु सौदामिनी जनु नचत नट चटसार[11] ॥
बिमल जलक सुढार मुक्ता नासिका दीनों।
ऊँच आसन पर असुर-गुरु[12] उदौ-सौ कीनों ॥
भौंह सोहनिका कहौं अरु भाल कुमकुम[13]-बिंदु।
स्यामबादर[14]-रेख परि मनु अबहिं ऊग्यौ इंदु ॥
लग्यौ मन ललचाइ तातें टरत नहिं टार्‌यौ।
अमित अद्‌भुत माधुरी[15] पर 'गदाधर' वार्‌यौ ॥ ४ ॥

श्री

नमो नमो जय श्रीगोविंद।
आनँदमय व्रज सरस सरोवर, प्रगटित बिमल नील अरबिंद ॥

[1]सजल नेत्र। [2]समूह। [3]आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःख। [4]रज। [5]लहर। [6]श्याम। [7]श्वेत। [8]लाल। [9]हंसिनी। [10]रँगी, मग्न। [11]रंगभूमि, नृत्यशाला। [12]शुक्र, जिनका रंग श्वेत है। [13]रोरी। [14]काले बादल। [15]छवि।

जसुमति-नीर-नेह नित पोषित, नवनव ललित लाड़[1] सुखकंद ।
ब्रजपति तरनि[2]-प्रताप-प्रफुल्लित, प्रसरित[3] सुजस सुबास अमंद ॥
सहचरि-जाल-मराल संग रँग, रसभरि नित खेलत सानंद ।
अलि गोपीजन नैन 'गदाधर', सादर पिवत रूप-मकरंद ॥५॥

सारंग

हरि हरि हरि हरि रट रसना मम !
पावति खाति रहति निधरक[4] भई, होत कहा तोकों श्रम ॥
तैं तो सुनी कथा नहिं मो-से, उधरे अमित महाधम ।
ग्यान ध्यान जप तप तीरथ ब्रत, जोग जाग[5] बिनु संजम ॥
हेम-हरन[6] द्विज-द्रोह मान-मद, अरु पर-गुरु-दारागम[7] ।
नाम-प्रताप प्रबल पावक के, होत जतात सलभ[8]-सम ॥
इहि कलिकाल-कराल-ब्याल-बिष-ज्वाल बिषम भोये[9] हम ।
बिनु इहि मंत्र 'गदाधर' कौ क्यों, मिटिहै मोह-महातम ॥६॥

बिहाग

जो मन स्याम-सरोवरि न्हाहि ।
बहुत दिनन कौ जरयो-बरयो तू, तबहीं भले सिराहि ॥
नयन बयन कर चरन-कमल से, कुंडल मकर समान ।
अलकावली सिवाल जाल तहँ, भौंह-मीन मो जान ॥
कमठ-पीठ[10] दोउ भाग उरस्थल, सोभित दीप[11] नितंब ।
मनि-मुकुता-आभरन बिराजत, ग्रह नछत्र प्रतिबिंब ॥
नाभि - भँवर त्रिबली - तरंग, झलकत सुंदरता-बारि ।
पीत बसन फहरानि उठी जनु, पदुम-रेनु[12] छबि धारि ॥

[1]प्यार । [2]सूर्य । [3]फैला हुआ । क्या ही सुंदर रूपक है ! [4]निडर । [5]यज्ञ । [6]स्वर्ण की चोरी । [7]परस्त्री-गमन । [8]पतिंगे । [9]रँगे हुए । [10]कछुवा, जिस की उपमा पीठ से दी जाती है । [11]द्वीप । [12]कमल का पराग ।

सारस-सरिस सरस रसना-रव, हंसक[1]-धुनि कलहंस ।
कुमुद-दाम[2] बग-पंगति[3] बैठी, कविकुल करत प्रसंस ॥
क्रीड़ा करति जहां गोपीजन, बैठि मनोरथ-नाव ।
बारबार यह कहत 'गदाधर', देह सँवारौ दाँव[4] ॥७॥*

आसावरी

है हरि तें हरिनाम बड़ेरो[5], ताकों मूढ़ करत कत भेरो[6] ?
प्रगट दरस मुचकुंदहिं[7] दीन्हों, ताहू आयुसु भो तप केरो ॥
सुत-हित नाम अजामिल[8] लीनों, या भव में न कियो फिरि फेरो[9] ॥
पर-अपवाद[10]-स्वाद जिय राच्यौ, बृथा करत बकवाद घनेरो ॥
कौन दसा ह्वै है जु 'गदाधर', हरि हरि कहत जात कह तेरो ॥८॥

गौरी

नंद-कुल-चंद बृषभानु-कुल-कौमुदी
उदित बृंदा-बिपिन बिमल आकासे ।
निकट वेष्टित[11] सखीबृंद बर तारिका[12],
लोचन-चकोर तिन रूप-रस-प्यासे ॥
रसिकजन अनुराग-उदधि तजी मरजाद
भाव अगनित कुमुदिनी-गन बिकासे ।
कहि 'गदाधर', सकल बिस्व असुरनि बिना
भानु-भव-ताप अग्यान न बिनासे ॥९॥

[1]बिछुवा; नूपुर से आशय है। [2]माला। [3]बगुला की पंक्ति। [4]यह मौक़ा हाथ से न जाने दो। [5]बड़ा। [6]झेल; देर। [7]इक्ष्वाकु-वंशी एक राजा। इन्होंने कालयवन को भस्म कर दिया था। पीछे श्रीकृष्ण ने जाकर इन्हें दर्शन दिया। पुराणों में लिखा है, कि यही मुचकुंद कल्पांत के बाद सूर्य-वंश पुनः चलायेंगे। [8]एक पापी ब्राह्मण, जो अंतकाल अपने नारायण नामक पुत्र का नाम लेने से मुक्त हो गया था। [9]पुनर्जन्म। [10]निंदा। [11]युक्त। [12]तारा।

*इस पद का रूपक क्या ही सुंदर और सर्वांगपूर्ण है !

सारंग

कबै हरि, कृपा करिहौ सुरति मेरी । और न कोऊ काटन कों मोह-बेरी[1] ॥
काम-लोभ आदि ये निर्दय अहेरी[2] । मिलिकैं मन-मति-मृगी चहूँधा घेरी ॥
रोपी आय पास पासि[3] दुरासा केरी । देत वाही में फिरि-फिरि फेरी ।
परी कुपथ कंटक आपदा घनेरी । नैकहीं न पावति भजि भजन सेरी[4] ॥
दंभ के आरंभ ही सतसंगति डेरी । करै क्यों 'गदाधर' बिनु करुना तेरी ॥१०॥

दंडक

जयति श्रीराधिके सकल-सुख-साधिके,
तरुनि मनि नित्य नवतन किसोरी ।
कृष्णतनु-लीन मनरूप की चातकी,
कृष्ण-मुख हिम-किरिन[5] की चकोरी ॥
कृष्णदृग-भृंग-बिश्राम हित पद्मिनी[6],
कृष्णदृग-मृगज[7] बंधन सुडोरी ।
कृष्ण-अनुराग-मकरंद की मधुकरी,
कृष्ण-गुन-गान-रस-सिंधु बोरी ॥
बिमुख परचित्त तें चित्त जाकौ सदा,
करत निज नाह[8] की चित्त-चोरी ॥
प्रकृति यह 'गदाधर' कहत कैसे बनै,
अमित महिमा, इतै बुद्धि थोरी[9] ॥११॥

बसंत

देखौ प्यारी, कुंज-बिहारी मूरतिवंत बसंत ।
मौरी[10] तरुनि तरनिजा[11] तन में, मनसिज-रस बरसंत ॥
अरुन अधर नव-पल्लव-सोभा, बिहँसन कुसुम-बिकास ।

[1]बेड़ी, बंधन । [2]शिकारी । [3]फाँसी । [4]ओर । [5]चंद्रमा । [6]कमलिनी । [7]हिरण का बच्चा । [8]नाथ, स्वामी । [9]थोड़ी; छोटी । [10]बौरी हुई । [11]यमुना ।

फूले बिमल कमल-से लोचन, सूचत[1] मन उल्ला[illegible] ॥
चलि चूरन कुंतल अलिमाला, मुरली कोकिल [illegible] ।
देखत गोपीजन बनराई[2], मदन मुदत उ[illegible] ॥
सहज सुबास स्वास मलयानिल[3], लागत परम सु[illegible]
श्रीराधा-माधवी 'गदाधर', प्रभु परसत म[illegible] ॥१२॥

सारंग

दधि मथति नंद नरिंद[5]-रानी करति सुत-गुन-गान ।
नील नीरद अग दिव्य दुकूल बर परिधान ॥
केस कुसुमनि किरनि मणि ताटंक[6] झलकत कान ।
स्वेदकन[7]-गन बदन-बिधु पर सुधा-बिंदु-समान ॥
नेत[8] करषत हरष बरषत बलय-किंकिनि-क्वान[9] ।
पय-पयोधर[10] स्रवत, चातक-कृष्ण पिवत निदान ॥
सहस-आनन कहि सकै नहिं जासु भाग्य-बखान ।
जगतबंद्य गोबिंद-माता 'गदाधर' करि ध्यान ॥१३॥

दंडक

जय महाराज ब्रजराज-कुल-तिलक गोबिंद गोपीजनानंद राधारमन ।
नंदनृप-गेहिनी-गर्भ-आकर[11]रतन, सिष्ट[12]-कष्टद धृष्ट दुष्ट दानव-दमन ॥
बल-दलन गर्ब-पर्बत-बिदारन[13]ब्रजभक्त-रच्छा-दच्छ[14]गिरिराज-धरधीर ।
बिबिध बेला कुसल मुसलधर[15]संग लै चारु चरणांक चित तरनि-तनया-तीर ॥
कोटि कंदर्प[16]-दर्पापहर[17] लावन्य धन्य, बृंदारन्य-भूपन मधुर तरु ।

[1]प्रकट करते हैं। [2]बनराज। [3]मलय-सुगंधित वायु। [4]मुख। [5]राजा। [6]तरौना। [7]पसाने की बूँदें। [8]मंथानी की डोरी। [9]झनकार; शब्द। [10]मेघ, स्तन। [11]खानि। [12]साधु। [13]इंद्र; पुराणों में लिखा है कि पर्वत पहले सपच्छ थे। ये उड़-उड़कर बड़ा उपद्रव मचाते थे। इंद्र ने, अपने बज्र से उनके पंख काट कर, संसार में शांति स्थापित कर दी। [14]चतुर। [15]बलभद्रजी। [16]कामदेव। [17]गर्व-भंजन।

मुरलिका-नाद-पीयूषनि महानंदन बिदित सकल ब्रह्म रुद्रादि सुरबरु ॥
'गदाधर' बिषै वृष्टि करुना-दृष्टि करु, दीन कौ त्रिविध-संताप-ताप-तवन[१] ।
हैं मुनी तुव कृपा कृपनजन[२]-गामिनी, बहुरि पैहै कहा मो बराबर कवन॥१४॥

मलार

रंग हिंडोरना[३] मन मोह्यौ ।
सहज बृंदाबिपिन-पावस, सदा आनँद-केलि ।
जहँ सघन द्रुम-घटा-घन सौं बिद्यु-कंचन-बेलि ॥
कुसुम किसलय सुरँग[४] सुरधनु मंद पवन-झकोर ।
नदत[५] गहगह[६] कंठ भरि कलकंठ चित्रक मोर ॥
मनिन-बरनी किरनि नव तृन निरखि मुदित कुरंग ।
थल कमलछल छत्राक[७] बिच-बिच बूट बिद्रुम-भंग ॥
भ्रमत अलि-मद-अंध बिबिध-सुगंध-लहरि अपार ।
तहँ कलित-ललित हिँडोरना कल कल्पद्रुम[८] की डार ॥
खचे मनि मानिक महाघन, रचे चित्र-बिचित्र ।
देखिबे कौं किये अनिमिष नैन रसिकन मित्र ॥
झलमलत झलमलनि मोती मनहुँ आनँद-नीर ।
तिहिं निरखि सुर सुनिहार कोटिक लजे तजि मनधीर ॥
वै निपुन बीना बेनु, लाल प्रमान गान-बिधान ।
बलि 'गदाधर' स्याम-स्यामा-चरन प्रद कल्यान[९] ॥१५॥

मलार

झूलै कुँवरि गोप, राइनि की । मधि राधा सुंदरि सुकुमारि ॥
प्रथमहि रितु पावस आरंभ । श्रीबृषभानु मँगाये खंभ ॥
काढ़ि भवन तें रतन अमोल । पचि-रचि-रुचिर रचाइ हिँडोल ॥

[१]तपन, जलन । [२]पतित । [३]हिँडोला । [४]रंग-विरंगा इंद्रधनुष । [५]बोलते हैं । [६]सुरीला गला । [७]कुकरमुत्ता । [८]कल्पवृक्ष; यहां कदंब से तात्पर्य है । [९]आनंद ।

एक-तें-एक सुभग सुकुमारि। रची मनों बिधि कुंकुम-नारि ॥
जगमगाति नव जोबन-जोति। निरखि नैन चकचौंधी होति ॥
बरन-बरन चूनरी सुरंग। फबी सलौने सोने-अंग ॥
राजत मनि-अभरन रमनीय। गुही जुही कबरी कमनीय[१] ॥
गावहिं सुघर सरस रसगीत। दुलरावैं मनमोहन मीत ॥
प्रेम-बिवस भईं सकहिं न गाइ। उपज्यो आनँद उर न समाइ ॥
दुरि देखत गोकुल-कुलराइ[२]। सोभा निरखत मन न अघाइ ॥
मुदित 'गदाधर' नंदकिसोर। लोचन भये भरे के चोर ॥१६॥

देश

राधे, रूप अद्भुत रीति।
सहज जे प्रतिकूल[३] तो तन, रहे छाँड़ि अनीति ॥
कचनि[४]-रचना राहु ढिगहीं, मुदित बदन - मयंक।
तिलक-बान, कमान[५]-दृग, मृग रहैं निपट निसंक ॥
रतन-जतननि जटित जुग ताटंक[६] रबि रहे छाज।
तदपि दूनी जोति मोतिन, मंडली उडुराज ॥
अधर सुघर सुपक्क बिंबा, सुभग दसन अनार।
धीर धरिकैं कीर-नासा, करत नहिं संचार ॥
निकट कटि-केहरी पै, गज-गति न मेटी जाति।
प्रगट गज-गति जहां जंघा, कदलि-रुचि हुलसाति[७] ॥
'गदाधरि' बलि जाइ बूझत, लगत है मन त्रास।
इती संपति सहित क्यों पय, देत नाहिं मवास[८] ॥१७॥

[१]सुंदर। बेनी में जुही के फूल गुँथे हुए हैं। [२]श्रीकृष्ण। [३]परस्पर-विरोधी; विपरीत धर्मवाले। [४]बाल, जिनके कालेपन की उपमा काले राहु से दी गई है। [५]धनुष। [६]तरौना। [७]प्रगट...हुलसाति = हाथी केले के पेड़ को पकड़ कर गिरा देता है, पर यहां यह बात नहीं है। गज-गामिनी राधिका की जंघा रूपी केले तो और भी प्रसन्न होते हैं। [८]शरण।

हिंडोल

भूलत नागरि नागर लाल ।
मंद-मंद सब सखी भुलावति, गावति गीत रसाल ॥
फरहराति पटपीत[१] नील[२] के, अंचल चंचल, चाल ।
मनहुँ परस्पर उमँगि ध्यान-छबि, प्रगट भई तिहिं काल ॥
मिलमिलात अति प्रिया-सीस तें, लटकति बेनी नाल ।
जनु पिय-मुकुट-बरहि[3] भ्रमबस तहँ, ब्याली[४] बिकल बिहाल ॥
स्यामल गौर परस्पर प्रति छबि, सोभा बिसद बिसाल ।
निरखि 'गदाधर' रसिक कुँवरि-मन, पर्यो सुरस जंजाल ॥१८॥

केदारा

आजु मोहन रची रासरस-मंडली ।
उदित पूरन निसानाथ निर्मल दिसा,
देखि दिनकर-सुता[५] सुभग पुलिन-स्थली[६] ॥
बीच हरि बीच हरिनाच्छ-माला[७] बनी,
तरुनता पिंछ जनु कनक-कदली रली[८] ॥
पवन-बस चपल दल तुलना सो देखियत,
चारु हस्तक[९] भेद भाँति भारी भली ॥
चरन-बिन्यास[१०], कर्पूर-कुंकुम[११] - धूरि,
पूरि रहि चारिदिसि कुंजबन की गली ॥
कुंद - मंदार - अरबिंद - मकरंद - मद,
पुंज-पुंजनि मिले मंजु गुंजत अली ॥
गान-रस तान के बान बेध्यौ बिस्व,

[१]श्रीकृष्ण का पीतांबर। [२]राधिका का नीलांबर। [3]मोर। [४]सर्पिणी। [५]यमुना। [६]तट का स्थान। [७]मृगनयनी गोपियों की पंक्ति। [८]मिली। [९]नृत्य विशेष। [१०]गति के ताल के साथ चरणों का ठीक-ठीक रखना। [११]गुलाल।

जान अभिमान मुनि-ध्यान-रति दलमली[1] ॥
अधर गिरधरन के लागि कैं जगत,
बिजयी भई माधुरी मुरलिका काकली[2] ॥
रस-भरे मध्य मंडल बिराजत खरे,
नंदनंदन कुँवर भानुजू की लली[3] ।
देखु अनिमेषु लोचन 'गदाधर' जुगल,
लेखु जिय आपने भाग-महिमा फली ॥१६॥

सारंग

संगीत-रस कुसल नृत्य-आवेस-बस,
लसति राधा रस-मंडल-बिहारिनी ॥
दिव्य गति चरन चारन चक्रवर्ती,
तो कुँवर स्यामल मनोहर मनोहारिनी ॥
लोचन बिसाल मृदुहास मन-उल्लास,
नंदनंदन-मनसि[4] मोद - बिस्तारिनी ॥
मृदुल पद-बिन्यास चलित बलयावली,
किंकिनी मंजु मंजीर झंकारिनी ॥
रूप निरुपम कांति भाँति बरनी न जाति,
पहिरि आभरन रवि षोड़स-सिंगारिनी ॥
मृदंग बीना ताल सुर सप्त संचार,
चारुता चातुरी सार अनुसारिनी ॥
मधुर मुख-सबद पीयूष बरसत मनों,
सींचि पिय-स्रवन तन-पुलक[5]-कुल-कारिनी ॥
कहि 'गदाधर' जु गिरिराजधर तें अधिक,
बिदित[6] रस-ग्रंथि अद्भुतकला-धारिनी ॥२०॥

[1]नष्ट करदी, भंग कर दी । [2]मधुर ध्वनि । [3]लाड़िली पुत्री । [4]मन में । [5]रोमांच । [6]प्रकट ।

गौरी

आजु ब्रजराज कौ कुँवर बनतें बन्यो[1],
देखि, आवत मधुर अधर रंजित बेनु ।
मधुर कल गान निज नाम सुनि स्रवन पुट,
परम प्रमुदित बदन फेरि हूँकति धेनु ॥
मद-बिघूर्णित[2] नैन मंद बिहँसनि बैन
कुटिल अलकावलि ललित गोपद-रेनु[3] ।
ग्वाल बालनि-जाल करत कोलाहलनि
संग दल ताल धुनि रचत संचत[4] चैनु[5] ॥
मुकुट की लटक, अरु चटक[6] पटपीत की
प्रगट अंकुरित[7] गोपी मनहिं मैनु[8] ।
कहि 'गदाधर' जु इहि न्याय[9] ब्रज-सुंदरी
बिमल बनमाल के बीच चाहतु ऐनु[10] ॥२१॥

कान्हरा

जम्हाई रिझाई सारंग-नैनी[11] ।
अति रस काननि अमरत बरषत,
अँखियां जल झलमलाय[12] आई तन पुलकनि-स्रेनी ।
आयु तकति करताल देत[13] दीनों न जाइ,
मुरझाइ भाइ-भीनो[14] गज गैनी[15] ॥

[1]शृंगार किये हुए। [2]मद्य से घूमने हुए; रँगीले। [3]गायों के खुरों से उड़ी हुई धूल। [4]एकत्र करता है। [5]आनंद। [6]झलक। [7]उत्पन्न। [8]कामदेव। [9]इस प्रकार। [10]निवास। [11]मृगनयनी। [12]आंसू झलकने लगे, जैसा कि जँभाई लेते समय स्वाभाविक ही होता है। [13]जँभाई लेते समय, कहते हैं, ताली या चुटकी बजा देने से आयु बढ़ती है। [14]भाव में रँगी हुई है। [15]गामिनी।

प्रेम-पागि उर लागि रही 'गदाधर'
प्रभु के पिय अंग-अंग-सुखदैनी ॥२२॥*

भैरवी

अघ-संहारिनी, अधम-उधारिनी,
कलिकाल-तारिनी मधु-मथन[1]-गुन-कथा ।
मंगल-बिधायिनी, प्रेम-रस-दायिनी,
भक्ति अनपायिनी[2] होइ जिय सर्वथा ॥
मथि बेद[3] मथि ग्रंथ कथि व्यासादि,
अजहुँ आधुनिक तन कहत हैं मतिजथा ।
परमपद सोपान करि 'गदाधर' पान,
आन अलाप[4] तें जात जीवन वृथा ॥२३॥

सारंग

जमुना देवी कों न भलाई ।
नामरूप गुन लै हरिजू कौ, न्यारी अपनी चाल चलाई ॥
अपबस[5] देस कियो भ्राता[6] को, उनहिं परसि कोउ तहां न जाई ।
जे तन तजत तीर तुम्हरे, ते तात-किरन में गैल लगाई[7] ॥
मुक्तिबधू कौ करि दूतत्वं[8], अधमनि कों लै आनि मिलाई ।
आपुन स्याम, आन[9] उज्वल करि, तात[10] तपत, अपु सीतलताई ॥
जल कों छल करि[11], अनल अघन कों, यह सुनिकैं कोउ क्यों पतिआई ।

[1]मधु दैत्य को मारनेवाले श्रीकृष्ण । [2]निरंतर रहने वाली । [3]वेदों में से सार निकाल कर । [4]बातचीत । [5]अपने अधीन । [6]यमुना जी ने अपने भाई यम का देश अपने अधीन कर लिया, अर्थात् अपने पुण्य-प्रताप से नरक के द्वार बंद कर दिये । [7]हे यमुने, जो तुम्हारे तीर पर मरते हैं, वे तुम्हारे पिता सूर्य के मंडल को भेद कर सीधे ब्रह्म-लोक चले जाते हैं । [8]दूतीपन । [9]दूसरों को निर्मल कर देती है । [10]सूर्य से आशय है । [11]छद्म-वेष धारण करके ।

*इस पद में प्रसाद गुण का बड़ा ही सुंदर चित्र है !

निसिदिन पच्छपात पतितनकौ, तदपि 'गदाधर' प्रभु-मन भाई ॥२४॥*

भैरवी

मो कुल[1] कर्मरु कल्मष नासत, देखि प्रवाह प्रभाकर-कन्या[2] ।
वह देखौ पाप जात जित-तित वहे, ज्यों मृगराज देखि मृगसैन्या ॥
दै पय-पान पूत लौं[3] पोषति, जननि कृतारथ धनि वहु धन्या ।
दीनों चहति 'गदाधरजू' पै, चरन-सरन अति प्रीति अनन्या ॥२५॥

गाली

सुंदर स्याम सुजान सिरोमनि, देउँ कहा कहि गारी[4] हो ।
बड़े लोग के औगुन बरनत, सकुचि उठति मन भारी हो ॥
को करि सकै पिता कौ निरनौं[5], जाति-पाँति को जानै हो ।
जाके मन जैसीयै आवति, तैसिय भाँति बखानै हो ॥
तुम पुनि प्रकट होय बारे[6] तें, कौन भलाई कीनी हो ।
मुक्तिवधू उत्तमजन-लायक, लै अधमनि कौं दीनी हो ॥
बसि दस मास गर्भ माता के, इहि आसा करि जाये[7] हो ।
सो घर छाँड़ि जीभ के लालच[8], भये हो पूत पराये[9] हो ॥
बारे तें गोकुल गोपिन के सूने घर तुम डाटे हो ।
पैठे तहां निसंक रंक-लौं दधि के भाजन चाटे हो ॥
आपु कहाइ धनी कौ ढोटा[10] भात कृपन लौं माँग्यो हो ।

[1]मेरे अर्थात् जीव के सब शुभाशुभ कर्म । [2]सूर्य-पुत्री यमुना । [3]समान । [4]विवाह का गालियां; एक प्रकार का गीत, जिसमें विवाह के अवसर पर ससुराल की स्त्रियां दूलह का व्यंग्य-भरी बातें सुनाती हैं । [5]निर्णय । [6]बचपन से । [7]पैदा किये गये । [8]चटोरपन । [9]दूसरे के; देवकी के गर्भ से जन्म लेकर दूध-दही के लालच से गोकुल में आकर अपने को यशोदा के पुत्र कहलाने लगे । [10]बेटा ।

*इस पद में विरोधाभास अलंकार है । महाकवि केशवदास ने रामचंद्रिका में सरयू का भी ऐसा ही वर्णन किया है ।

मान-भंग पर दूजैं[1] जाचतु, नैकु सँकोच न लाग्यो हो ।।
सब कोउ कहत नंदबाबा कौ, घर भरयो रतन अमोलै हो ।
गर गुंजा, सिर मोर-पखौवा[2], गायन के सँग डोलै हो ।।
मोहन बसीकरन चट-चेटक[3] मंत्र-जंत्र सब जानै हो ।
तातें भले-भले सब तुमकों भले-भले करि मानै हो ।।
बरनों कहा जथामति मेरी बेदहुं पार न पावै हो ।
भट्ट 'गदाधर' प्रभु की महिमा गावत ही उर आवै हो ।।२६।।

---

[1] सुदामा से चावल माँग कर खाये । [2] मोर के पंखे। [3] इंद्रजाल, जादू टोना ।

स्वामी हरिदास

छप्पय

जुगल-नाम सों, नेम, जपत नित कुंजबिहारी ।
अवलोकत नित रहैं केलि-सुख के अधिकारी ॥
गान-कला-गंधर्व स्याम-स्यामा को तोषैं ।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषैं ॥
निन नृपति द्वार ठाढ़े रहैं, दरसन आसा जास की ।
अस आसधीर उद्योत कर, 'रसिक' छाप हरिदास की ॥

—नाभाजी

श्री स्वामी हरिदासजी महाराज का जन्म-संवत् अनिश्चित-सा है। किंतु इसमें संदेह नहीं कि यह सम्राट् अकबर के सिंहासनारूढ़ होने के पहले ही प्रख्यात हो चुके थे। स्वामीजी कहां, किस कुल में अवतीर्ण हुए थे, यह भी विवादास्पद-सा है। वे लोग, जो इनके वंशधर कहे जाते हैं, इन्हें सारस्वत ब्राह्मण, मुलतान के समीप उच्चगाँव का निवासी बताते हैं। और स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास ने 'भक्तसिंधु' के अनुसार इनका सनाढ्य ब्राह्मण, कोल के निकट हरिदासपुर का निवासी होना लिखा है। भक्तसिंधु के साथ स्वामी जी की शिष्य-परंपरा वाले श्रीसहचरिशरण भी अपना स्वर मिला रहे हैं :

श्री स्वामी हरिदास रसिक सिरमौर अनीहा ।
द्विज सनाढ्य सिरताज सुजसु कहि सकत न जीहा ॥
गुरु-अनुकंपा मिल्यो ललित निधिबन तमाल के ।
सत्तर लौं तरु बैठि गनै गुन प्रिया-लाल के ॥

—भगवत रसिक की वाणी, पृष्ठ १३१

उसी छंद के आगे सहचरिशरणजी फिर लिखते हैं :

बीठल विपुल सनाढ्य आढ्य धन-धर्म-पताका ।
श्री गुरु अनुग अनन्य अनूपम जनु ससि राका ॥

बीठल बिपुलजी स्वामीजी के मामा तथा प्रधान शिष्य थे। बीठल बिपुलजी सनाढ्य थे। सनाढ्यों एवं सारस्वतों का परस्पर संबंध नहीं होता। अतएव स्वामीजी को भी सनाढ्य माना है। इस विषय पर बहुत विवाद चल चुका है। हमें इस पर कोई आग्रह नहीं कि स्वामीजी किस वंश के विभूषण थे—सनाढ्य थे या सारस्वत। हमारी दृष्टि में तो वे इन सभी सांसारिक जाति भेदों और वंश-बंधनों से परे थे। वे तो वास्तव में 'भागवत' वंश के थे और 'अच्युत' गोत्रज। जो प्रमाण मिले वे हमने ऊपर लिख भर दिये हैं। अपनी राय हमने किसी पर स्थिर नहीं की। ब्रज-माधुरी-रस के अनन्य मधुव्रत स्वामी हरिदासजी महाराज सनाढ्य थे या सारस्वत इन बातों पर हमारी दृष्टि ही नहीं जानी चाहिए। वह तो बस श्री राधा-कृष्णीय थे।

स्वामी हरिदासजी बड़े ही त्यागी निस्पृह और रसिक-शिरोमणि महात्मा थे। निंबार्क-संप्रदाय के अंतर्गत 'टट्टी-संस्थान' के संस्थापक आप ही हैं। संगीत के आप बड़े भारी आचार्य माने जाते हैं। प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन के आप ही गुरु थे। कहते हैं एक बार साधु का भेष धारण कर तानसेन के साथ बादशाह अकबर भी स्वामीजी का संगीत सुनने गया था। बहुत सारी भेंट रखने पर भी आपने कुछ ग्रहण नहीं किया।

आप अष्टप्रहर श्रीराधाकृष्ण के लीला-विहार में मस्त रहा करते थे। भावावेश में आपको प्रायः सहजा-समाधि लगी रहती थी। सुनते हैं, एक बार एक भक्त स्वामीजी को भेंट करने के लिए इत्र की एक शीशी लाया। स्वामीजी ने उस शीशी को ज़मीन पर उँड़ेल दिया। सेवक के पूछने पर आपने इत्र उँड़ेल देने का यह कारण बतलाया कि "आज मैं श्री बिहारीजी के साथ होली खेल रहा था। तुम अच्छे अवसर पर इत्र लाये। देखो काम आगया। मैंने तुम्हारी शीशी को श्रीबिहारीजी के ऊपर उँड़ेला है।

ज़मीन पर नहीं। विश्वास न हो, देख आओ।" सचमुच ही श्रीबिहारीजी के वस्त्र इत्र से सराबोर पाये गये। इस प्रसंग के लिखने का यह तात्पर्य नहीं है कि लोग इसका ऐतिहासिक तत्त्व देखने की चेष्टा करें। इस पर कोई विश्वास करे या न करे, पर इसमें तो संदेह नहीं, कि महात्माओं के भक्ति-भाव ग़ज़ब के होते हैं।

स्वामीजी ने पदों के अतिरिक्त और छंदों में कविता नहीं लिखी।[1] आपके पद भी ऐसे हैं जो साधारणतया पढ़ने में पिंगल-संगत नहीं जान पड़ते, पर संगीत के रूप में वे पूरे उतरते हैं। उनमें कविता का बाहरी चमत्कार चाहे न हो पर मनोहारिता, मार्मिकता और भक्ति तो उनमें बड़े ऊँचे दरजे की है। आपने सिद्धांत और शृंगार दोनों पर ही पदावली लिखी है। सिद्धांत के १८ तथा शृंगार-संबंधी ११० पद मिलते हैं।[2] आपकी

[1] 'कविता-कौमुदी' (भाग १) के पृष्ठ १४१ पर स्वामी हरिदासजी का एक कवित्त लिखा है। वह यह है :

गायो न गोपाल मन लाइ कै निवारि लाज,
पायो न प्रसाद साधु-मंडली में जाइ के।
धायो न धमक वृंदाविपिन की कुंजन में,
रह्यो न सरन जाय बिट्ठलेस राइ के॥
नाथ जू न देखि छक्यो छिन हू छबीली छबि,
सिंह पौरी परस्यो नाहिं सीसहू नवाइ के।
कहै 'हरिदास' तोहि लाज हू न आवै नेक,
जनम गँवायो न कमायो कछु आइ के॥

यह कवित्त स्वामी हरिदासजी का रचा नहीं है। वल्लभ-कुल में हरिदास नाम के एक कवि हुए हैं, उन्हीं का यह कवित्त है। इनके और भी कवित्त पाये जाते हैं। वैसे ही 'बिट्ठलेस' 'नाथजू' और 'सिंह पौरि' प्रत्यक्ष ही वल्लभ-कुल की साक्षी दे रहे हैं।

[2] 'मिश्रबंधुविनोद' के प्रथम संस्करण के ३०३ पृष्ठ पर स्वामी हरिदासजी

विहार-विषयक पदावली को 'केलिम[illegible] भी कहते हैं। टट्टी-संस्थान में एक से एक बढ़ कर सुकवि, त्यागी, [illegible]रागी और अनुभवी महात्मा हुए हैं। श्रीकृष्ण-संबंधी कविता-सरिता के [illegible]रत प्रवाह में टट्टी वालों ने बड़ा योग दिया। इस सब का श्रे[illegible] [illegible] श्रीस्वामी हरिदासजी को ही है। आपके कुछ पद नीचे उद्[illegible] जाते हैं :

[illegible]

विभास

ज्योंही-ज्योंही तुम राखत हौ,
त्योंही-त्योंही रहियतु हैं, हो हरि।
और अचरचै पाइ धरौं,
सु तौ कहौ कौन के पैंड भरि[1] ॥
जदपि हौं अपनो भायो[2] कियो चाहौं,
कैसे करि सकौं, सो तुम राखो पकरि।
कहि 'हरिदास' पिंजरा के जनवार लौं,
तरफराइ रह्यो उड़िबे कौं कितोउ करि ॥१॥*

विभास

काहू कौ बस नाहिं तुम्हारी कृपा तें, सब होय बिहारी-बिहारिनि[3]।
और मिथ्या प्रपंच काहे कौं भाषियै, सो तो है हारनि[4]।
जाहि तुमसों हित, ताहि तुम हित करौ, सब सुख-कारनि।

कृत 'भरथरी-वैराग्य' का उल्लेख है, किंतु हमें यह सत्य नहीं जान पड़ता। क्योंकि स्वामीजी ने श्रीराधाकृष्ण के नित्य-विहार-संबंधी पदों के अतिरिक्त और कोई ग्रंथ नहीं लिखा। संभव है, 'भरथरी-चरित्र' के रचयिता कोई दूसरे ही हरिदास हों।

[1]बल से, आधार से। [2]मन-चाहा। [3]श्रीकृष्ण और राधिका। [4]हार, वृथा श्रम।

*इस पद में जीव की परतंत्रता तथा भगवत्-कृपा से मुक्ति-प्राप्ति दिखाई गई है।

श्री 'हरिदास' के स्वामी स्यामा कुंज-बिहारी, प्राननि के आधारनि ॥२॥*

आसावरी

हित तो कीजे कमलनैन सों, जा हित के आगे और हित लागे फीको ।
कै हित कीजे साधु-सँगति सों, जावै कलमष जी को ॥
हरि को हित ऐसो जैसो रंग मजीठ[1], संसार हित कसूंभि[2] दिन दुती[3] को ।
कहि 'हरिदास' हित कीजे बिहारी सों, और न निबाहु जानि जी को ॥३॥

तिनका[4] बियारि[5] के बस ।
ज्यों भावै त्यों उड़ाइ लै जाइ आपने रस[6] ।
ब्रह्मलोक सिवलोक और लोक अस ॥
कहि 'हरिदास' बिचारि देख्यो बिना बिहारी नाहीं जस ॥४॥

आसावरी

हरि के नाम को आलस क्यों, करत है रे, काल फिरत सर साँधे[7] ।
हीरा बहुत जवाहर संचे, कहा भयो हस्ती दर बाँधैं ॥
बेर-कुबेर[8] कछू नहिं जानत, चढ़ो फिरत है काँधैं ॥
कहि 'हरिदास' कछू न चलत जब, आवत अंत[9] की आँधैं ॥५॥

आसावरी

मन लगाइ प्रीति कीजै कर-करवा[10] सौं, ब्रज-बीथिन दीजै सोहिनी ।
बृंदाबन सौं, बन-उपवन सौं, गुंजमाल कर पोहिनी[11] ॥

[1]मजीठ का रंग कभी छूटता ही नहीं। [2]कच्चा लाल रंग। [3]दो दिन का, क्षणिक। [4]तृण; यहां जीव से आशय है। [5]वायु; यहां भगवत्प्रेरणा से तात्पर्य है। [6]अपनी इच्छा से। [7]धनुष पर बाण चढ़ाये हुए; एकदम तैयार। [8]मौक़ा-बेमौक़ा। [9]मृत्यु की घड़ियां। [10]मिट्टी का एक टोंटीदार बरतन, स्वामी जी अपने पास बरतनों के नाते एक करवा ही रखते थे। [11]गूँथना।

*इसमें भी जीव के पुरुषार्थ की हीनता और भगवान् की कृपा की प्रधानता कही गई है।

गो गो-सुतन सौं, मृग मृग-सुतन सौं, और तन[1] नैकु न जोहिनी[2] ॥
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सौं, चित ज्यौं सिर पर दोहिनी[3] ॥६॥

कल्याण

हरि कौ ऐसोई सब खेल ।
मृगतृस्ना जग व्यापि रही है कहूं बिजोरो[4] न बेल ॥
धन-मद जोबन-मद औ राज-मद, ज्यों पंछिन में डेल[5] ॥
कहि 'हरिदास', यहै जिय जानौ, तीरथ कौ सो मेल[6] ॥७॥

कल्याण

झूठी बात साँची करि दिखावत हौ, हरि नागर ।
निसिदिन बुनत-उधेरत[7] हो जात प्रपंच कौ सागर ॥
ठाट बनाइ धरयौ मिहरी[8] कौ, है पुरुष[9] तें आगर[10] ।
कहि 'हरिदास' यहै जिय जानौ, सुपने कौ-सो जागर ॥ ८ ॥

कल्याण

जौ लौं जीवै तौ लौं हरि भजु रे मन, और बात सब बादि[11] ।
दिवस चारिकौ हला-भला[12], तूं कहा लेइगो लादि ॥
माया-मद गुन-मद जोबन-मद, भूल्यौ नगर-बिबादि ।
कहि 'हरिदास' लोभ चरपट भयो, काहे की लागै फिरादि[13] ॥ ९ ॥

कल्याण

प्रेम-समुद्र रूप-रसि गहिरे, कैसे लागै घाट ।
बेकारयो दै जानि कहावत, जानिपनौ[14] की कहा परी बाट ॥

[1]ओर । [2]देखना । [3]जैसे स्त्रियां अपने सिर के घड़े पर, सबसे बात-चीत करती हुई भी, सदा एकाग्रचित्त से ध्यान रखती हैं । [4]फल विशेष । [5]एक पक्षी । [6]क्षणिक मेल, तीर्थों में क्षणभर के लिये कितनों से ही मेल-मिलाप हो जाता है । [7]बनाते-मिटाते । [8]स्त्री; यहां 'माया' से तात्पर्य है । [9]ब्रह्म । [10]बढ़ कर । [11]वृथा । [12]चैन-चान । [13]फ़र्याद । [14]ज्ञान ।

काहू[1] कौ सर परै न सूधो, मारत गाल[2] गली-गली हाट[3]।
कहि 'हरिदास' बिहारिहिं जानौ, तकौ न औघट[4] घाट ॥१०॥

केलिमाला

कान्हरा

'प्यारी[5], जैसे तेरी आँखिन में हौं अपनपौ
देखत, तैसे तुम देखति हौ किधौं नाहीं ?'
'हौं तोसौं कहौं प्यारे[6], आँख मूँदि
रहौं, लाल[7] निकसि कहां जाहीं ॥
'मोकों' निकसिबे कों ठौर बताऔ,
साँची कहौं, बलि जाउँ, लागौं पाहीं[8] ।'
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा;
तुमहिं देख्यो चाहत और सुख लागत नाहीं ॥ ११ ॥*

कान्हरा

आजु तृन-टूटत[9] है री, ललित त्रिभंगी[10] पर ।
चरन-चरन पर, मुरलि अधर पर,
चितवनि बंक छबीली भुव पर ॥
चलहु न बेगि राधिका पिय पै[11],
जो भई चाहति हौ सर्वोपर ।
'श्रीहरिदास' समय जब नीकौ, हिलि-मिलि केलि अटल रति भ्रू पर ॥१२॥

[1]किसी का अहंमन्यतायुक्त पुरुषार्थ सफल नहीं हुआ। [2]बातें बनाता फिरता है। [3]बाज़ार। [4]कुमार्ग। [5]श्रीराधिकाजी से आशय है। [6]श्रीकृष्ण से आशय है। [7]श्रीकृष्ण। [8]पैरों पड़ता हूं। [9]बलिहारी है। [10]बांकेबिहारी श्रीकृष्ण। [11]पास।

*इस पद में प्रिया-प्रीतम श्रीराधाकृष्ण की एकरूपता का सुचारु चित्र खींचा गया है।

कान्हरा

अदभुत गति उपजति, अति नाचत, दोऊ मंडल कुँवर-किसोरी।
सकल सुगंध अंग भरि भोरी, पिय नृत्यति, मुसुकति मुख भोरी॥
ताल धरैं बनिता मृदंग, चंद्रा-गति-घात[१] बजैं थोरी-थोरी।
मधुर भाव-भाषा बिचित्र अति, ललित गीत गावैं चित चोरी॥
श्रीबृंदावन फूलनि फूल्यौ, पूरन-ससि, समीर-गति[२] थोरी।
गति बिलास, रस-हास परस्पर, भूतल अदभुत जोरी[३]॥
श्रीजमुना-जल बिथकित[४], पुहुपनि, छबि रतिपति डारत तृन-तोरी।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा, कुंजबिहारी जू कौ रस[५] रसना कहै को री॥१३॥

कान्हरा

तुव जस कोटि ब्रह्मांड बिराजै राधे।
श्री सोभा बरनी न जाइ अगाधे; बहुतक जन्म बिचारत ही गये साधे-साधे[६]॥
'श्रीहरिदास' कहत री प्यारी; ये दिन[७] मैं क्रम करि-करि लाधे[८]॥१४॥

कान्हरा

सोई तो बचन मो सौं मानि, तैं मेरा लाल मोह्यो, री साँवरौ॥
नव निकुंज-सुखपुंज-महल में सुबस[९] बसौ यह गाँवरौ॥
नव-नव लाड़ लड़ाइ लाड़िली नहिं-नहिं यह बृज बावरौ॥
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा, कुंजबिहारी पै वारूँगी मालती-भावरौ॥१५॥

केदारा

झूलत डोल[१०] दुलहिनी-दूलहु।
उड़त अबीर कुमकुमा छिरकत, खेल परस्पर भूलहु॥
बाजत ताल रवाब[११] और बहु तरनि-तनैया[१२] कूलहु।

[१]मृदंग की एक थाप। [२]मंद-मंद वायु। [३]जोड़ी। [४]स्थिर हो गया [५]आनंद। [६]साधन करते-करते। [७]तेरी महिमा करने के लिए ये दिन। [८]प्राप्त किये। [९]स्वतंत्रता से, सुख से। [१०]फूलों का झूला। [११]वाद्य विशेष [१२]सूर्य-पुत्री यमुना।

(श्रीहरिदासके) स्वामी स्यामा कुंजबिहारी को अंतै[1] नहिं फूलहु ॥१६॥

केदारा

प्यारी, तेरो बदन-चंद देखे,
मेरे हृदय-सरोवर में कुमोदिनी फूली ।
मन के मनोरथ तरंग अपार,
सुंदरता तहँ गति-मति भूली ॥
तेरो कोप-ग्राह[2] ग्रसै लिये जात,
छुड़ाये न छूटत रह्यो बुधिबल भूली[3] ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा-चरन-बनसी[4],
गहि काढ़ि रहे लपटाइ गहि भुजमूली ॥१७॥

---

[1]अन्यत्र यह आनंद नहीं है। [2]क्रोध-रूपी मगर। [3]निष्फल। [4]लोहे का एक काँटा, जिसमें डोरी बाँध कर मछलियां फँसाते हैं।

श्रीसूरदास मदनमोहन

छप्पय

गान-काव्य-गुन-रासि सुहृद सहचरि-अवतारी ।
राधाकृष्ण-उपासि, रहस-सुख के अधिकारी ।।
नवरस मुख्य सिँगार बिबिध भाँतिन करि गायो ।
बदन उच्चरत बेर सहस पायँन ह्वै धायो ।।
अंगीकारहि की अवधि, ज्यों आख्या भ्राता जमल ।
श्री मदनमोहन सूरदास की नाम-सृंखला जुरि अटल ।।

—नाभाजी

श्रीसूरदास मदनमोहन, सम्राट् अकबर के राज्य काल में, संडीले के अमीन थे। इनका रचना-काल संवत् १५६० के लगभग जान पड़ता है। इनका असली नाम सूरध्वज था। आप श्री मदनमोहन जी* के परम भक्त थे। अपने नाम के साथ अपने इष्टदेव का नाम इतनी घनिष्ठता से संबद्ध कर लिया था, कि इनका असली नाम छिप ही गया और लोग इन्हें सूरदास मदनमोहन कहने लगे, जैसा कि नाभाजी ने लिखा है।

श्री मदनमोहन सूरदास की नाम-सृंखला जुरि अटल ।

यह जाति के ब्राह्मण और श्रीचैतन्य संप्रदाय के नैष्ठिक वैष्णव थे। साधु-सेवी तो आप ऐसे थे कि जो रुपया-पैसा आता, बिना आगा-पीछा देखे, साधु-सेवा में सब ख़र्च कर डालते थे। कहते हैं, एक बार संडीले

*'मिश्रबंधुविनोद' के ३५४ पृष्ठ पर इनके संबंध में लिखा है कि यह मदनमोहन के शिष्य थे। शायद विनोदकारों को 'मदनमोहन' नाम में किसी सांप्रदायिक गोसाईं का भ्रम हो गया है।

की तहसील से तेरह लाख रुपया तहसील होकर आया। आपने सब का सब साधु-सेवा में ख़र्च कर दिया। शाही ख़ज़ाने में कंकड़-पत्थरों से भर कर संदूक भेज दिये। संदूकों के अंदर एक-एक काग़ज़ भी रख दिया, जिसमें लिखा था :

तेरह लाख सँडीले आये, सब साधुन मिलि गटके।
'सूरदास मदनमोहन' आधी रात सटके।

आपकी उदारता और सरलता पर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। कहने लगा—'रुपये साधुओं ने गटक लिये तो कोई हर्ज़ नहीं, पर सूरदास क्यों आधी रात को सटक गये; भागने का काम ही क्या था?' बादशाह ने आपके पास एक फ़रमान क़सूर की माफ़ी और दरबार में हाज़िर होने का भेजा। पर सूरदास जी न गये। कहला भेजा—'अब आमिली और सूबेदारी से श्रीवृंदावन की गलियों में झाड़ू देना हज़ारगुना अच्छा है।' तभी से आप संडीला छोड़ कर ब्रज में आ बसे।

इनकी कविता बड़ी ही सरस और मनोहारिणी है। सभी पद संगीत-संगत हैं। सूरदास नाम होने से इनके बहुत से पद तो 'सूरसागर' में मिल गये हैं। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। श्रद्धेय श्रीराधाचरण गोस्वामी के अनुग्रह से कुछ फुटकर पद मिले हैं, जो नीचे लिखे जाते हैं :

ललित

पाछे ललिता[1], आगे स्यामा प्यारी,
ता आगे पिय मारग फूल बिछावत जात।
कठिन कली बीन-बीन न्यारी करत,
प्यारी के चरन कोमल जानि सकुचत जिय, गड़िबेऊ डरात॥
दीर्घ लता कर सों निरवारत[2] पाछे,
गहे डारि सीस नाहिं परसत पल्लव पात।

[1]श्रीराधाजी की एक सखी। [2]सुलझाते है।

'सूरदास मदनमोहन' पिय की आधिनताई,
देखत मेरे री नैन सिरात[१] ।।१।।

मलार

माई री, झूलत रंग हिंडोरैं ।
सोभा तन स्याम-गोरैं नील,
पीत पट दामिनी के भोरैं[२] ।।
सखीजन चहूं ओरैं झुलावति,
थोरैं-थोरैं पवन गवन आवैं सौंधे[३] की झकोरैं[४] ।
सोभासिंधु मन बोरैं[५] नैननि सों,
नैन जोरैं रीझि, प्रान वारति छबि पर तृन-तोरैं ।
'सूरदास मदनमोहन' चित चोरैं,
मुरली की धुनि सुनि सुरबधू सिर ढोरैं[६] ।।२।।

ललित

अहो मेरी लाड़ली सुकुमारि पालनैं झूलैं ।
मृदु मुसकानि निरखि नैननि सुख, कीरतिजू[७] मन-ही-मन फूलैं ।।
कबहूँ चटकोरा चटकावति, झुँझन झुंझुना झूलन झूलैं ।।
कबहुँक लेत उछंग अंक भरि, अंतरगत की हरति हैं सूलैं ।।
श्रीबृषभानु गोद लै बैठे, मन-क्रम-बचन साधना तूलैं ।।
'सूरदास मदनमोहन' के, अंतरनिधि की खानि सो खूलैं[८] ।।३।।

बधाई

नंदजू मेरे मन आनंद भयो हौं गोवर्धन[९] तें आयो ।

[१]ठंडे होते हैं, तृप्त होते हैं । [२]धोखे से; उपमा-योग्य होने से । [३]सुगंध । [४]लहरें । [५]डुबाये हुए हैं । [६]पछता रही है; मुरली की मनोहर ध्वनि सुन कर देवांगनाएं मन-ही-मन पछताती हुई कहती है, कि हाय, हम आज ब्रज-गोपिकाएं क्यों न हुईं ? [७]राधिका की माता । [८]खुलती है, उजागर होती है । [९]गोवर्द्धन पर्वत के पास उसी नाम का एक ग्राम ।

तुम्हरे पुत्र भयो हौं सुनिकैं, अति आतुर उठि धायो ॥
वंदीजन अरु भिच्छुक सुनि-सुनि देस-देस तें आये ।
इक पहले ही आसा लागे, बहुत दिननि तें छाये ॥
ते पहिरैं कंचन मनि-मुकता, नाना बसन अनूप ।
मोहिं मिले मारग में मानों जात कहूँ के भूप ॥
तुम तो परम उदार नंदजू, जोइ माँग्यो सोइ दीनों ।
ऐसो और कौन त्रिभुवन में तुम-सरि[1] साको[2] कीनों ॥
लच्छ[3] हेतु तौ पर्‌यो रहौं हौं बिनु देखे नहिं जैहौं ।
नंदराइ सुनि बिनती मेरी तबै बिदा भलि ह्वैहौं ॥
दीजै मोहिं कृपा करि साईं, जो हौं आयौं माँगन ।
जसुमति-सुत अपने पाइनि चलि खेलन आवै आँगन ॥
जब तुम मदनमोहन कहि टेरो, यह सुनि हौं घर जाउं ।
हौं तौ तेरो घर कौ ढाढ़ी[4], 'सूरदास' मो नाउं ॥४॥

बधाई

प्रगट भई सोभा त्रिभुवन की भानु[5] गोप के आइ ।
अद्भुत रूप देखि ब्रज-बनिता रीझीं लेति बलाइ[6] ॥
नहिं कमला नहिं सची नहीं रति उपमाहू न समाइ ।
जा हित प्रगट भये ब्रजभूषन, धन्य पिता धन माइ ॥
जुग-जुग राज करौ दोऊ जन, इत तुव उत नँदराइ ।
उनके मदनमोहन, तेरे स्यामा, 'सूरदास' बलि जाइ ॥५॥

आसावरी

प्रीतम प्यारी राजत रंगमहल ।
गरजि-गरजि रिमझिम-रिमझिम
बूँदनि लाग्यो बरसनि घन ॥

[1]बराबरी । [2]कीर्ति । [3]एक लाख मुद्रा । [4]कथिकों का एक भेद, जो सिर्फ़ जन्मोत्सव के अवसर पर गाता-नाचता है । [5]महाराज वृषभानु । [6]बलैयां ।

बोलत चातक-मोर दामिनी दमकि,
आवै झूमि बादर अवनि परसन ॥
तैसी हरियारी सावन मनभावन
आनँद उर उपजावन इंद्र-बधू-दरसन ॥
'मदनमोहन' प्रिया सँग गावत राग मलार
ललित लता लागी सुनि-सुनि सरसन[1] ॥६॥

मलार

गौर गोविंद नवल किसोर सखी चितचोर,
ठाढ़े हैं द्रुम की छहियां।
अधर धरे मुरली ऊंचे सुर लीयें सुनि तोहि बुलावत हैं,
माईरी, तू कत कहति नहियां ॥
बिनही अंजन खजन-से नैना पिय-मन-रंजन,
रहैं तिरछी ह्वै पिय-मन-महियां।
'सूरदास मदनमोहन' के ध्यान तेरो निसि-बासर
सखी, कौन प्रकृति तो पहिया ॥७॥

कान्हरा

स्याम-निकट सनमुख ह्वै बैठी स्यामा कंचनमनि आभूषन पहिरैं।
साँवरे तन में प्रतिबिंबित हैं, मानों स्नान करत बैठी जमुना-जल में गहिरैं ॥
अंग-अंग-आभास[2] तरंग गौर स्यामता सुंदरता सोभा की लहरैं।
'सूरदास मदनमोहन', मोपै कहि न आवति, मेरी दृष्टि न ठहरैं[3] ॥८॥

कान्हरा

तू सुनि कान दै री, मुरली
तेरे गुन गावैं स्याम कुंजभवन।

[1]हरी-भरी होने लगीं, प्रसन्न होने लगीं। [2]छाया। [3]दिव्य सौंदर्य के आगे आँखें चकाचौंध में पड़ गई हैं।

सनमुख होइ करि ताहिं कोआँकौं[1] भरि
सो तन परसि आवै जो पवन ।।
तेरोई ध्यान धरत उर-अंतर नैन मूँदि
निकसत उर डरपत, तेरोई आगम[2] सुनि स्रवनन ।
'सूरदास मदनमोहन' सों तू चलि
मिलि तोहि तें[3] पायो नाम राधारमन ।।९।।

देस

मेरो गति तुमहीं अनेक तोष पाऊँ ।
चरन-कमल-नख मनि पर बिषै-सुख बहाऊं ।
घर-घर जो डोलौं[4], तौ हरि तुम्हैं लजाऊं ।।
तुम्हरो कहाय कहौ कौन को कहाऊं ?
तुमसे प्रभु छाँड़ि कहा दीनन को धाऊं ।।
सीस तुम्हैं नाय कहौ कौन को नवाऊं ?
कंचन उर हार छाँड़ि काँच क्यों बनाऊं ?
सोभा सब हानि करूं, जगत को हँसाऊं ।
हाथी तें उतारि कहा गदहा चढ़ि धाऊं ।।
कुमकुम कौ लेप छाँड़ि काजर मुहँ लाऊं[5] !
कामधेनु घर में तजि, अजा[6] क्यों दुहाऊं ?
कनक-महल छाँड़ि क्योऽब[7] परनकुटी[8] छाऊं ?
पाइन जो पेलौ[9] प्रभु तौ न अनत जाऊं ।।
'सूरदास मदनमोहन' जनम-जनम गाऊं ।

[1]हृदय से लगा ले । ताहि को......पवन = उस वायु को ही भेंट ले जो प्यारे कृष्ण के शरीर का स्पर्श कर आयी है । [2]आगमन । [3]तेरे ही साथ रमने से । [4]द्वार-द्वार पर भीख माँगता फिरूं । [5]लगाऊं । [6]बकरी । [7]क्यों अब । [8]पत्तों और घास-फूस की झोपड़ी । [9]ठेलो; धक्का देकर निकाल दो ।

संतन की पानहीं[1] कौ रच्छक कहाऊं ॥१०॥*

प्रभाती

स्याम लाल, प्रात भयो, जागौ बलि जाऊं ।
चुटिया सुरझाय[2] बांच सुमन हौं गुथाऊं ॥
उगत सूर्य ज्योति भई कुलहिरी[3] बनाऊं ।
पाँय बाँधि घुँघरू सु चालिबो सिखाऊं ॥
'सूरदास मदनमोहन' गुन तिहारो गाऊं ।
हरखि-निरखि गोविंद-छबि जीवन-फल पाऊं ॥११॥

ध्रुवपद

खेलिए आँगन छगन-मगन[4] कीजिए कलेवा ।
छींके तें मारी दधी ऊपर तें काढ़ि धरी,
पहिरि लेउ झंगुली, फेंटा[5] बाँधि लेहु मेवा ॥
ग्वालन के संग खेलन जाहु खेलन के मिस भूषन[6] ल्याहु
कौन परी प्यारे निसदिन की टेवा[7] ।
'सूरदास मदनमोहन' घर में ही खेलौ प्यारे ललन
भँवरा[8] चकडोर[9] देहौं हंस चकोर परेवा[10] ॥१२॥

[1]जूती । [2]कंघी से सुलझाकर । [3]टोपी । [4]श्री कृष्ण का वात्सल्यरस-सूचक प्यार का नाम । [5]कमर पर कसने का दुपट्टा । [6]गुंजाओं या फूलों के गहने । [7]आदत । [8]लट्टू । [9]चकरी; बच्चों के खिलौने ।

*सूरदास जी की यह मनस्कामना, कि मैं संतों की जूतियों की रखवाली किया करूं, पूरी हो गयी । एक दिन एक साधु इन्हें अपनी जूतियां सौंप कर श्री मदन-मोहन जी का दर्शन करने चला गया । जब गोसाईं जी ने इन्हें किसी काम से बुलवाया, तब कहला भेजा कि 'आज मेरी मनोवांच्छा सफल हो गई । अभी तक तो कोरा जमा-खर्च ही था, आज मुझे वह सेवा मिल गयी, जिसकी सदा से इच्छा थी ।'

बिलावल

मधु के मतवारे स्याम खोलौ प्यारे पलकैं।
सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकैं॥
सुर नर मुनि द्वार ठाड़े दरस हेतु किलकैं[1]।
नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललकैं॥
कटि पीतांबर मुरली कर स्रवन कुंडल झलकैं।
'सूरदास मदनमोहन' दरस दैहौ भलकैं[2]॥१३॥

देश

चलौरी मुरली सुनिए कान्ह बजाई जमुना-तीर।
तजि लोक लाज, कुल की कानि गुरु जन की भीर[3]॥
जमुना-जल थकित भयो बछा[4] न पीवैं छीर।
सुर-विमान थकित भये थकित कोकिल-कीर॥
देह की सुधि बिसरि गई, बिसरो तन कौ चीर[5]।
मात-तात बिसरि गये, बिसरे बालक बीर[6]॥
मुरली-धुनि मधुर बाजै, कैसे कै धरों धीर।
'सूरदास मदनमोहन', जानत हौ पर-पीर॥१४॥

---

[1]आनंद मना रहे हैं। [2]भली-भाँति। [3]भय। [4]गाय के बछड़े। [5]कपड़ा। [6]भाई।

श्रीभट्ट

छप्पय

मधुर-भाव-संवलित, ललित-लीला-सुवलित छबि ।
निरखत हरसत हृदय प्रेम बरसत, सुकलित कबि ।।
भव-निस्तारन-हेत देत दृढ़भक्ति सबनि नित ।
जासु सुजसु-ससि-उदै हरत अति तम भ्रम स्रमचित ।।
आनंदकंद श्रीनंदसुत श्रीबृषभानु-सुता-भजन ।
श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मनमोद घन ।।

—नाभाजी

श्रीनिंबार्क कुलावतंश विद्वच्चक्रचूड़ामणि केशव काशमीरीजो के श्रीभट्टजी अंतरंग शिष्य थे । केशव काशमीरीजी के संबंध में यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है :

वागीशा यस्य वदने, हृत्कञ्जे च हरिः स्वयम् ।
यस्यादेशकरा देवाः मंत्रराज-प्रसादतः ।।

वास्तव में, केशव काशमीरीजी ने आचार्योचित वह कार्य किया, जिसके कारण निंबार्क संप्रदाय की नींव सदा के लिए सुदृढ़ हो गयी । आपके शिष्य श्रीभट्टजी ने तो मानों संप्रदाय-मंदिर पर कलश रख दिया । गुरुदेव ऐश्वर्य के पूर्ण प्रतिपादक थे, तो भट्टजी माधुर्य के सच्चे मधुव्रत थे । श्रीभट्टजी का जन्म-संवत् अनुमानतः १५९५ के लगभग जान पड़ता है, और इनका कविता-काल संवत् १६२५ सिद्ध हुआ है ।

श्रीभट्टजीने 'युगुल-शतक' के नाम से केवल सौ पदों की रचना की । आपके शिष्य श्रीहरिव्यासदेवजी ने 'युगुल-शतक' पर एक विस्तृत पद्यात्मक टीका लिखी, जिसे 'महाबानी' कहते हैं । कविता की दृष्टि से 'युगुल-शतक'

बहुत ऊँचा नहीं है, पर यदि उसका संत-दृष्टि से अनुशीलन किया जाय, तो उसमें वह चमत्कार अवश्य मिलेगा, जो रसिक महात्माओं की बानियों में भरा रहता है।

कहते हैं, आप की हार्दिक उत्कंठा पूरी करने के लिए भक्तवत्सल भगवान् समय-समय पर नित्य नयी लीलाएं दिखाया करते थे। एकबार भावावेश में भट्टजी महाराज मलार राग अलापने लगे। पद यह है :

भींजत कब देखौं इन नैना।
स्यामाजू की सुरँग चूनरी, मोहन कौ उपरैना॥

इतना ही गाया, कि आपकी लालसा पूरी हो गयी। क्या देखा, सो शेष पद से प्रगट हो जाता है :

स्यामा-स्याम कुंजतर ठाढ़े, जतन कियौ कछु मैं ना।
'श्रीभट', उमड़ि घटा चहुँदिसि, तें, घिर आयी जल-सैना॥

भट्टजी के हृदय-गगन में ज्यों ही श्याम-घटा उठी, कि वर्षा आरंभ हो गयी। घन-श्याम और सौदामिनी-राधिका का दर्शन प्रत्यक्ष होने लगा। धन्य माधुर्यमत्त श्रीभट्ट! आपकी धारणा कैसी भव्य है :

सेव्य हमारे श्री प्रिय प्यारे बृंदाबिपिन-बिलासी।
नँद-नंदन बृषभानु-नंदिनी-चरन-अनन्य-उपासी॥
मत्त प्रनय-बस सदा एकरस बिबिध निकुंज-निवासी।
'श्रीभट' जुगुल रूप बंसीवट सेवत सब सुखरासी॥

आपके कुछ पद यहां उद्धृत किये जाते हैं :

युगुल-शतक

पद

मदनगुपाल, सरन तेरी आयो।
चरनकमल की सरन दीजिये, चेरौ करि राखौ घर-जायो[1]॥
धनिधनि मात पिता सुत बंधू, धनि जननी जिन गोद खिलायो।

[1]घर में पैदा हुआ; पाला-पोसा गुलाम।

धनिधनि चरन चलत तीरथ कों, धनि गुरु जन हरिनाम सुनायो ॥
जे नर बिमुख भये गोविंद सों, जनम अनेक महादुख पायो ।
'श्रीभट' के प्रभु दियो अभय-पद[१], जम डरप्यौ[२] जब दास कहायो ॥१॥

दोहा

मोहन जन ब्रजभूमि सब, मोहन सहज समाज ।
मोहन जमुना-कुंज तहँ, विहरत श्रीब्रजराज ॥२॥

पद

ब्रजभूमि मोहिनी मैं जानी ।
मोहन कुंज, मोहन बृंदावन, मोहन जमुना-पानी ॥
मोहन नारि सकल गोकुल की बोलति अमरत-बानी[3] ।
'श्रीभट' के प्रभु मोहन नागर, मोहनि राधारानी ॥३॥

दोहा

सेव्य हमारे हैं सदा, बृंदाबिपिन-बिलासि ।
नँद-नंदन बृषभानुजा, चरन-अनन्य-उपासि ॥४॥

पद

सेव्य हमारे हैं पिय प्यारे बृंदाबिपिन-बिलासी ।
नँद नंदन-बृषभानु-नंदिनीं चरन अनन्य-उपासी ॥
मत्त प्रनय[४]-बस, सदा एकरस[५] बिविध निकुंज-निवासी ।
'श्रीभट' जुगुलरूप बंसीबट सेवत सब सुखरासी ॥५॥

दोहा

आन[६] कहै आनै न उर, हरि गुरु सों रति होय ।
सुखनिधि स्यामा-स्याम के, पद पावै भल[७] सोय ॥६॥

[१] वह पद, जिसके पा जाने पर सांसारिक त्रि विध दुःखों का आत्यंतिक नाश हो जाता है। [२] डर गया। [3] अमृत के समान मधुर वाणी। प्रसिद्ध ही है, कि 'वाचि श्रीमाथुरीणाम्।' [४] प्रणय-मत्त, प्रेम में मतवाले। [५] निरंतर एक दशा में; सहजा समाधि में लीन। [६] आन... उर = अपने इष्ट को छोड़ कर दूसरे को मन में लाये। [७] भली भाँति।

पद

स्यामा-स्याम-पद पावैं सोई ।
मन-बच-क्रम करि सदा नित्य जेहिँ, हरिगुरु-पद-पंकज-रति होई ।
नंद-सुवन वृपभानु-सुता-पद, भजै तजै मन आनैं जोई ॥
'श्रीभट' अटकि रहे स्वामीपन आन व्रतै मानै सब छोई[1] ॥७॥

दोहा

जन्म-जन्म जिनके सदा, हम चाकर निस-भोर ।
त्रिभुवन-पोषन सुधाकर, ठाकुर जुगल किसोर ॥८॥

पद

जुगलकिसोर हमारे ठाकुर ।
सदा - सर्वदा हम जिनके हैं, जनम - जनम घर जाये चाकर ॥
चूक परै परिहरै न कबहूँ, सबही भाँति दया के आकर[2] ।
जै 'श्रीभट्ट' प्रगट त्रिभुवन में प्रनतनि पोषत परम सुधाकर ॥९॥

दोहा

तनिक न धीरज धरि सकै, सुनि धुनि होत अधीन ।
बंसी[3] बंसीलाल की, बंधन कों मन - मीन ॥१०॥

पद

बंसी त्रिभंगी लाल की मन-मीन की बनसी ॥
कहा अंतर धरि दुरि रहे छई मूरति घनसी[4] ॥
हरि देखे बिनु क्यों रहौं, धीरज नहिं तनसी[5] ।
जै 'श्रीभट्ट' हरि-रस-बस भई, सुनि धुनि नेकु भनसी[6] ॥११॥

दोहा

मेरे मन की अघटना, के तुम जाननि हारु ।
बलि राधे-नँद-नंदना, चरन दिखाये चारु ॥१२॥

[1]रद्दी, व्यर्थ । [2]खानि, स्थान । [3]मछलियों के फँसाने का लोहे का काँटा; मुरली । [4]बादलों की घटा के समान । [5]तनिक-सा । [6]भनक अर्थात् भीनी सी आवाज़ ।

पद

बलि-बलि श्रीराधे-नँद-नंदना ।
मेरे मन की अमित अघटना को जाने तुम बिना ॥
भलेई चारु चरन दरसाये, ढूँढ़त फिरिहौं बृंदाबना ।
जै 'श्रीभट' स्यामा-स्याम रूप पै निवछावर तन-मना ॥१३॥

दोहा

जाके निरखत नैकु जब, हर्‍यौ मानिनी मान ।
मदन-सदन जानी जु मैं, अँखियां स्यामसुजान ॥१४॥

पद

मैं जानी मदन-सदन मोहनजू की अँखियां ।
निरखत मान हर्‍यो मानिन कौ, हारि रहीं सब सखियां ।
कांइ इकचित[1] मति चितै कुँवरि-तन, पूरी मन-अभिलखियां ।
'श्रीभट' अटक छुटी पट-अंतर मंद-मंद हँसमुखियां ॥१५॥

दोहा

अंग-अंग-दुति माधुरी, बिबि मुख चंद्रचकोर ।
अटके 'श्रीभट'-दृष्टि में, नटवर नवलकिशोर ॥१६॥

पद

बसौ मेरे नैननि में दोऊ चंद ।
गौरबरनि बृषभानु-नंदिनी, स्यामबरन नँद-नंद ॥
गोलक[2] रहे लुभाय रूप में, निरखत आनँद-कंद ।
जै 'श्रीभट्ट', प्रेम-रस-बंधन, क्यों छूटै दृढ़ फंद ॥१७॥

दोहा

जमुना बंसीबट निकट, हरन हिंडोरो हीय ।
रँग देब्यादि[3] झुलावहीं, झूलत प्यारी-पीय ॥१८॥

[1] टक लगा कर । [2] आँखों की पुतलियां । [3] रंगदेवी आदि; राधिकाजी की अष्ट सखियां ।

पद

हिंडोरौ झूलति हैं पिय-प्यारी ।
श्रीरँगदेवी सुदेया[1] बिसाखा, झोटा देत ललितारी ॥
श्री जमुना बंसीवट के तट सुभग भूमि हरियारी ।
तैसेइ दादुर मोर करत धुनि सुनि मन-हरत महारी ॥
घन रजनी दामिन तें डरपि पिय,-हिय लपटी सुकुमारी ।
जै 'श्रीभट्ट' निरखि दंपति-छबि, देत अपनपौ वारी ॥१९॥

दोहा

बेदी पुलनि बिराजहीं, मंगल बेलि-तमाल ।
नच्यौ किधौं यह रच्यो है, ब्याह बिहारीलाल ॥२०॥

पद

श्री ब्रजराज कै युवराज मानों ब्याह बृंदाबन रच्यो ।
पुलिन-बेदी[2] बिराजैं दंपति, देखि-देखि कैं मन सच्यौ[3] ॥
है पुरोहित रिचा[4] उचारत बेलि-तमाल मंडप खच्यौ ।
जै 'श्रीभट', भाँवरी परत नटवर अंकमाल प्रिया-संग नच्यौ ॥२१॥

दोहा

तिहिं छिन की बलि जाउँ सखि, जिहिं छिन भाँवरि लेत ।
लालबिहारी साँवरे, गौरबिहारिनि-हेत ॥२२॥

पद

जै श्री बिहारिन गौर, बिहारीलाल साँवरे ।
तिहि छिन की बलि जाउँ सखी री परित जिहिं छिन भाँवरे ॥
कंचन-मनि-मरकत-मनि प्रगटे बसिए जो नंदगाँवरे ।
बिधिना रचित न होय जै 'श्रीभट', राधा-मोहन नाव[5] रे ॥२३॥

[1]सुदेवी, ललिता, बिसाखा—सखियों के नाम। [2]जमुना जी का तट मानों वेदी है। [3]सुखी हुआ। [4]वेदमंत्र। [5]नाम।

दोहा

'श्रीभट' प्रकट "जुगल सत", पढ़ै कंठ तिहुँकाल ।
जुगल-केलि-अवलोक तें, मिटै विषय-जंजाल[१] ॥२४॥

छप्पय

दस पद हैं सिद्धांत, बीस-षट[२] ब्रज-लीला पद ।
सेवा सुख सोलहौ, सहज सुख एक-बीस[३] हद ॥
आठै सख, अरु उनत-बीस[४] उच्छव सुख लहिए ।
श्रीजुत 'श्रीभटदेव' रच्यो 'सतजुगल'[५] जो कहिए ॥
निज भजन-भाव-रुचि तें किये, इते भेद ये उर धरौ ।
रूप-रसिक सब संत जन, अनुमोदन याकौ करौ ॥२५॥

---

[१]संसारी झंझट । [२]छब्बीस । [३]इक्कीस । [४]उन्नीस । [५]'युगल-शतक' ग्रंथ का नाम ।

हरिराम व्यास

छप्पय

काहू के आराध्य मच्छ, कच्छ, सूकर, नरहरि।
बावन, परसाधरन, सेतु-बंधनहुँ सैल करि॥
एकन के यह रीति नेम नवधा सों लाये।
सुकुल समोखन-सुवन अच्युतगोत्री जु लड़ाये॥
नौगुनी तोरि नूपुर गुह्यो, महतसभा-मधि रास के।
उत्कर्ष तिलक अरु दामकौ, भक्त इष्ट अति व्यास के॥

—नाभाजी

हरिराम व्यास, ब्रजमंडल में 'व्यासजी' के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। यह ओरछा के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। तत्कालीन ओरछाधीश महाराज मधुकरशाह के यह राजगुरु थे। इनका कविता-काल संवत् १६२० जान पड़ता है। यह पहले गौर-संप्रदाय के अनुयायी थे। पीछे श्रीहितहरिवंशजी के शिष्य होकर राधावल्लभीय हो गये। इनके वंशज आज भी गौर-संप्रदाय का तिलक धारण करते हैं।

व्यासजी के संबंध में 'मिश्रबंधुविनोद' में भारी भूल की गई है। उसमें व्यासजी का दो स्थानों पर उल्लेख आया है, जो इस प्रकार है :

कवि-संख्या	कवि-नाम	कविता-काल	पृष्ठ-संख्या
(७८)	व्यास स्वामी, उर्छा बुंदेलखंड—	१६१५	३३७
(२८१)	व्यासजी, ओड़छावाले—	१६८५	४५०

उर्छा और ओड़छा दोनों एक ही हैं। इसी प्रकार व्यास स्वामी कहिये, चाहे व्यासजी। विनोद में (७८) संख्यावाले व्यास स्वामी 'हरिव्यासी' मत के संपादक और (२८१) संख्यावाले व्यासजी निंबार्क-संप्रदाय के

'हरि व्यास-देव' कहे गये हैं। उदाहरणार्थ, जो पद दिये गये हैं, वे भी एक ही बानी से दो विभिन्न स्थानों पर दो व्यासों के मान कर उद्धृत किये गये हैं।

दो भिन्न-भिन्न स्थानों पर उल्लिखित व्यास एक ही हैं, दो नहीं। ये न हरिव्यासदेव थे और न हरिव्यासी-मत के प्रवर्तक। इनका निंबार्क-संप्रदाय से कोई संबंध नहीं था। हरिव्यासी शाखा के संस्थापक हरिव्यासदेव महात्मा श्रीभट्टजी के शिष्य थे। ओरछावाले हरिराम व्यासजी श्रीराधा-वल्लभीय थे, निंबार्कीय नहीं। जान पड़ता है, 'शिवसिंहसरोज' के आधार पर, बिना व्यास-वंशियों अथवा वैष्णवों से पूछताछ किये ही, सुबुध मिश्र-बंधुओं ने व्यास जी के संबंध में ऐसा लिख दिया है :

'व्यासजी संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे। यह सदा शास्त्रार्थ करने की धुन में रहते थे। एक दिन यह श्रीहितहरिवंशजी के पास पहुँचे। उन्हें भी शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। गोसाइं जी ने सौ बात की बात इस पद में सुना दी :

यह जु, एक मन बहुत ठौर करि, कहि कौने सचु पायो ।
जहँ-तहँ बिपति जार-जुवति ज्यों प्रगट पिंगला गायो ॥'

इत्यादि।

यह पद सुन कर पडिंताग्रगण्य व्यास का सारा विद्या-बल चूर-चूर हो गया। आप उसी दिन गोसाइं जी के अनन्य भक्त हो गये। व्यासजी राधा-वल्लभीय होते हुए भी अन्य संप्रदायों में भेद-भाव नहीं रखते थे। आपकी दृष्टि में संत-मात्र भगवत् स्वरूप थे।

ओरछे में सब प्रकार का मान-सम्मान होने पर भी आप उसे छोड़कर वृंदावन चले आये। महाराज मधुकरशाह, गुरुभक्ति-वश, इन्हें लेने के लिए जब वृंदावन आये, तब ये विरहाधीर होकर यह पद गाने लगे :

वृंदाबन के रूख (वृक्ष) हमारे, मात-पिता सुत बंध ।
गुरु गोविंद साधु गति-मति सुख, फल-फूलनि कौ गंध ॥
इनहिं पीठि दै अनत डीठि करि सो अंधन में अंध ।

'व्यास' इनहिं छोड़ै औ छुड़ावै ताको परियो कंध ॥

वृंदावन की गुल्म-लताएँ छोड़ कर ये फिर कभी ओरछा नहीं गये। इन्होंने तत्कालीन संत-महात्माओं के सत्संग में व्रजमाधुरी का जो रस लूटा वह अपनी बानी में कई स्थानों पर बड़ी भक्ति-भावना से उन्होंने अंकित किया है।

व्यास जी भगवान् से भक्तों को कहीं अधिक ऊँचा मानते थे। साधु-सेवा के लिए आपने सर्वस्व समर्पण कर दिया था। जाति और पद का तो आपको तनिक भी ख़याल नहीं था। जैसा कि आपकी साखियों से प्रकट होता है।

'व्यास' कुलीननी कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस ।
स्वपच भक्त की पानहीं, तुलै न तिनके सीस ॥
'व्यास' मिठाई विप्र की, तामें लागै आगि ।
बृंदाबन के स्वपच की, जूठनि खैए माँगि ॥

इन्होंने अपना अनन्य व्रत आजीवन निबाहा। सर्वस्व त्याग दिया, पर संत-सेवा से विमुख नहीं हुए।

इनके तीन पुत्र थे। तीनों ही संत और सुकवि थे। व्यासजी गुरुभक्त तो एक ही थे। श्रीहितहरिवंशजी के गोलोक-वास पर, उनके विरह में, इन्होंने जो पद लिखा था उससे इनकी अद्वितीय गुरुभक्ति प्रकट होती है। वह पद यह है :

हुतो रस-रसिकन कौ आधार ।
बिन हरिबंसहिं सरस रीति कौ, कापै चलिहै भार ?
को राधा दुलरावै - गावै, बचन सुनावै चार ;
बृंदाबन की सहज माधुरी, कहिहै कौन उदार ?
पद-रचना अब कापै ह्वैहै, निरस भयौ संसार ।
बड़ौ अभाग-अनन्य सभा कौ, उठिगो ठाठ-सिंगार ॥
जिन बिन दिन-छिन जुग सम बीतत, सहज रूप-आगार ।
'व्यास', एक कुल-कुमुद-चंद बिनु, उडुगन जूठौ थार ॥

व्यासजी के लगभग ८०० पदों का एक हस्तलिखित संग्रह हमें उपलब्ध हुआ है। इसमें इनके सिद्धांती तथा विहार-संबंधी पद हैं। इसमें इनके १४९ दोहे भी हैं। जो साखियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिद्धांती पदों और साखियों में वैराग्य-ज्ञान और अनन्य-भक्ति का बड़ा ही उत्तम वर्णन किया गया है। व्यासजी ने धर्म-दंभियों को खूब खरी-खरी सुनाई हैं। विहार के पद कितने ललित और भाव-पूर्ण हैं, इसके लिखने की आवश्यकता नहीं। आश्चर्य है, व्यासजी 'मिश्रबंधुविनोद' में साधारण श्रेणी के कवि माने गये हैं। नीलसखीजीने व्यासजी की बानी के विषय में क्या ही सुंदर पद कहा है :

जय-जय बिसद ब्यास की बानी।
मूलाधार इष्ट रसमय, उतकर्ष भक्ति-रस-पानी ॥
लोक-बेद-भेदन तें न्यारी, प्यारी मधुर कहानी।
स्वादिल सुचि रुचि उपजै पावत, मृदु मनसा न अघानी।
सक्ति अमोघ बिमुख-भंजन की, प्रगट प्रभाव बखानी।
मत्त मधुप-रसिकन के मन की, रस-रंजित रजधानी ॥
सखी-रूप नवनीत उपासन, अमृत निकास्यौ आनी।
'नीलसखी' प्रनमामि नित्य, सो अद्भुत कथा-मथानी ॥

व्यासजी के कुछ सिद्धांती पद, साखियां और विहार-संबंधी पद उद्धृत किये जाते हैं।

सिद्धांत के पद

सारंग

राधावल्लभ मेरौ प्यारौ।
सरबोपरि सबही कौ ठाकुर, सब सुख-दानि हमारौ ॥
ब्रज-बृंदाबन-नायक, सेवा-लायक स्याम उज्यारौ।
प्रीति-रीति पहिचानैं, जानैं, रसिकन कौ रखवारौ ॥
स्यामकमल-दल-लोचन, मोचन दुख, नैनन कौ तारौ।

अवतारी[1] सब अवतारन कौ, महतारी-महतारौ[2] ॥
मूरतिवंत[3] काम गोपिन कौं, गाय-गोप कौ गारौ ।
'व्यास' दास कौ प्रान-सजीवन, छिनभर हृदय न टारौ ॥१॥

सारंग

वृंदाबन की सोभा देखे मेरे नैन सिरात[4] ।
कुंज-निकुंज-पुंज सुख बरसत सब हरषत कौ गात ॥
राधा-मोहन के निज मंदिर महा प्रलय नहिं जात ।
ब्रह्मा तें उपज्यौ न, अखंडित कबहूं नाहिं नसात ॥
फनि[5]पर, रवि[6] तरि नहिं बिराट महँ, नहिं संध्या नहिं प्रात ।
माया-काल-रहित नित नूतन, सदा फूल-फल-पात ॥
निरगुन-सगुन ब्रह्म तें न्यारौ, बिहरत सदा सुहात ।
'व्यास', बिलास-रास अद्भुत गति, निगम अगोचर बात[7] ॥२॥

देवगंधार

श्रीवृंदाबन देखत, नैन सिरात ।
इन मेरे लोभी नैननि में सोभा-सिंधु न मात[8] ॥
संतत सरद बसंत बेलि-द्रुम, झूलत-फूलत रात[9] ।
नँदनंदन बृषभानु-नंदिनी, मानहुँ मिलि मुसक्यात ॥
ताल तमाल रसाल साल पल-पल चमकत[10] फल-पात[11] ।
मनुहुँ गौर मुख विधुकर[12]-रंजित सोभित साँवल गात ॥
किंसुक नवल नवीन माधुरी बिकसित हिय उरझात ।

[1]जिसके अंश से और सब अवतार होते हैं, जैसा कि श्रीमद्भागवत मे कहा है : 'एते चांशकलापुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।' [2]पिता; यह शब्द केवल व्यासजी ने प्रयुक्त किया है । [3]साक्षात् । [4]प्रसन्न होते हैं । [5]शेषनाग के ऊपर नहीं है । [6]सूर्य के नीचे अथवा सौरजगत् में नहीं है । [7]रहस्य । सारांश यह, कि वृंदावन अप्राकृत है, प्राकृत नहीं । [8]समाता है । [9]रहता है । [10]झिलमिल-झिलमिल हो रहे हैं । [11]पत्ते । [12]चंद्रमा की किरणें ।

मनहुँ अबीर-गुलाल-भरे तन दंपति अति अकुलात ।।
नाचत मोर-कोकिला गावत, कीर-चकोर सुहात ।
मनहुँ रास-रस नाचैं दोऊ बिछुरि न जानै प्रात ।।
त्रिभुवनकौ कवि कहि न सकत कछु अद्भुत छबि की बात ।
'ब्यास' बचन नहिं मुख कहि आवै ज्यों गूंगो गुर[१] खात ।।३।।

चर्चरी

नव चक्र-चूड़ा[२]-नृपति-मनि साँवरो, राधिका तरुनि-मनि पट्टरानी ।
सेस ग्रह आदि बैकुंठ परिजंत[३] सब लौक-थानैत[४] ब्रज राजधानी ।।
मेघ छानवे[५] कोटि बाग सींचत जहां, मुक्ति चारौ[६] जहाँ भरति पानी ।
सूर-ससि पाहरू पवन जन इंदिरा[७] चरन-दासी, भाट निगम-बानी ।।
धर्म कुतवाल[८], सुक सूत नारद चारु, फिरत चर[९] चारि सनकादि[१०] ग्यानी।
सत्त्व गुन पौरिया, काल बँधुवा[११] जहां, कर्मबस काम रति सुख-निसानी ।।
कनक-मरकत[१२]-धरनि कुंज कुसुमिति महल, मध्य कमनीय सयनीय ठानी ।
पल न बिछुरत दोऊ, जात नहिं तहँ कोऊ, 'ब्यास' महलनि लिये पीकदानी ।।४।।

धनाश्री

हरि-दासन के निकट न आवत प्रेत पितर जमदूत ।
जोगी भोगी संन्यासी अरु पंडित मुंडित धूत[१३] ।।
ग्रह गन्नेस[१४] सुरेस सिवा-सिव डर करि भागत भूत ।
सिधि-निधि बिधि-निषेध हरिनामहिं डरपत रहत कपूत ।।
सुख-दुख पाप-पुन्य मायामय ईति-भीति आकूत[१५] ।
सब की आस-त्रास तजि 'ब्यासहिं' भावत भगत सपूत ।।५।।

[१]गुड़ । [२]मस्तक, श्रेष्ठ । [३]पर्यंत । [४]थाने; छोटे-छोटे स्थान । [५]पुराणों के अनुसार छ्यानवे करोड़ मेघ माने गये हैं । [६]सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य और सामीप्य । [७]लक्ष्मी । [८]कोतवाल, नगर-रक्षक । [९]गुप्तचर । [१०]सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार । [११]कैदी । [१२]नीलम मणि । [१३]धूर्त, पाखंडी । [१४]गणेश । [१५]मतलब ।

सारंग

रसिक अनन्य हमारी जाति ।
कुलदेवी राधा, बरसानो खेरौ[१], ब्रजबासिन सों पाँति ।।
गोत गोपाल, जनेऊ माला, सिखा सिखंडि[२], हरिमंदिर[३] भाल ।
हरिगुननाम बेद-धुनि सुनियतु, मूँज पखावज, कुस[४] करताल ।।
साखा जमुना, हरि-लीला षटकर्म[५], प्रसाद प्रानधन रास ।
सेवा[६] विधि-निषेध, जड़ संगति, वृत्ति सदा बृंदाबन-बास ।।
सुमृति[७] भागवत, कृष्ण-नाम संध्या-तर्पन-गायत्री जाप[८] ।
बंसी रिषि[९], जजमान कलपतरु, 'व्यास' न देत असीस-सराप ।।६।।*

सारंग

ऐसे हीं बसिए ब्रज-बीथिन ।
साधुन के पनवारे[१०] चुनि-चुनि, उदर पोषिए सीथिन[११] ।
घूरन में के बीनि चिनगटा[१२] रच्छा कीजै सीतन[१३] ।
कुंज-कुंज-प्रति लोटि लगै उड़ि रज ब्रज की अंगीतन ।।
नितप्रति दरस स्याम-स्यामा कौ, नित जमुना-जल-पीतन ।

[१]श्रीराधिकाजी की जन्मभूमि बरसाना ही हमारा खेड़ा या आदि घर है। [२]मोर-पंख ही शिखा है। [३]तिलकयुक्त मस्तक ही भगवान् का मंदिर है। [४]हरि-भजन करते समय हाथ से ताली बजाना कुश है। [५]ब्राह्मणों के छह कर्म अर्थात् वेद पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना तथा दान देना और लेना। [६]भगवान् की या संतों की सेवा। [७]स्मृति; धर्मशास्त्र-संबंधी पुस्तकें। [८]हरि-नाम-स्मरण ही गायत्री का जप है। [९]ऋषि। [१०]पत्तल। [११]जूठे भात से। [१२]चिथड़ा। [१३]जाड़े से।

*कहते हैं एक बार रासमंडल में श्रीकृष्ण का नूपुर टूट गया। व्यासजी ने तुरंत अपना जनेऊ तोड़ कर उससे ठाकुरजी का नूपुर बाँध दिया। यह देख कर कोरे कर्मठ ब्राह्मण व्यासजी पर बहुत नाराज़ हुए। इस पर व्यासजी ने यह पद गाकर अपने 'ब्राह्मणत्व' को सिद्ध कर दिया।

ऐसेहिं 'ब्यास', रुचै तन पावन, ऐसेहिं मिलत अतीतन[1] ॥७॥

सारंग

जैए कौन के अब द्वार ।
जो जिय होय प्रीति काहू के, दुख सहिए सौ बार ॥
घर-घर राजस-तामस बाढ्यौ, धन-जोबन कौ गार ।
काम-बिबस ह्वै दान देत नीचन कों होत उदार ।
साधु न सूझत, बात न बूझत, ये कलि के ब्यौहार ॥
'ब्यासदास, कत भाजि उबरिए, परिए माँझीधार ॥८॥

सारंग

कहा-कहा नहिं सहत सरीर ।
स्याम-सरन बिनु करम सहाइ न, जनम-मरन की पीर ॥
करुनावंत साधु-संगति बिनु मनहिं देय को धीर ।
भक्त-भागवत-बिनु को मेटै, सुख दै दुख की भीर[2] ॥
बिनु अपराध चहूँ दिसि बरसत पिसुन[3]-बचन अति तीर[4] ।
कृष्ण-कृपा-कवची[5] तें उबरैं पावै तब हीं सीर[6] ॥
चेतहु भैया, बेगि बढ़ी कलि-काल-नदी गंभीर ।
'ब्यास'-बचन बलि बृंदाबन बसि, सेवहु कुंज-कुटीर ॥९॥

सारंग

भजौ सुत, साँचे स्याम पिताहि ।
जाके सरन जात हीं मिटिहै दारुन दुख की दाहि[7] ॥
कृपावंत भगवंत सुने मैं छिन छाँड़ौ जिनि ताहि ।
तेरे सकल मनोरथ पूजैं जो मथुरा लौं जाहि ॥
वै गोपाल दयाल, दीन तूं, करिहैं कृपा निबाहि ।
और न ठौर अनाथ दुखिन कों मैं देख्यौं जग माहि ॥

[1]वैरागियों से । [2]समूह । [3]निर्दय, दुष्ट । [4]बाण के समान । [5]कवच; जिरह बख्तर । [6]शांति । [7]दाह, जलन ।

करुना-बरुनालय की महिमा मो पै कही न जाहि ।
'व्यासदास' के प्रभु को सेवत हारि भई कहु काहि ।।१०।।

सारंग

धर्म दुरयौ कलिराज दिखाई ।
कीनों प्रगट प्रताप आपनौ, सब बिपरीति चलाई ।
धन भौ मीत, धर्म भौ बैरी, पतितन सों हितवाई[1] ।।
जोगी जती तपी संन्यासी ब्रत[2] छाँड़्यौ अकुलाई ।
बरनास्रम की कौन चलावै, संतन हूं में आई ।।
देखत संत भयानक लागत, भावत[3] ससुर जमाई ।
संपति सुकृत सनेह मान चित ग्रह ब्यौहार बड़ाई ।।
कियो कुमंत्री लोभ आपुनो, महामोह जु सहाई ।
काम क्रोध मद मोह मत्सरा दीन्हीं देस दुहाई ।।
दान लेन को बड़े पातकी, मचलन कों बँभनाई[4] ।
लरन-मरन कों बड़े तामसी[5], बारौं कोटि कसाई[6] ।।
उपदेसन कों गुरू गुसाईं आचरनै[7] अधमाई ।
'व्यासदास' के सुकृत साँकरे[8] में गोपाल सहाई ।।११।।

केदारा

भटकट फिरत गौड़[9] गुजरात ।
सुखनिधि मथुरा तजि बृंदाबन दामनि[10] कों अकुलात ।।
जीवनमूर जहां की धूरहिं छाँड़तहूं न लजात ।
मुक्ति-पुंज समताहि[11] न पावत एक कुंज के पात ।।
जाकौ तक्र[12] सक्र[13] कों दुरलभ, ताहि न बूझत बात ।

[1]मित्रता । [2]अपना-अपना कर्म । [3]प्यारे । [4]किसी से मुड़चिरापन से कुछ लेने में ही अब ब्राह्मणत्व रह गया है । [5]क्रोधी । [6]हत्यारे । [7]आचरण में । [8]कष्ट में । [9]बंगाल । [10]रुपये-पैसे के लिए । [11]उपमा को । [12]मट्ठा । [13]शक्र, इंद्र ।

'व्यास', बिबेक बिना संसारहिं लूटतहूं न अघात ॥१२॥

सारंग

जो दुख होत बिमुख[1] घर आये ।
ज्यों कारौ[2] लागै कारी निसि, कोटिक बीछी खाये[3] ॥
दुपहर जेठ जरत बारू[4] में घायन लौन लगाये ।
काँटन माँझि फिरै बिन पनहीं, मूड़ैं टोला खाये ॥
ज्यों बाँझहिं दुख होत सौति कौ सुंदर बेटा जाये ।
देखत हीं सुख होत जितौ दुख बिसरत नहिं बिसराये ॥
भटकत फिरत निलज बरजत हीं कूकर ज्यों झहराये[5] ।
गारी देत बिलग[6] नहिं मानत, फूलत दमरी[7] पाये ॥
अति दुख दुष्ट जगत में जेते नेकु न मेरे भाये ।
भूलि दरस नहिं कीजो वाको, 'व्यास' बचन बिसराये ॥१३॥

सारंग

सुने न देखे भक्त भिखारी ।
तिनके दाम-काम कौ लोभ न, जिनके कुंजबिहारी ॥
सुक नारद अरु सिव सनकादिक ये अनुरागी भारी ।
तिनकौ मत भागवत न समुझै, सबकी बुधि पचि हारी ॥
रसना, इन्द्री[8] दोऊ बैरिन, जिनकी अनी[9] अन्यारी[10] ।
करि आहार-बिहार परस्पर बैर करत बिभिचारी ॥
बिषयिनि की परतीत न हरि सों, प्रीति-रीति बाजारी[11] ।
'व्यास' आस-सागर में बूड़ैं आई[12] भक्ति बिसारी ॥१४॥

[1]हरि-विमुख। [2]काला; काला साँप। [3]काट लेने पर। [4]जलती हुई बालू। [5]तिरस्कार होने पर भी। [6]बुरा नहीं मानता है। [7]दमड़ी अर्थात् थोड़ा-सा धन पा जाने से कुप्पा-जैसा फूल जाता है। [8]इंद्रिय; यहां शिश्नेंद्रिय से तात्पर्य है। [9]नोक। [10]पैनी। [11]लुचाई से भरी हुई। [12]अनायास मिली हुई।

सारंग

जो सुख होत भक्त घर आये ।
सो सुख होत नहीं बहु संपति, बाँझहिं बेटा जाये ॥
जो सुख होत भक्त-चरनोदक पीवत गात लगाये ।
सो सुख होत सपनेहूँ नहिं पैयतु कोटिक तीरथ न्हाये ॥
जो सुख कबहुँ न पैयतु पितु-घर सुत कौ पूत खिलाये ।
सो सुख होत भक्त-बचननि सुनि, नैननि-नीर[1] बहाये ॥
जो सुख होत मिलत साधुन सों छिन-छिन रंग[2] बढ़ाये ।
सो सुख होत न नैकु 'व्यास' कों लंक समेरहुँ पाये ॥१५॥

सारंग

हरि-बिनु को अपनो संसार ।
माया-मोह-बँध्यो जग बूड़त, काल-नदी की धार ॥
जैसे संघट[3] होत नाव में, रहत न पैले पार[4] ।
सुत-संपति-दारा सों ऐसे बिछुरत लगै न बार ॥
जैसे सपने रंक पाय निधि जाने कछू न सार ।
ऐसे छिनभंगुर देही के गरबहि करत गँवार ॥
जैसे अँधरे टेकत डोलत गनत न खाइ[5]-पनार[6] ।
ऐसे 'व्यास', बहुत उपदेसे सुनि-सुनि[7] गये न पार ॥१६॥

सारंग

कहत सुनत बहुतै दिन बीते, भक्ति न मनमें आई ।
स्याम-कृपा बिनु साधु-संग बिनु कहि कौने रति[8] पाई ?
अपने-अपने मद-मत भूले, करत आपनी भाई[9] ।
'कह्यो हमारो बहुत करत हैं बहुतन में प्रभुताई ॥'

[1]प्रेम के आँसू बहाने से। [2]प्रेम। [3]साथ। [4]परले पार, उस पार। [5]गड्ढा। [6]नाला। [7]ज्ञानोपदेश सुन कर भी मुक्त नहीं हुए। [8]अनुरति; भक्ति। [9]अपनी मनचाही, मनमुखी बात।

'मैं समझी सब काहु न समझी, मैं सबहिन समझाई ।'
'भोरे[1] भक्त हुते सब तबके[2], हमरे बहु चतुराई ॥'
'हमहीं अति परिपक्व भये औरनि कै सबै कचाई[3] ।'
कहनि सुहेली[4] रहनि दुहेली[5], बातनि बहुत बड़ाई ॥
हरिमंदिर माला धरि गुरु करि जीवन के दुखदाई ।
दया-दीनता दास-भाव बिनु, मिलैं न 'ब्यास' कन्हाई ॥१७॥

धनाश्री

बृंदावन साँचो धन भैया ।
कनक-कूट[6] कोटिक लगि तजिए, भजिए कुँवर-कन्हैया ॥
जहँ श्रीराधा-चरनरेनु की कमला लेति बलैया ।
तिनमें गोपी नाच नचावति, मोहन बैनु बजैया ॥
कामधेनु कौ छीरसिंधु तजि भजहु नंद की गैया ।
चारयौ मुक्ति कहा लै करिहौं, जहां, जसोदा मैया ॥
अद्‌भुत लीला, अद्‌भुत बैभव, सत[7] सुकदेव कहैया ।
आरत[8] 'ब्यास' पुकारत बन में थोरे लोग सुनैया ॥१८॥

कान्हरा

परमधन राधे-नाम अधार ।
जाहि स्याम मुरली में टेरत, सुमिरत बारंबार ॥
जंत्र-मंत्र औ बेद-तंत्र में, सबै तार[9] कौ तार ।
श्रीसुक[10] प्रगट कियो नहिं यातें, जानि सार कौ सार ॥
कोटिन रूप[11] धरे नँद-नंदन तऊ न पायो पार ।

[1]भोले, मूर्ख । [2]पुराने । [3]कच्चापन । [4]कहना सुंदर है । [5]रहना दो प्रकार का है । हाथी के दाँत दिखाने के और होते हैं और खाने के और; कपट-भाव । [6]सुमेरु पर्वत । [7]सत्य; सार । [8]दूसरों के हित में आर्त्त । [9]रहस्य का रहस्य । [10]श्री...सार = इसीसे सर्वत्र अधिकारी न पाकर शुकदेवजी ने श्रीमद्‌भागवत में, श्रीराधिकाजी का नाम स्पष्ट रूप से नहीं कहा है । [11]छद्मरूप ।

'व्यासदास' अब प्रगट बखानत डारि भार में भार ॥१९॥

साखी

आदि अंत अरु मध्य में, गहि रसिकन की रीति ।
संत सबै गुरु देव हैं, 'व्यासहि' यह परतीति ॥१॥
'व्यासहिं' बाह्मन जिन गनौ, हरि-भक्तन कौ दास ।
राधावल्लभ कारनै, सह्यो जगत-उपहास ॥२॥
'व्यास' न कथनी[1] काम की, करनी[2] है इक सार ।
भक्ति बिना पंडित वृथा, ज्यों खर चंदन-भार ॥३॥
'व्यास', रसिक सब चलि बसे, नीरस रहे कुबंस[3] ।
बग[4]-ठग की संगति भई, परिहरि गये जु हंस ॥४॥
श्रीराधाबर ध्यायकैं, और ध्याइए कौन ।
'व्यासहिं' देत[5] बनै नहीं बरी-बरी-प्रति लौन ॥५॥
'व्यास' बड़ाई लोक की, कूकर की पहिचानि ।
प्रीत करे मुख चाटही, बैर करे तनु-हानि ॥६॥
मुहरैं मेवा अनत के, मिथ्या भोग-विलास ।
बृंदावन के स्वपच की, जूठन खैए 'व्यास' ॥७॥
'व्यास' आस करि माँगिबौ, हरि हूं हरुवौ[6] होय ।
बावन[7] ह्वै बलि कैं गये, यह जानत सब कोय ॥८॥
नैन न मूँदे ध्यान को, किये न अंगन-न्यास[8] ।
नाचि-गाय स्यामहिं मिले, बसि बृंदावन 'व्यास' ॥९॥
'व्यास' राधिकारमन बिनु, कहू न पायौ सुक्ख ।

[1]कोरा कथन, मौखिक वाद-विवाद । [2]शास्त्र-विहित कर्तव्य कर्म । [3]बुरे वंस, कुपूत, हरि-विमुख । [4]बगुला । [5]देत...लौन = एक-एक बड़ी (दाल की बड़ियां) पर नमक डालते नहीं बनता । एक-एक देवता का अलग-अलग पूजन नहीं करते बनता । [6]हलका, तिरस्कृत । [7]विष्णु का वामन अवतार । इसी रूप से भगवान ने राजा बलि को छला था । [8]संध्या के अंगन्यास इत्यादि ।

•

डारन-डारन[1] मैं फिरयौ, पातन-पातन[2] दुक्ख ॥१०॥
'व्यास' भक्ति की कुबुधि गहि, गुरु गोबिंदहिं मारि ।
कै या ब्रतहिं निबाहि लै, कै मालादि उतारि ॥११॥
मन जो चरननि तर बसै, तनु जो अनतहि जाय ।
अनु चरननि मन अनतही, ताहि न 'व्यास' पत्याय ॥१२॥
प्रेम अतनु या जगत में, जानै बिरलो कोय ।
'व्यास' सतनु क्यों परसिहै, पचिहारयो जग रोय ॥१३॥
अपने-अपने मत लगे, बादि मचावत सोर ।
ज्यों-त्यों सब कौ सेइबो, एकै नंदकिसोर ॥१४॥*
हरि-हीरा निरमोल है, निरधन गाहक 'व्यास' ।
ऊंचो फल क्यों पावही, चौंप करत उपहास ॥१५॥
मुख मीठी बातें कहै, हिरदै निपट कठोर ।
'व्यास' कहौ क्यों पाय है, नागर नंद-किसोर ॥१६॥
'व्यासदास'-से पतित सों, भृगु[3] कौ पलटौ[4] लेहु ।
उन उर दीनों एक पग, तुम दोऊ पग देहु ॥१७॥
'व्यास', आस इत जगत की, उत चाहत हिय स्याम ।
निलज अधम सकुचत नहीं, चाहत है अभिराम ॥१८॥

[1]डाल-डाल पर। [2]पत्ते-पत्ते पर। [3]भृगु मुनि; जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ धर्म क्षमा की परीक्षा लेने के लिए विष्णु भगवान की छाती पर लात मारी थी। [4]बदला। व्यास जी कहते हैं—'हे हरे! भृगुमुनि ने आप के वक्षःस्थल पर एक लात मारी थी। क्या आप उनका बदला लेना चाहते हैं? यदि हां, तो मेरे हृदय पर अपने दोनों चरणों को रख कर बदला चुका लीजिए क्योंकि मैं भी भृगु का सजातीय ब्राह्मण हूं।' क्या ही अनोखी सूझ है!

*यह दोहा बिहारी-सतसई में भी है। यह नहीं कहा जा सकता कि बिहारी ने इसे अपनी सतसई में रख लिया है। संपादकों की भूल से ही ऐसी गड़बड़ी का होना संभव है।

मो मन अटक्यौ स्याम सौं, गड्यौ रूप में जाय।
चहले[1] परि निकसै नहीं, मनों दूबरी[2] गाय ॥१६॥
साधुन की सेवा कियें, हरि पावत संतोष।
साधु-बिमुख जे हरि भजैं, 'व्यास', बढ़ैं दिन रोष ॥२०॥
स्वान प्रसादहि छ्वी गयो, कौआ गयो बिटारि[3]।
दोऊ पावन 'व्यास' के, कह भागौत[4] बिचारि ॥२१॥
'व्यास' जु रसिकन की रहनि, बहुत कठिन है बीर।
मन आनंद घटै न छिन, सहत जगत की पीर ॥२२॥
सती सूरमा संतजन, इन समान नहि और।
अगम पंथ पै पग धरैं, डिगै न पावैं ठौर ॥२३॥
उपदेस्यौ रसिकन प्रथम, तब पाये हरिबंस।
जब हरिबंस कृपा करी, मिटे 'व्यास' के संस[5] ॥२४॥
'व्यास' बढ़ाई और की, मेरे मन धिक्कार।
रसिकनि की गारी भली, यह मेरो सिंगार ॥२५॥
काहू के बल भजन कौ, काहू के आचार।
'व्यास' भरोसे कुँवरि[6] के सोवत पाउँ पसार ॥२६॥
मोह-मया[7] के फंद बहु, 'व्यासहि' लीनों घेरि।
श्रीहरिबंस कृपा करी, लीनों मोकों टेरि ॥२७॥
'व्यास' आस हरिबंस की, तिनहीं के बड़ भाग।
बृंदाबन की कुंज में, सदा रहत अनुराग ॥२८॥
'व्यास' भक्ति कौ फल लह्यौ, बृंदाबन की धूरि[8]।
श्रीहरिबंस-प्रताप तें, पाई जीवन-मूरि ॥२९॥
मेरे मन आधार प्रभु, श्रीबृंदाबन - चंद।
नितप्रति यह सुमिरत रहौं, 'व्यासहि' मन आनंद ॥३०॥

[1]दलदल। [2]दुबली। [3]चोंच मार गया। [4]भागवत। [5]संशय, अविद्या। [6]श्रीराधिकाजी। [7]माया। [8]धूल; रज।

श्रीहरि-भक्ति न जानहीं, माया ही सों हेत ।
जीवत ह्वैहैं पातकी, मरिकैं ह्वैहैं प्रेत ॥३१॥
'व्यास' दीनता के सुखहि, कह जानै जग मंद[१] ।
दीन भये तें मिलत हैं, दीनबंधु सुख-कंद ॥३२॥
बृंदाबन के स्वपच कौ, रहिए सेवक होय ।
तासों भेद न कीजिए, पीजै पद-रज धोय ॥३३॥
'व्यास' मिठाई बिप्र की, तामें 'लागै आगि'[२] ।
बृंदाबन, के स्वपच की, जूठनि खैए माँगि ॥३४॥
'व्यास',कुलीननि कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस ।
स्वपच भक्त की पानहीं[३], तुलैं न तिनके सीस ॥३५॥
'व्यास' न व्यापक[४] देखिए, निरगुन परै न जानि ।
तब भक्तन हित औतरे[५], राधा-बल्लभ आनि ॥३६॥

बिहार के पद

विहाग

गौर मुख चंद्रमा की भाँति ।
सदा उदित बृंदावन प्रमुदित, कुमुदित बल्लभ[६]-जाति ॥
नील निचोल[७] सुहार, गगन में लसति, तारिका-पाँति[८] ।
झलकत अलक दसन-दुति दमकत, मनहुँ किरन-कुलकाँति[९] ॥
हास-कला कल सरद-सुहाई, तनु छबि चाँदनि राति ।
नैन-कुरंग निकट सिंहनि-उर, उन पर अति अनखाति ॥
नाह-निकट नहिं राहु-बिरह, डरपत सोभा न समाति ।
देखत पाप न रहत 'व्यास' दासी-तन-ताप बुझाति ॥१॥

मलार

आज कछु कुंजनि में बरषा-सी ।

[१]मूर्ख । [२]वह चूल्हे में जला दी जाय । [३]जूती । [४]सर्वव्यापी ब्रह्म । [५]अवतार लिया । [६]प्रिय । [७]वस्त्र । [८]ताराओं की पंक्ति । [९]कांति ।

बादल-दल[1] में देखि सखीरी, चमकति है चपला-सी ॥
नान्हीं-नान्हीं बूँदनि कछु धुरवा[2]-से, पवन बहै सुखरासी ।
मंद-मंद गरजनि-सी सुनयतु, नाचति मोर-सभा-सी ॥
इंद्र-धनुष बग-पंगति डोलति, बोलत कोककला-सी ।
इंद्रवधू[3]-छवि छाय रही, मनु गिरि पर अरुन घटा-सी ॥
उमँगि महीरुह[4]-सी महि फूली[5], भूली मृगमाला-सी ।
रटति 'ब्यास' चातक ज्यों रसना, रस[6] पीवत ही प्यासी ॥२॥*

कल्यान

सुघर राधिका प्रवीन[7] बीना, बर रास रच्यौ
स्याम-संग बर सुधंग तरनि-तनय[8]-तीरे ।
आनँदकँद बृंदाबन सरद मंद-मंद पवन
कुसुम-पुंज ताप-दवन[9], धुनत कलकुटीरे[10] ॥
रुनित[11] किंकिनी सुचारु, नूपुर तिमि बलय-हारु[12],
अंग बर मृदंग ताल तरल रंग भीरे ।
गावत अति रंग रह्यौ, मोपै नहिँ जात कह्यौ,
'ब्यास' रस-प्रवाह बह्यौ निरखि नैन सीरे ॥३॥

सारंग

नृत्यत नागर नटवर बपु धरि सुख-सागरहिं बढ़ावत ।
सरद सुखद निसि ससि गोरंजित[13] बृंदाबन उपजावत ॥
ताल लिये गोपाललाल सँग ललिता मृदँग बजावति ।
हरिबंसी हरिदासी गावति, सुघर[14] रबाब[15] बजावति ॥

[1]घन-घटायें। [2]मेघ। [3]वीरबहूटी। [4]वृक्ष। [5]प्रसन्नता से हरी-भरी हो गई। [6]आनंदामृत। [7]वीणा बजाने में चतुर। [8]सूर्य-पुत्री, यमुना। [9]दमन;नाश करने वाला। [10]कुटी या कुंज में। [11]शब्दायमान। [12]हाथों में पहिनने के कड़े। [13]गाय के खुरों से उड़ी हुई धूल से कुछ-कुछ धुँधला-सा। [14]चतुर। [15]वाद्य-विशेष।

*इस पद में प्रकृति का क्या ही सजीव चित्र है !

मिस्रित धुनि सुनि खग-मृग मोहित जमुना[1] जल न बहावति ।
लेत तिरपि बिगलित माला तित कुसुमावलि बरसावति ॥
जय जय साधु करति हरि सहचरि, 'ब्यास' चिराक[2] दिखावति ॥४॥

केदारा

पिय कों नाचन सिखवति प्यारी ।
बृंदाबन में रास रच्यौ है, सरद-इंदु-उँजियारी ॥
मान-गुमान लकुट लियें ठाढ़ी, डरपत कुंजबिहारी ।
'ब्यास' स्वामिनी की छबि निरखति, हँसि-हँसि दै करतारी ॥५॥

रास-पंचाध्यायी*

त्रिपदी छंद

निठुर बचन जिनि बोलहु नाथ, निज दासी जिनि करहु अनाथ;
रास-रसिक गुन गाइहौं ॥
नव कुंकुम-जल बरसत जहां, उड़त कपूर-धूर[3] जहँ तहां,
और फूल-फल को गनै ?
तहां स्यामघन रासहिं रच्यौ, मरकत[4] मनि कंचन सों खच्यौ;
सोभा कहति न आवई ॥
चारु मंडली जुवतिन बनी, द्वै-द्वै बिच आये हरि धनी[5];
अद्भुत कौतुक प्रगट किय ॥

[1]स्थिर होकर यमुना भी रास देख रही है। [2]दीपक। [3]कपूर का चूर्ण। [4]मरकत...खच्यौ = नीलममणि के समान श्रीकृष्ण कंचनवर्ण गोपियों के साथ शोभायमान हो रहे हैं। [5]प्यारे।

*संग्रह-कर्त्ताओं की भूल से ब्यासजी की यह 'रास-पंचाध्यायी' 'सूर-सागर' में रख दी गयी है। इसकी रचना भी सूरदासजी की एतद्विषयक रचना से कुछ कम नहीं है, और कदाचित् इसी से 'सूरसागर' के संपादकों को ऐसा करने में भ्रम हो गया है।

पद पटकति लटकति लट बाहु, भौंहन मटकति हँसति उछाहु;
अंचल चंचल झूमका ॥
मनि-कुंडल ताटंक बिलोल[1], मुख सुखरासि कहै मृदु बोल;
गंडल[2] मंडित स्वेदकन ॥
बिलुलित[3] माला, बिगलित[4] केस, घूमत, लटकत मुकुट बिसेस;
कुसुम खसैं सिर तें घनै ॥
हरषित बेनु बजायो छैल, चंदहिं[5] बिसरी घर की गैल,
तारागन मनमें लजैं ॥
मोहनि-धुनि बैकुंठहि गयी, नारायन मन प्रीति जु भयी,
कमला सों बोले बचन—
"कुंजबिहारी बिहरत देखि, जीवन जनम सुफल करि लेखि;
यह सुख हम कों है कहां ?
श्री बृंदाबन हम तें दूरि, कैसें करि उड़ि लागै धूरि;
रास-रसिक गन गाइहौं ॥"
धुनि कोलाहल दस दिसि जाति, कल्प समान भयो सुखराति;
जीव-जंतु मुदमंत सब ॥
उलटि बह्यौ जमुना कौ नीरु, बालक-बच्छ न पीवत खीरु[6] ;
राधारमन-ठगे[7] सबै ॥
गिरिवर तरुवर पुलकित गात, गोगन-थन तें दूध चुचात[8] ;
सुनि खग-मृग मुनिब्रत[9] धरयौ ॥१॥*

[1]चंचल, हिलता हुआ। [2]गालों का ऊपरी भाग। [3]हिलती हुई, उरझी हुई। [4]बिथुरे हुए। [5]चंदहि...गैल=चंद्रमा स्थिर हो गया। [6]दूध। [7]मोहित कर लिये। [8]चू रहा है। [9]आनंद के मारे विदेह-से हो गये; समाधिस्थ हो गये।

*भक्ति-पक्ष में बैकुंठ-वासी नारायण और लक्ष्मी से गोलोक-वृंदावन-वासी श्रीकृष्ण और श्रीराधिका परे हैं। नारायण और लक्ष्मी श्रीकृष्ण और राधिका के

कह्यौ भागवत मे अनुराग, कैसे समुझै बिनु बड़भाग;
श्रीगुरु सुक जु कृपा करी ॥
'ब्यास' आस करि बरन्यो रास, चाहत हौं बृंदाबन-बास;
करि राधे ! इतनी कृपा ॥
निज दासी अपनी करि मोहि, नितप्रति स्यामा सेऊं तोहिं;
नव निकुंज-सुख-पुंज में ॥
हरिबंसी[1] हरिदासी[2] जहां, मोहिं करुना करि राखौ तहां;
नितविहार-आधार दै ॥
कहत-सुनत बाढ़ै रसरीति, स्रोतहिं बकतहि हरिपद-प्रीति;
रास-रसिक गुन गाइहौं ॥२॥*

अंशावतार कहे जाते हैं। अतः यह नित्य-बिहार का आनंद उन्हें कहां ?

[1]श्रीराधावल्लभीय सहचरी। [2]टट्टी-सांप्रदायिक सहचरी।

*व्यास जी श्रीहितहरिवंश और श्रीस्वामीहरिदास को सम भक्ति-भाव से देखते थे। उनकी दृष्टि में आजकल की भांति संकीर्ण सांप्रदायिक भेद-भाव के लिए स्थान नहीं था।

कृष्णदास

छप्पय

श्री वल्लभगुरु-दत्त भजन-सागर गुन-आगर ।
कवित नोष, निर्दोष, नाथ-सेवा में नागर ॥
बानी बंदित बिदुष सुजस गोपाल अलंकृत ।
ब्रजरज अति आराध्य वहै धारी सर्वसु चित ॥
सान्निध्य सदा हरिदास-वर, गौर-स्याम-दृढ़-व्रत लियो ।
गिरिधरन रीझि कृष्णदास के नाम माँझ साझो दियो ॥

—नाभाजी

महात्मा कृष्णदासजी गोस्वामी श्रीवल्लभाचार्यजी के शिष्य थे। गोसाइँ विट्ठलनाथजी ने इनकी भी 'अष्टछाप' में गणना की। इनकी कविता, सूरदास और नंददास की रचनाओं को छोड़ कर, 'अष्टछाप' में सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। यह जाति के शूद्र थे, पर श्रीवल्लभाचार्यजी के परम कृपापात्र होने के कारण यह श्रीनाथजी के मंदिर के सर्वप्रधान प्रबंधकर्ता नियुक्त किये गये। इनका जन्म-संवत्, श्रीनाथद्वारा के नित्य-कीर्तन के अनुसार, १५६० है। '८४ वैष्णवन की वार्ता' में इनका विस्तृत जीवन-चरित्र लिखा है। लिखा है कि एक बार गोसाइँ विट्ठलनाथजी से रुष्ट होकर इन्होंने श्रीनाथजी के मंदिर में उनकी डेवढ़ी बंद कर दी। इस बात पर गोसाइँ जी के कृपापात्र महाराज बीरबल ने कृष्णदासजी को क़ैद कर लिया। पर क्या गोसाइँ जी इस कार्यवाही से संतुष्ट हो सकते थे? उन्हें एक परमभक्त के क़ैद हो जाने से इतना कष्ट हुआ कि अन्न-जल तक छोड़ दिया। यह देख कर बीरबल ने कृष्णदास को कारागार से मुक्त कर दिया। गोसाइँजी ने फिर भी इन्हें मंदिर का प्रबंध सौंप दिया।

इन्होंने श्रीराधाकृष्ण के विशुद्ध शृंगार का पदों-द्वारा बड़ा ही सुंदर वर्णन किया है। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। हमने 'कृष्णदासजू कौ कीर्तन' नाम का एक हस्तलिखित संग्रह देखा है। उसमें इनके १२५ पद हैं। इनकी कविता बड़ी ही सरस और भावमयी है। कहते हैं, यह सूरदास जी से अपनी कविता के संबंध में लागडाँट रखा करते थे। इनका गोलोकवास संवत् १६६५ के लगभग हुआ।

देवगंधार

जब तें स्याम-सरन हौं पायो।
तब तें भेंट भई श्रीवल्लभ[1], निज पति[2] नाम बतायो॥
और अविद्या[3] छाँड़ि मलिनमति, स्तुतिपथ आइ दृढ़ायो।
'कृष्णदास' जन चहुँ जुग खोजत, अब निहचै मन आयो॥१॥

बिलावल

बाल-दसा गोपाल की सब काहू प्यारी।
लै-लै गोद खिलावहीं, जसुमति महतारी॥
पीत झँगुलि[4] तन सोहही, सिर कुलहि[5] बिराजै।
छुद्रघंटिका[6] कटि बनी, पाय नूपुर बाजै॥
मुरि-मुरि नाचै मोर-ज्यों, सुर-नर-मुनि मोहै।
'कृष्णदास' प्रभु नंद के, आँगन में सोहै॥२॥

विभास

रास-रस गोविंद करत बिहार।
सूर-सुता[7] के पुलिन रम्य महँ, फूले कुंद-मँदार॥

[1]यह आचार्यवर विष्णुस्वामि संप्रदाय की परंपरा में हुए हैं। आपने दाक्षिणात्य होकर भी ब्रज-भाषा-साहित्य का अतुल उपकार किया। शुद्धाद्वैतमत का प्रतिपादन कर आचार्यवर ने मायावाद का खंडन किया। [2]जीव के भर्ता श्रीकृष्ण। [3]माया; हेर-फेर का ज्ञान। [4]बच्चों का कुरता; अलफा। [5]टोपी। [6]करधनी। [7]सूर्य-पुत्री, यमुना।

अद्भुत सतदल[1] बिकसित कोमल, मुकुलित कुमुद कल्हार[2] ।
मलय-पवन बह सारदि[3] पूरनचंद्र, मधुप झंकार ।।
सुघरराय[4] संगीत-कलानिधि, मोहन नंदकुमार ।
ब्रजभामिनि-सँग प्रमुदित नाचत, तन चरचित घनसार[5] ।।३।।

ललित

इहि मन कैसेकैं रहत राख्यो ।
जिहि मधुकर ह्वै गिरिधर पियकौ बदन कमल-रस[6] चाख्यो ।।
जु कछुक मैं कानी परबस ह्वै ताही कौ सो साख्यो[7] ।
बारबार बहु-बिधि समुझायो ऊँचो[8]-नीचो भाख्यो ।।
केहुँ[9] न मानत महा हठीलौ, कही तुम्हारी आख्यो[10] ।
'कृष्णदास' कहँ लै हौं बरनौं, रूपमधुर-मधु चाख्यो ।।४।।

नट

गोपालै देखन किन[11] आई री ।
आजु बने गोबिंद मानिनी, तोकों लैन पठाई री ।
तरनि-तनया-पुलिन बिमल सरद निसि जुन्हाई[12] री ।
राकापति-कर-रंजित द्रुमलता भूमि सुहाई री ।।
गोबर्द्धन-धरन-लाल गान सों बुलाई री ।
'कृष्णदास' प्रभु सों मिलन जुवतिनि सुखदाई री ।।५।।

बिभास

आजु पिय सों तू मिली री, मानो ।
स्रमजलकन भरि बदन की सोभा, निरखि नभसि[13] उडुराज खिसानो[14] ।।

[1]सौ पंखड़ी वाला कमल । [2]पुष्प-विशेष । [3]शरद ऋतु का । [4]निपुण-शिरोमणि । [5]कपूर । [6]पराग । [7]साक्षी । [8]साम, दाम, दंड, भेद सब तरह से समझाया । [9]किसी भी तरह । [10]उल्लंघन कर गया । [11]क्यों नहीं । [12]चाँदनी । [13]आकाश में । [14]अपने को निस्तेज-सा समझ कर चंद्रमा मन ही मन कुढ़ गया ।

त्रिभुवन-जुवतिन कौ सुख सरबसु, जानति हौं तुव माँझ समानो ॥
'कृष्णदास' प्रभु रसिक-मुकुट-मनि, सुबस कियो गोवर्द्धन-रानो[1] ॥६॥

गौरी

मो मन गिरिधर-छवि पै अटक्यो ।
ललित त्रिभंग चाल पै चलिकैं, चिबुक चारु गड़ि ठटक्यो[2] ॥
सजल स्यामघन-बरन लीन ह्वै, फिरि चित अनत न भटक्यो ।
'कृष्णदास' किये प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यो[3] ॥७॥*

---

[1]राजा । [2]ठिठक गया, ठहर गया । [3]इस क्षणभंगुर शरीर को संसार के हवाले कर दिया ।

*कहते हैं, इसी पद को गाते-गाते कृष्णदासजी ने अपना शरीर छोड़ दिया था ।

परमानंददास

छप्पय

ब्रज-लीलामृत-रसिक, रुचिर पद-रचना-नेमी ।
गिरिधारन श्रीनाथ-सखा, वल्लभ-पद-प्रेमी ।।
ब्रज-रज-मधुकर मत्त, भक्त, भावुकता-भूषन ।
कविता रस-संवलित, नाहिं जामें कहुँ दूषन ।।
नित रहत प्रेम में रँगमगो, ब्रजवल्लभ के पास ।
सुचि अष्टछाप को भक्त-कवि, श्री परमानँद दास ।।

—वियोगी हरि

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में श्री परमानंददासजी की कथा आई है। 'अष्टछाप' में इनकी गणना की गई है। आचार्य महाप्रभुजी के यह शिष्य थे और सूरदासजी के गुरु-भाई। यह कन्नौज-निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। श्रीवल्लभाचार्यजी के एक बड़े ही कृपा-पात्र थे। इनकी कविता सुन कर आचार्य देव प्रेमोन्मत्त हो जाते थे। वात्सल्य और प्रेम का तो परमानंददासजी ने बड़ा ही सुंदर और सजीव चित्रण किया है। सुनते हैं, इनका रचा हुआ एक ग्रंथ 'परमानंद-सागर' है। साहित्यान्वेषकों को उस ग्रंथ-रत्न को अवश्य प्रकाश में लाना चाहिए। 'मिश्रबंधुविनोद' के अनुसार इनका रचना-काल संवत् १६०६ के लगभग माना जाता है। 'परमानंददासजी का पद', 'दान-लीला' और 'ध्रुव-चरित' नाम के इनके ग्रंथ खोज में मिले हैं। नीचे परमानंददासजी के कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं :

कहा करौं बैकुंठहिं जाय ।
जहँ नहिं नंद जहां न जसोदा, जहँ नहिं गोपी ग्वाल न गाय ।।

जहँ नहिं जल जमुना कौ निरमल, और नहीं कदमन[1] की छाय[2] ।
'परमानँद' प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय ।।१।।

ब्रज के बिरही लोग बिचारे ।
बिनु गोपाल ठगे-से ठाड़े, अति दुर्बल तन-हारे[3] ।।
मात जसोदा पंथ निहारत, निरखत साँझ-सकारे ।
जो कोइ कान्ह-कान्ह कहि बोलत, अँखियन बहत पनारे ।।
यह मथुरा काजर की रेखा, जे निकसे ते कारे[4] ।
'परमानँद' स्वामी बिनु ऐसे, ज्यों चंदा बिनु तारे ।।२।।

कौन रसिक[5] है इन बातन कौ ।
नंद-नँदन बिनु कासो कहिए, सुनिरी सखी, मेरे दुखिया मन कौ ।।
कहां वे जमुना-पुलिन मनोहर कहां वह चंद सरद रातन कौ ।
कहां वे मंद-सुगध अमल रस कहां वो षट्पद जल-जातन[6] कौ ।।
कहां वो सेज पौढ़िबो बन कौ, फूल बिछौना मृदु पातन[7] कौ ।
कहां वे दरस-परस 'परमानँद', कोमल तन कोमल गातन कौ ।।३।।

माई को मिलिबे नंदकिसोरै ।
एकबार कौ नैन दिखावैं, मेरे मन कौ चोरै ।।
जागत जाय गनत नहिं खूटत[8], क्यों पाऊंगी भोरै[9] ।
सुनिरी सखी अब कैसे जीजै, सुनि तमचुर खग रोरै[10] ।।
जो यह प्रीति सत्य अंतरगत, जिन काहू बन होरै ।
'परमानँद' प्रभु आनि मिलैंगे, सखी सीस जिन ढोरै[11] ।।४।।

मोहन नंदराय-कुमार ।
प्रगट[12] ब्रह्म निकुंज-नायक, भक्तहित अवतार ।।
प्रथम चरन-सरोज बंदौं स्यामघन गोपाल ।

[1]कदंब वृक्षों की। [2]छाया। [3]निराश। [4]काले, कपटी। [5]ग्राहक। [6]कमलों पर मँडराता हुआ। [7]पत्तों का। [8]बीतता है। [9]सवेरे को। [10]शब्द को। [11]मत धुन, दुःख न कर। [12]प्रत्यक्ष।

मकर कुंडल गंड[1]-मंडित, चारु नैन बिसाल ।।
सहित श्री बलराम लीला ललित सों करि हेत[2] ।
दास 'परमानंद' प्रभु हरि, निगम बोलत नेत[3] ।।५।।

माई[4] री कमलनैन स्यामसुंदर झूलत हैं पलना ।
बाल-लीला-गावति सब गोकुल की ललना ।।
अरुन तरुन कमल नख-मनि जस जोती ।
कुंचित[5] कच मकराकृत लटकन गज-मोती ।।
अँगुठा गहि कमलपानि मेलत मुख माहीं ।
अपनो प्रतिबिम्ब देख पुनि-पुनि मुसिकाहीं ।।
जसुमति के पुन्य-पुंज बार-बार लाले[6] ।
'परमानँद'-प्रभु गोपाल सुत-सनेह पाले ।।६।।

ज़सोदा, तेरे भाग्य की कही न जाय ।
जो मूरति ब्रह्मादिक-दुर्लभ, सो प्रगटे हैं आय ।।
सिव नारद सुक-सनकादिक मुनि मिलिबे करत उपाय ।
ते नँदलाल धूरि-धूसर बपु रहत गोद लपटाय ।।
रतन-जटित पौढ़ाय पालने बदन देखि मुसिकाय ।
झूलो लाल, जाउँ बलिहारी 'परमानँद' जसु गाय ।।७।।

हरि, तेरी लीला की सुधि आवै ।
कमल नैन मन-मोहिनि मूरति, मन-मन[7] चित्र बनावै ।।
बारक[8] मिलत जाय माया करि, सो कैसे बिसरावै ।
मुख मुसिकान, बंक अवलोकनि, चाल मनोहर भावै ।।
कबहुँक निबिड़ तिमिर आलिंगन, कबहुँक पिक सुर गावै ।
कबहुँक संभ्रम 'कासि-कासि'[9], कहि संगहीन उठि धावै ।।

[1]कपोल का ऊपरी भाग । [2]प्रेम । [3]वेद जिसके संबंध में 'नेति-नेति, कहते हैं । [4]सखी । [5]घुँघरवाले बाल । [6]प्यार किये । [7]मन चाहे । [8]एक बार । [9]कहां हो ? कहां हो ?

कबहुँक नैन मूँदि अंतरगत[१], मनि-माला पहिरावै ।
'परमानँद' प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे बिरह जगावै ॥८॥

माई री, हौं आनँद गुन गाऊं ।
गोकुल की चिंतामनि[२] माधौ, जो माँगौं सो पाऊं ॥
जबतें कमलनैन ब्रज आये, सकल संपदा बाढ़ी ।
नंदराय के द्वारैं देखौ अष्ट महासिधि ठाढ़ी ॥
फूलैं-फलैं सदा बृंदाबन, कामधेनु दुहि दीजै ।
मारग मेघ इंद्र बरषा में कृष्ण-कृपा-सुख लीजै ॥
कहति जसोदा सखियनि आगे, हरि-उत्कर्ष[३] जनावै ।
'परमानंददास' को ठाकुर मुरलि मनोहर भावै ॥ ९ ॥

गावति गोपी मधु[४] ब्रज-बानी ।
जाके भुवन बसत त्रिभुवन-पति, राजा नंद जसोदा रानी ॥
गावत बेद, भारती गावति, गावत नारदादि मुनि ज्ञानी ।
गावत गुन गंधर्व काल शिव गोकुलनाथ-महातम जानी ॥
गावत चतुरानन, सुर-नायक, गावत शेष सहस-मुखरास ।
मन क्रम बचन प्रीति पद-अम्बुज, गावत 'परमानंददास' ॥१०॥

भली यह खेलिबे की बानि ।
मदनगुपाल लाल काहू की नाहिंन राखत कानि[५] ॥
अपने हाथ लै देत हैं चनवर दूध दही घृत सानि ।
जो बरजौ तौ आँखि दिखावै, पर धन कों दिनदानि[६] ॥
सुनिरी जसोदा, सुत के करतब पहले माँट[७] मथानि ।
फोरि डारि दधि डार अजर[८] में, कौन सहै नित हानि ॥
ठाढ़ी देखति नँदजू की रानी, मूँदि कमल मुख पानि ।

[१]हृदय में, ध्यान में । [२]स्वर्ग की मणि, जो सब कामनाओं को पूर्ण कर देती है । [३]महत्त्व । [४]मधुर । [५]शील । [६]नित्य दान देने वाला, महादानी । [७]दही बिलोने का मिट्टी का बड़ा बरतन । [८]आँगन ।

'परमानंददास' जानत हैं, बोलि बूझि धौं आनि ॥११॥

आये मेरे नँदनंदन के प्यारे[1] ।
माला तिलक मनोहर बानो[2], त्रिभुवन के उजियारे[3] ।
प्रेम समेत बसत मन-मोहन, नेकहुँ टरत न टारे ॥
हृदय-कमल के मध्य बिराजत, श्री ब्रजराज-दुलारे ।
कहा जानौं कौन पुन्य प्रगट भयौ, मेरे घर जो पधारे ॥
'परमानँद' प्रभु करी निछावरि, बार-बार हौं वारे ॥१२॥

---

[1]श्रीकृष्ण के भक्त संतजन । [2]चिह्न । [3]तीन लोक को ज्ञान और भक्ति मे प्रकाशित करने वाले ।

कुंभनदास

छप्पय

श्री गोबर्द्धन-धरन-सुहृद, प्रेमामृत-सागर ।
श्री बल्लभ-पद-मधुप मधुर पद-रचना आगर ॥
लोक और परलोक-रीति तिनका-ज्यौं तोरी ।
सम्राटहुँ दै पीठि, दीठि गोविंद सौं जोरी ॥
श्री गिरिधर 'अष्ट सखान' में, थप्यो नाम है जास ।
मनु मूर्तिवंत रस-कुंभ सो पूरन कुंभनदास ॥

—वियोगी हरि

कुंभनदास जी की कथा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में आई है। 'अष्टछाप' में इनकी भी गणना है। यह महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। बड़े ही त्यागी और भजनानंदी महात्मा थे। भक्त-कवि तो थे ही, गायक भी यह ऊँचे दरजे के थे। इनका कविता-काल संवत् १६०६ के लगभग माना जाता है।

वार्ता में कुंभनदासजी का निवास-स्थान गोवर्द्धन के समीप जमुनावती गाँव लिखा है। पारासोली चंद्रसरोवर के समीप यह खेती किया करते थे। इन्हें 'गोरवा' जाति का लिखा है। यह ग्वाल का काम करते थे। श्रीनाथजी के अनन्य सखाओं में कुंभनदासजी की गणना की गई है। इनकी कविता बड़ी भावमयी और रसभरी है, यद्यपि 'मिश्रबंधु-विनोद' में इन्हें 'साधारण कोटि' का ही कवि माना है। नीचे इनके थोड़े से पद दिये जाते हैं।

कबहुँ देखिहौं इन नैननि ।
सुंदर स्याम मनोहर मूरति, अंग-अंग सुख-दैननि[1] ॥
वृंदावन विहार दिन-दिन प्रति गोप-वृंद सँग लैननि ।
हँसि-हँसि हरषि पतौवनि[2] पावन बाँटि-बाँटि पय-फैननि[3] ॥
'कुंभनदास', किते दिन बीते किये रेनु सुख-सैननि ।
अब गिरिधर बिनु निसि अरु बासर, मन न रहतु क्यों[4] चैननि ॥१॥

हिलगनि[5] कठिन है या मन की ।
जाके लियें देखि मेरी सजनी, लाज गई सब तन की ॥
धरम जाव अरु लोग हँसौ सब, गावो मिलि कुलगारी[6] ।
सो क्यों रहै ताहि बिन देखें, जो जाकौ हितकारी ॥
निमिष न छाँड़त रस-लुब्धक ज्यों, वह अधीन मृग-गानों[7] ।
'कुंभनदास' सनेह परम[8] श्रीगोबर्द्धनधर जानो ॥२॥

आवत मोहन मन जु हर्‌यो है ।
हौं गृह अपने सचु[9] सों बैठी, निरखि बदन सर्बसु बिसर्‌यौ है ॥
रूप-निधान, रसिक नँदनंदन, उमँग्यौ हिय धीरज न धर्‌यौ है ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर, अँग-अँग प्रेम-पियूष भर्‌यौ है ॥

केते दिन जु गये बिनु देखें ।
तरुन किसोर रसिक नँद-नंदन, कछुक उठति मुख रेखें ।
वह सोभा, वह कांति बदन की, कोटिक चंद बिसेखें ।
वह चितवन, वह हास मनोहर, वह नटवर बपु भेखें ॥
स्यामसुंदर-सँग मिलि खेलन की आवति हिये अपेखें[10] ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिनु जीवन जनम अलेखें[11] ॥४॥

[1]सुख देनेवाली को । [2]पत्तों पर । [3]फेन उठता हुआ धारोष्ण दूध । [4]किसी भी तरह । [5]प्रीति, लगन । [6]कुल-कलंक । [7]नाद । [8]परम-प्रेम-स्वरूप । [9]सुख, शांति । [10]स्मृतियां । [11]व्यर्थ ही ।

संतन[१] कौ कहा सीकरी सों काम ।
आवत[२]-जात पन्हैयां टूटीं, बिसरि गयौ हरि-नाम ॥
जाकौ मुख देखैं दुख लागै, ताकों करिबे परी सलाम ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिन और सबै बेकाम ॥५॥

---

[१] संतन...काम = 'वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है, कि एक बार श्रीकुंभनदासजी को अकबर बादशाह ने फ़तेहपुर सीकरी बुलाया। यह गये तो, पर वहां जाना इन्होंने समय का नष्ट करना ही समझा। उसी प्रसंग का यह पद है।

[२] आवत...टूटीं = आना-जाना व्यर्थ हुआ।

रसखानि

छप्पय

दिल्लीनगर-निवास, बादसा-वंस-विभाकर ।
चित्र देखि मन हरो, भरो पन-प्रेम-सुधाकर ॥
श्रीगोवर्द्धन आय जबै दरसन नहिं पाये ।
टेढ़े-मेढ़े वचन रचन निर्भय ह्वै गाये ॥
तब आप आय समुनाय करि, सुश्रूषा महमान की ।
कवि कौन मिताई कहि सकै, श्रीनाथ-साथ रसखान की ॥

—गोस्वामी राधाचरण

वैष्णव-प्रवर रसखानिजी दिल्ली के पठान थे। इन्होंने अपने को बादशाही खानदान का बतलाया है, जैसा कि नीचे के दोहे से प्रकट होता है :

देखि गदर, हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान ।
छिनहिं बादसा-वंस की, ठसक छोड़ि रसखान ॥

—प्रेम-वाटिका

कुछ लोग इन्हें सैय्यद इब्राहीम पिहानीवाले समझते हैं, पर '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में इसकी चर्चा नहीं है। यदि ऐसा होता, तो स्वयं रसखानिजी दिल्ली और पठान के स्थान पर पिहानी और सैय्यद लिख देते। पिहानीवाले सैय्यद इब्राहीम उपनाम 'रसखानि' एक दूसरे ही कवि थे।

यह गोस्वामी विट्ठलनाथजी के कृपापात्र शिष्य थे। इनका जन्म संवत् १६१५ के लगभग माना जाता है। इन्होंने संवत् १६७१ में 'प्रेम-वाटिका' लिखी थी, जैसा कि उसके एक दोहे से प्रकट होता है :

बिधु सागर, रस इंदु सुभ, बरस सरस 'रसखानि'।
'प्रेम-वाटिका' रचि रुचिर, चिर हिय हरषि बखानि॥

इनकी युवावस्था-संबंधी कई आख्यायिकाएँ प्रचलित हैं। '२५२, वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि, यह पहले एक बनिये के लड़के पर आशिक थे। ये उसका जूठा तक खाया करते थे। एक दिन चार वैष्णवों ने आपस में बात करते हुए कहा कि भगवान् में ऐसा प्रेम लगाना चाहिए, जैसा कि रसखानि का उस बनिये के लड़के पर है। यह बात राह जाते रसखानि ने सुन ली। उनके पूछने पर, कि भगवान् का रूप कैसा है, वैष्णवों ने उन्हें श्रीनाथजी का एक चित्र दिखाया। चित्र-पट की छवि देखते ही इनका मन उस लड़के की ओर से हट गया। श्रीनाथजी को खोजते-खोजते आप विह्वल दशा में गोकुल चले आये। इनका उत्कट वैराग्य और सच्ची लगन देख कर गोसाइँ विट्ठलनाथजी ने, विधर्मी और विजातीय का विचार छोड़ कर, इन्हें अपना लिया। कहते हैं, रसखानिजी श्रीनाथजी के प्रेम में ऐसे रँग गये थे, कि भावावेश में आप नित्य गोपाल-लाल के साथ गौएँ चराने जाया करते थे।

एक आख्यायिका यह भी प्रचलित है, कि यह जिस स्त्री पर आसक्त थे, वह बड़ी अभिमानिनी और रूपगर्विता थी। वह सदा इनके प्रेम का अनादर करती थी। एक दिन यह श्रीमद्भागवत का फ़ारसी उल्था पढ़ रहे थे। उसमें गोपियों के विरह का प्रसंग आया। उसे पढ़ कर इनके मन में यह समाया, कि जिस नंद के फ़रजंद पर हज़ारों हसीन गोपियाँ जान दे रही हैं, उसी लाल से इश्क़ क्यों न जोड़ना चाहिए? बस, इसी भक्ति-भावना में मस्त होकर उस स्त्री को छोड़ दिया और वृंदावन चले आये। इस प्रसंग पर आप लिखते हैं:

तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेमदेव की छबिहिं लखि, भये मियाँ रसखानि॥

—प्रेम-वाटिका

जो हो, इसमें संदेह नहीं, कि यह प्रेम का पूरा-पूरा लुत्फ़ उठा चुके

थे। इश्क़मजाज़ी को इश्क़ हक़ीक़ी की तरफ़ मोड़ दिया; संसारी प्रेम को दिव्य-प्रेम में परिणत कर दिया और यह सच्चे रसखानि हो गये।

इन्होंने, मुसलमान होकर भी, ब्रजभाषा में बड़ी ही उत्तम कविता रची। इनकी कविता में शब्दाडंबर शायद ही कहीं हो। उसमें प्रसाद और भाव-गांभीर्य फूट-फूट कर भरा हुआ है। इनकी दो पुस्तकें स्वर्गीय पंडित किशोरीलालजी गोस्वामी ने प्रकाशित की थीं, एक 'सुजान-रसखान' और दूसरी 'प्रेम-वाटिका'। सुजान-रसखान में १४६ पद्य हैं, जिन में, कुछ दोहे-सोरठे छोड़ कर, शेष सवैया और घनाक्षरी हैं। श्री लाला भक्तराम द्वारा संग्रहीत 'राग-रत्नाकर' में भी इनके लगभग १३० सवैया और कवित्त हैं। हमें 'सुजान-रसखान' और 'राग-रत्नाकर' का ही पाठ अधिक शुद्ध जान पड़ता है। 'प्रेम-वाटिका' में प्रेम-परिपूरित ५२ दोहे हैं। प्रेम और भक्ति का जैसा सजीव और सुंदर चित्र रसखानिजी ने खींचा है, कदाचित् ही वैसा किसी अन्य कवि ने खींचा हो। इनके कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं :

सुजान-रसखान

सवैया

मानुप हौं, तौ वही रसखानि, बसौं ब्रज-गोकुल-गाँव के ग्वारन[१]।
जो पसु हौं, तौ कहा बसु मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन[२]॥
पाहन हौं, तौ वही गिरि कौ, जो धर्‌यौ कर छत्र पुरंदर[३]-धारन।
जो खग हौं, तौ बसेरो करौं, मिलि कालिंदीकूल-कदंब की डारन॥१॥
या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर कौ तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवों निधि का सुख, नंद की गाइ चराइ बिसारौं॥
इन आँखिन सों 'रसखानि' कबौं, ब्रज के बन-बाग-तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम, करील[४] की कुंजन ऊपर वारौं॥२॥

[१]ग्वालों के बीच। [२]बीच में। [३]इंद्र। [४]काँटेदार एक वृक्ष। ब्रज-प्रांत में यह पेड़ बहुत अधिकता से होता है।

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितंबर, लै लकुटी बन, गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी॥
भावतो वोहि मेरो रसखानि, सो तेरे कहे सब स्वाँग भरौंगी।
या मुरली मुरलीधर की, अधरान-धरी अधरा न धरौंगी*॥३॥

गावैं गुनी गनिका गंधर्व, औ सारद सेस सबै गुन गावैं।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यों, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावैं॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरंतर जाहि समाधि लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरियां, छछिया[1] भरि छाछ[2] पै नाच नचावैं॥४॥

सेस महस गनेस दिनेस, सुरेसहु जाहिं निरंतर गावैं।
जाहिं अनादि अनंत अखंड, अछेद[3] अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद-से सुक ब्यास रटैं, पचि हारे तऊ[4] पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियां, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥५॥

धूरि-भरे अति सोभित स्यामजू, तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत-खात फिरैं अँगना, पग पैजनीं बाजतीं, पीरी कछोटी[5]॥
वा छबि को 'रसखानि' बिलोकत, वारत काम-कलानिधि[6] कोटी[7]।
काग के भाग कहा कहिए, हरि-हाथ सों लै गयो माखन-रोटी॥६॥

आयो हुतो नियरे[8] 'रसखानि', कहा कहूं तूं न गई वह ठैया[9]।
या ब्रज में सगरी बनिता, सब वारति प्राननि, लेति बलैया॥
कोऊ न काहू की कानि करै, कछु चेटक[10] सो जू कर्‍यौ जदुरैया।
गाइगो तान, जमाइगो[11] नेह, रिझाइगो प्रान चराइगो गैया॥७॥

[1]छोटा-सा बरतन। [2]मट्ठा। [3]जिसका छेदन न हो सके। [4]तो भी। [5]काछनी। [6]चौसठ कलाओं में प्रवीण; चंद्रमा। [7]करोड़। [8]पास। [9]स्थान। [10]जादू-टोना। [11]बीज बो गया।

*तात्पर्य यह कि मैं श्रीकृष्ण का रूप तो धारण कर लूंगी, पर उनकी जूठी मुरली अपने ओठों को न छुवाऊँगी। यह क्यों? क्योंकि वह मेरी सौत है। वह कृष्ण का अधरामृत पहले ही ले चुकी है। भला, उससे मेरी कैसे बनेगी!

सोहत है चँदवा[1] सिर मोर के, जैसियै सुंदर पाग कसी है ।
तैसियै गोरज भाल बिराजति, जैसी हियें बनमाल लसी है ।।
'रसखानि' बिलोकत बौरी[2] भई, दृग मूँदिकै ग्वारि[3] पुकारि हँसी है ।
खोलि री घूँघट, खोलौं कहा, वह मूरति नैननि माँझ बसी है ।।८।।
ब्रह्म मैं ढूँढ़्यौ पुरानन गानन, बेद-रिचा[4] सुनि चौगुने चायन[5] ।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितू[6], वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ।।
टेरत-हेरत हारि पर्‍यौ 'रसखानि', बतायो न लोग-लुगायन ।
देखो, दुर्‍यौ वह कुंज-कुटीर में, बैठ्यौ पलोटतु[7] राधिका-पायन ।।९।।
कानन दै अँगुरी रहिबो, जबहीं मुरली-धुनि मंद बजैहै ।
मोहिनी तानन सों 'रसखानि', अटा चढ़ि गोधन[8] गैहै तौ गैहै[9] ।।
टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि, काल्हि कोऊ कितनो समुझैहै ।
माई री, वा मुख की मुसुकानि[10], सँभारी न जैहै न जैहै न जैहै ।।१०।।
द्रौपदि औ गनिका गज गीध, अजामिल सों कियो सो न निहारो ।
गौतम-गेहिनी[11] कैसे तरी, प्रहलाद को कैसे हर्‍यौ दुख भारो ।।
काहे को सोच करै 'रसखानि', कहा करिहै रबिनंद[12] बिचारो ।
कौन की संक[13] परी है जु माखन-चाखनहारो है राखनहारो ।।११।।
यह देखि धतूरे के पात चबात, औ गात सों धूरि लगावतु है ।
चहुँ ओर जटा अटकैं लटकैं, सुभ सीस फनी फहरावतु है ।।
'रसखानि' जोइ[14] चितवै चित दै, तिनके दुख-दुंद भजावतु है ।

[1]मोर के चंद्राकार पंख । [2]पागल, गूँगी । [3]ग्वालिनी । [4]ऋचा, मंत्र । [5]चाव से । [6]कहीं भी । [7]सहराता है । [8]गाएँ ही जिसका धन है, श्रीकृष्ण । [9]गायेगा । [10]मुसुकानि...जैहै = मुसकान देख कर मन हाथ न रहेगा । [11]अहिल्या । [12]सूर्य-पुत्र यम । [13]शंका, भय । इसी आशय का रहीम का एक दोहा है :

"कहु 'रहीम' को करि सकै, जारी चोर लबार ।
जो पति-राखनहार है, माखन - चाखनहार ।।"

[14]जिसको भी ।

गजखाल, कपाल[1] की माल बिसाल, सो गाल बजावतु[2] आवतु है ॥१२॥
बैद की औषधि खाइ कछू, न करै कछु संजम[3] री, सुनि मोसें ।
तो जलपानि कियो 'रसखानि', सजीवनि जानि लियो सुख तोसें ॥
एरी सुधामयी भागीरथी ! सब[4] पथ्य-कुपथ्य बनै तोहि पोसें ।
आक धतूर चबात फिरै, बिष खात फिरै सिव तेरे भरोसें ॥१३॥
बैन वही, उनकौ[5] गुन गाइ, औ कान वही, उन बैन सों सानी ।
हाथ वही, उन गात सरै[6], अरु पाइ वही, जु वही अनुजानी[7] ॥
जान वही, उन प्रान के संग, औ. मान वही, जु करै मन-मानी ।
त्यो 'रसखानि'[8] वही रसखानि, जु है रसखानि सों है रसखानी[9] ॥१४॥

कवित्त

दूध दुह्यौ, सीरो[10] पर्यो तातो न जमायौ बीर,
जामन दयो सो धर्यो धर्योई खटायगो ।
आन हाथ आन पाइ[11] सबही के तबही तें,
जबही तें 'रसखानि', तानिन सुनायगो ॥
ज्यौंही नर त्यौंही नारी तैसीयै तरुनि बारी[12],
कहिए कहा री, सब ब्रज बिललाइगो[13] ।
जानिए न आली, यह छोहरा जसोमति कौ,
बाँसुरी बजायगो, कि बिष बगरायगो[14] ॥१५॥
ग्वालन के संग जैबो, ऐबो औ चरैबो गाय,
हेरि तान गैबो[15] सोचि नैन फरकत हैं ।

[1]नर-मुंड । [2]शिवजी के आगे गाल बजाना उन्हें प्रसन्न करने का सूचक है । [3]संयम, पथ्य । [4]सब पथ्य...पोसें—तेरा सेवन करने से कुपथ्य भी पथ्य हो जाता है । [5]श्रीकृष्ण का । [6]काम में आवें । [7]उनके पीछे-पीछे जावें । [8]कवि का नाम । [9]आनंद-राशि । [10]ठंडा । [11]अपने हाथ-पाँव अपने वश के नहीं रहे । [12]बच्ची । [13]बावला-सा हो गया । [14]फैला गया । [15]गाना ।

ह्याँ[1] की गज-मोती-माल वारौं गुंज-मालन पै,
कुंज सुधि आये हाय प्रान धरकत हैं ॥
गोबर को गारो[2] सुतौ[3] मोहि लगै प्यारो, नहिं—
भावैं ये महल जे जटित मरकत[4] हैं ।
मंदर[5] तें ऊँचे कहा मंदिर[6] हैं द्वारका के,
ब्रज के खरक[7] मेरे हिये खरकत[8] हैं ॥१६॥

कहा रसखानि सुख-संपति सुमार[9] महँ,
कहा महाजोगी ह्वै लगाये अंग छार[10] को ।
कहा साधे पचानल,[11] कहा सोये बीच जल,
कहा जीत लाये राजसिंधु वारपार को ॥
जप बारबार तप संजम बयार-ब्रत[12],
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को ।
सोई है गँवार जिहि कीन्हो नहिं प्यार, नहीं,
सेयो दरबार यार नंद के कुमार को ॥१७॥

कंचन के मंदिरन दीठि ठहरात नाहिं,
सदा दीपमाल लाल-मानिक-उजारे[13] सों ।
और प्रभुताई अब कहालौं बखानौं,
प्रतिहारिन[14] की भीर भूप टरत न द्वारे सों ॥
गंगा में नहाइ मुक्ताहल हू लुटाइ, बेद,
बीस बार गाइ, ध्यान कीजत सकारे सों ।
ऐसे ही भये तौ कहा कीन्हो 'रसखानि' जोपै,
चित्त दै न कीनी प्रीति पीतपटवारे सों ॥१८॥

[1]यहां अर्थात द्वारका। [2]घर। [3]वह तो। [4]नीलम मणि, यहां सभी रत्नों से आशय है। [5]पर्वत। [6]महल। [7]बाड़ा, जहां गौएं रहती हैं। [8]खटकते हैं; याद दिलाकर जी दुखाते हैं। [9]शुमार, गिनती। [10]भस्म। [11]पंचाग्नि के बीच में बैठ कर तप करने से। [12]पवन अहार, प्राणायाम। [13]उजाले से। [14]द्वारपाल।

गोरज बिराजै भाल लहलही[1] बनमाल,
आगे गैयाँ पाछे ग्वाल गावैं मृदुतान, री ।
तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर-मधुर तैसी,
बंक चितवनि मंद-मंद मुसुकान, री ॥
कदम बिटप के निकट, तटिनी[2] के तट,
अटा चढ़ि देखु पीतपट-फहरान, री ।
रस बरसावै, तन तपन बुझावै, नैन
प्राननि रिझावै वह आवै रसखान[3], री ॥१९॥
आपनो-सो ढोटा हम सबही को जानति हैं,
दोऊ प्रानी[4] सबही के काज नित धावहीं ।
ते तौ 'रसखानि' अब दूर ते तमासो देखैं,
तरनि-तनूजा के निकट नहिं आवहीं ॥
आन दिन बात अनहितुन सों कहौं कहा,
हितू जे-जे आये तेऊ लोचन-दुरावहीं[5] ।
कहा कहौं आली, खाली देत सब ठाली[6] हाय !
मेरे बनमाली को न काली[7] तें छुड़ावहीं ॥२०॥*

प्रेम-वाटिका

दोहा

या छबि पै 'रसखानि' अब, वारौं कोटि मनोज ।
जाकी उपमा कबिनु नहिं, पाई रहे सु खोज ॥१॥
प्रेम-अयनि श्रीराधिका, प्रेमबरन नँद-नंद ।
प्रेम-बाटिका के दोऊ, माली-मालिन द्वंद ॥२॥

[1]हरी-भरी, नवीन । [2](यमुना) नदी । [3]आनंदराशि श्रीकृष्ण । [4]नंद और यशोदा । [5]आँख छिपाते है; जी चुराते हैं । [6]धीरज । [7]कालिया नाग, जो यमुना में रहता था और जिसे श्रीकृष्ण ने नाथ लिया था ।

*वात्सल्यरस का क्या ही उत्तम उदाहरण है !

'प्रेम प्रेम' सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय ।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय । ३।।
प्रेम अगम, अनुपम, अमित, सागर-सरिस बखान ।
जो[1] आवत इहि ढिग बहुरि, जात नहीं 'रसखान' ।।४।।
प्रेम-बारुनी छानिकै, बरुन भये जलधीस ।
प्रेमहि तें बिष पान करि, पूजे जात गिरीस ।।५।।
प्रेमरूप-दरपन, अहो ! रचै अजूबो खेल ।
यामें अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमेल[2] ।।६।।
कमल तंतु-सो छीन, अरु, कठिन खड़ग की धार ।
अति सूधो, टेढ़ो बहुरि, प्रेम-पंथ अनिवार ।।७।।
लोक बेद-मरजाद सब, लाज, काज, संदेह ।
देत बहाये प्रेम करि, बिधि-निषेध कौ नेह ।।८।।
सास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मोलवी कुरान ।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो रसखान ।।९।।
काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य ।
इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ।।१०।।
बिनु गुन, जोबन, रूप, धन, बिनु स्वारथ हित[3] जानि ।
सुद्ध, कामना तें रहित, प्रेम सकल[4] 'रसखानि' ।।११।।
अति सूछम, कोमल अतिहि, अति पतरो, अति दूर ।
प्रेम कठिन सब तें सदा, नित इकरस[5] भरपूर ।।१२।।
जग में सब जान्यो परै, अरु सब कहै कहाय ।

[1] जो...रसखान—प्रेम-सिंधु के पास जाकर फिर कोई संसार-सागर में नहीं लौटता । गीता में लिखा है : "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।" [2] प्रेम-राज्य में आते ही अविद्यात्मक रूप का नाश हो जायगा और अपना दिव्य-स्वरूप दिखने लगेगा । [3] प्रेम । [4] सब प्रकार के सुखों का स्थान । [5] निरंतर एक अवस्था में; त्रिकालाबाधित ।

पै जगदीसऽरु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय ॥१३॥
जेहि बिनु जानै कछुहि नहि, जान्यो जात बिसेस ।
सोइ प्रेम जेहि जानिकैं, रहि[1] न जात कछु सेस ॥१४॥
दंपति-सुख, अरु विषय-रस, पूजा, निष्ठा, ध्यान ।
इन तें परे बखानिए, सुद्ध-प्रेम 'रसखान' ॥१५॥
मित्र, कलत्र[2], सुबंधु, सुत, इनमें सहज सनेह ।
सुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ कथा सबिसेह[3] ॥१६॥
इकअंगी[4], बिनु कारनहिं, इकरस, सदा समान ।
गनै प्रियहिं सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥१७॥
डरै[5] सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय ।
रहै एक रस चाहि कैं, प्रेम बखानौ सोय ॥१८॥
'प्रेम-प्रेम' सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस ॥
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस ॥१९॥
प्रेम हरी कौ रूप है, त्यों हरि प्रेम-स्वरूप ।
एक होइ द्वै में लसै, ज्यौं सूरज अरु धूप ॥२०॥
प्रेम-फाँस में फँसि मरै, सोई जिये सदाहिं ।
प्रेम-मरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहिं ॥२१॥*

[1]रहि···सेस=सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है। [2]स्त्री। [3]विशेष, सर्वोच्च। [4]जहां एक ओर से ही प्रेम हो। दोनों ओर का एक-सा सकाम प्रेम, प्रेम नहीं व्यापार है। [5]सदा इस बात से डरता रहे, कि कहीं मेरी सेवा में कोई त्रुटि न आ जाय, जिससे मेरा प्यारा रुष्ट हो जाय।

*इस दोहे में जन्म और मरण दोनों एक ही वस्तु के दो नाम बतलाये गये हैं। कबीरदासजी के शब्दों में 'मरजीवा' की यही स्थिति है। महाकवि ग़ालिब भी अपना स्वर मिला रहे हैं :

"मुहब्बत में नहीं है फ़र्क़ जीने और मरने का;
उसी को देख कर जीते हैं, जिस बुत पै ये दम निकलै।"

जग में सब तें अधिक अति, ममता तनहिं लखाय ।
पै या तन हूँ तें अधिक, प्यारो प्रेम कहाय ॥२२॥
जेहि पाये बैकुंठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि ।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥२३॥
कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार ।
नेजा, भाला, तीर कोउ, कहत अनोखी ढार[1] ॥२४॥
पै एतोहूँ हम सुन्यौ, प्रेम अजूबो खेल ।
जाँबाजी[2] बाजी जहां, दिल का दिल से मेल ॥२५॥
सिर काटो, छेदो हियो, टूक-टूक करि देहु ।
पै याके बदले बिहँसि, बाह-बाह ही लेहु ॥२६॥
याही तें सब मुक्ति तें, लही बड़ाई प्रेम ।
प्रेम भये नसि जाहिं सब, बँधे जगत के नेम ॥२७॥
हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम-आधीन ।
याही तें हरि आपुहीं, याहिं बड़प्पन दीन ॥२८॥
बेदमूल सब धर्म यह, कहैं सबै स्रुति-सार ।
परम धर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार[3] ॥२९॥
जदपि जसोदा-नंद अरु, ग्वालबाल सब धन्य ।
पै या जग में प्रेम की, गोपी भई अनन्य ॥६०॥
वा रस की कछु माधुरी, ऊधौ लही सराहि ।
पावै बहुरि मिठास अस, अब दूजो को आहि ॥३१॥
स्रवन, कीरतन, दरसनहिं, जो[4] उपजत सोइ प्रेम ।
सुद्धासुद्ध-बिभेद तें, द्वै बिध ताके नेम ॥३२॥

[1]ढाल । [2]प्राणों की बाजी, आत्म-समर्पण । [3]अनिवार्य; परमावश्यक । [4]आनंद से तात्पर्य है।

*इस दोहे में मुक्ति से प्रेम का दर्जा ऊँचा बतलाया गया है । गोसाईं तुलसी-दास भी कहते हैं : 'सगुन-उपासक मोच्छ न लेहीं ।'

स्वारथमूल[१] असुद्ध त्यौं, सुद्ध स्वभावऽनुकूल[२] ।
नारदादि प्रस्तार[३], करि, कियो जाहि कौ तूल ॥३३॥
रसमय[४], स्वाभाविक, बिना, स्वारथ, अचल, महान ।
सदा एकरस, सुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान ॥३४॥
जातें उपजतु प्रेम सोइ, बीज कहावतु प्रेम ।
जामें उपजतु प्रेम सोइ, छेत्र कहावतु प्रेम ॥३५॥
जातें पनपत[५], बढ़त अरु, फूलत, फलत महान ।
सो सब प्रेमहिं प्रेम यह, कहत रसिक रसखान ॥३६॥
जो, जातें, जामें, बहुरि, जा हित कहियत बेस ।
सो सब प्रेमहिं प्रेम है, जग 'रसखानि' असेस[६] ॥३७॥
देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान ।
छिनहिं बादसा-बंस की, ठसक छोड़ि 'रसखान' ॥३८॥*
प्रेम-निकेतन श्रीबनहिं, आइ गोबर्धन धाम ।
लह्यो सरन चित चाहिकैं, जुगुलसरूप ललाम ॥३९॥*
अरपी श्री हरि-चरन-जुग, पदुम-पराग निहार ।
बिचरहिं यामें रसिकवर, मधुकर-निकर अपार ॥४०॥

---

[१]सकाम। [२]निःस्वार्थ; निष्काम। [३]विस्तार। [४]आनंदमय। [५]हरा-भरा होता है। [६]अशेष, संपूर्ण।

* इन दोनों दोहों में कवि ने अपना सूक्ष्म परिचय दिया है। इन्होंने सारी प्रभुता को विप्लववत् तथा राजधानी दिल्ली को श्मशान-समान छोड़कर बादशाही खानदान का अभिमान क्षण में दूर कर दिया। वहां से यह शीघ्र वृंदावन चले आये। यहां गोवर्द्धन धाम में श्रीराधाकृष्ण के शरणापन्न हो गये। यह ऐसे ऊँचे और भक्त-वैष्णव हुए, कि इनकी गणना गोसाईं गोकुलनाथजी को अपनी '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में करनी पड़ी। ऐसे महाभाग मुसलमानों के संबंध में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने क्या ही अच्छा कहा है :

"इन मुसलमान हरि-जनन पै, कोटिन हिंदू वारिए।"

ध्रुवदास

छप्पय

राधाकृष्ण - निकुंज - केलि - सुखपुंज-विलासी ।
प्रेम-रसासव-मत्त मधुप, सहृदय गुनरासी ।।
रचि अनेक पद छंद भजन-पद्धति बिस्तारी ।
लीला-अनुभव भक्तनाममाला उरधारी ।।
हित-मंत्र स्वप्न में मानिकैं, व्रत अनन्य कीन्हों अटल ।
श्रीहितहरिबंस-प्रताप की हित ध्रुवदास धुजा धवल ।।

—वियोगी हरि

भक्तवर ध्रुवदासजी के संबंध में, ऐतिहासिक दृष्टि से, विशेष वृत्तांत नहीं मिलता। यह गोस्वामी हितहरिवंशजी के स्वप्न द्वारा शिष्य हुए थे। इनकी गुरु-भक्ति अनुकरणीय है। 'भक्तनामावली' में श्रीहितजी के विषय में इन्होंने किस श्रद्धा और भक्ति से लिखा है :

हित हरिबंसहि कहत 'ध्रुव', बाढ़ै आनँद-बेलि ।
प्रेम-रँगी उर जगमगै जुगुल नवलवर-केलि ।।
निगम ब्रह्म परसत नहीं, सो रस सब तें दूरि ।
कियो प्रगट हरिबंसजू, रसिकनि-जीवनमूरि ।।

इन्होंने 'वृंदावन-सत' को संवत् १६८६ में लिखा था, जैसा कि अंतिम दोहे से प्रकट होता है :

'ध्रुव' सोरहसौ छ्यासिया, पून्यौ अगहन मास ।
यह प्रबंध पूरन भयो, सुनत होय अघ-नास ।।

'सभा-मंडली' संवत् १६८१ तथा 'रहस्य-मंजरी' संवत् १६९८ में लिखी। इस रचना-काल से अनुमान किया जा सकता है कि इनका

जन्म १६५० के लगभग हुआ होगा। इन्होंने अपनी 'भक्तनामावली' में १७३५ तक के भक्तों का वर्णन किया है। इससे इनका गोलोक-वास संवत् १७४० के लगभग माना जा सकता है।

ध्रुवदासजी वृंदावन में ही अधिक काल तक रहे और वहीं आपने अनेक ग्रंथ रचे। वृंदावन पर इनका बड़ा प्रेम था। इन्होंने माधुर्य रस का बड़ा ही सरस और सुंदर वर्णन किया है। इनकी लिखी 'भक्तनामावली' स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजी ने काशी-नागरी-प्रचारिणी-ग्रंथमाला से प्रकाशित कराई थी। बाद को भारत-जीवन प्रेस के संचालक बाबू रामकृष्ण वर्मा ने इनके कई छोटे-छोटे ग्रंथ 'ध्रुव-सर्वस्व' के नाम से प्रकाशित किये। सब मिलाकर अब तक इनके निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं:

१. वृंदावन-सत; २. सिंगार-सत; ३. रस-रत्नावली; ४. नेह-मंजरी; ५. रहस्य-मंजरी; ६. सुख-मंजरी; ७. रति-मंजरी; ८. बन-विहार; ९. रंग-विहार; १०. रस-विहार; ११. आनंद-दसा-विनोद; १२. रंग-विनोद; १३. नृत्य-विलास; १४. रंग-हुलास; १५. मानरस-लीला; १६. रहसि-लता; १७. प्रेम-लता; १८. प्रेमावली; १९. भजन-कुंडलिया; २०. भक्तनामावली; २१. मन-सिंगार; २२. भजन-सत; २३. मन-शिक्षा; २४. प्रीति-चौवनी; २५. रस-मुक्तावली; २६. बावन वृहद्पुराण की भाषा; २७. सभा-मंडली; २८. रसानंद-लीला; २९. ख्याल-हुलास-लीला ३०. सिद्धांत-विचार; ३१. रस-हीरावली; ३२. हित-सिंगार-लीला; ३३. ब्रजलीला; ३४. आनंद-लता; ३५. अनुरागलता; ३६. जीव-दशा; ३७. वैद्य-लीला; ३८. दान-लीला; ३९. ब्याहलो; ४०. ब्यालिस बानी।

इनमें २३, २९ और ४० संख्या वाले ग्रंथ इन ध्रुवदासजी कृत प्रतीत नहीं होते।

कोई-कोई रचना तो बड़ी ही उत्तम है। प्रेम-तत्व का इन्होंने कहीं-कहीं आदर्श वर्णन किया है। इनकी सरस रचनाओं के थोड़े-से उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:

शृंगार-सत

दोहा

हरिवंस-चरन 'ध्रुव' चिंतवन, होत जु हिय हुल्लास।
जो रस दुरलभ सबनि कों, सो पैयतु अनयास॥१॥

कवित्त

हँसनि में फूलनि की, चाहनि में अमृत की,
नखसिख रूप ही की बरषा-सी होति है।
केसनि की चंद्रिका, सुहाग-अनुराग-घटा,
दामिनी की लसनि, दसन ही की द्योति है॥
'हित ध्रुव', पानिप[1] तरंग रस छलकत,
ताकौ मनों सहज सिंगार सींव[2]-पोति[3] है।
अति अलबेली प्रिया भूषिताभरन बिन,
छिन-छिन[4] औरै-और बदन की जोति है॥२॥
छवि ठाढ़ी कर जोरे, गुन-कला चौरें ढोरे,
दुति सेवै तन गोरे, रति बलि जाति है।
उजराई कुंज ऐन, सुथराई[5] रची मैन,
चतुराई चितै नैन अति ही लजाति है॥
राग सुनि रागिनी हूं, होत अनुराग-बस,
मृदुताई[6] अंगनि छुवति सकुचाति है।
'हित ध्रुव', सुकुमारी, पुतरीन हूं तें प्यारी,
जीवति देखें बिहारी सुख सरसाति है॥३॥

[1]समुद्र। [2]सीमा। [3]नौका। [4]छिन...जाति है—देखते-देखते ही मुख की आभा बढ़ती जाती है। इसी भाव पर कविवर बिहारी का भी एक दोहा लिखा है: "लिखनि बैठि जाकी सबी, गहि-गहि गरब गरूर। भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥" [5]शय्या। [6]मृदुताई...सकुचाति है—स्वयं कोमलता कोमल शरीर को छूकर लज्जित हो जाती है।

कवित्त

आजु की छबीली छबि-छटा चित बेधि रही,
कही नहिं जाति कछू कौन गति भई है ।
नवल जुगुल हँसि चितवति ठाढ़ी पासि,
मानों तिहि उर नई नेह-बेलि बई[1] है ।।
'हित ध्रुव', नीरज-से नीर-भरे ढरे[2] नैन,
बोलति न कछु बैन चित्र-सी ह्वै गई है ।
नैन छाइ लीने रूप परी तब प्रेम-कूप,
बाकी गति जानै सोई जिहि अनभई[3] है ।।४।।*

कवित्त

सहज सुभाउ पर्‍यौ नवल किसोरी जू कौ,
मृदुता[4] दयालुता कृपालुता की रासि हैं ।
नेकहूं न रिस के हूं भूलेहूं न होत सखी,
रहत प्रसन्न सदा हियें मुख हासि[5] हैं ।।
ऐसी सुकुमारी, प्यारे लालजू की प्रानप्यारी,
धन्य-धन्य धनि तेई, जिनके उपासि[6] हैं ।
'हित ध्रुव' और सब जहँलगि देखियतु,
सुनियतु तहँलगि सबै दुख-पासि[7] हैं ।।५।।

सवैया

ऐसी करी नवलालरँगीले जू चित्त न और कहूँ ललचाई ।
जे सुख-दुःख रहें लगि देह[8] सो ते मिटि जाहिंऽरु[9] लोक-बड़ाई ।।
संगति साधु, बृंदाबन कानन तो गुन गाननि माँझ बिहाई ।
कंज-पगों में तिहारे बसौं बस देहु यहै 'ध्रुव' कौं ध्रुवताई[10] ।।६।।

[1]बोई है । [2]नम्र । [3]अनुभव । [4]आर्द्रता; करुणाभाव । [5]मुसक्यान । [6]उपास्य; इष्ट । [7]बंधन । [8]शरीर से संबंध रखनेवाले आधिभौतिक दुःख । [9]और । [10]दृढ़ता । *लगन का इसमें कैसा सजीव चित्र खींचा गया है ।

नेह-मंजरी

चौपाई

महाप्रेम गति सब तें न्यारी। पिय जानै, कै प्रान-पियारी ।।
उरझे मन सुरझत नहिं केहू[1]। जिहि अँग ढरत होत सुख तेहू ।।
एकै रुचि दुहुं में सखि बाढ़ी। पर गई प्रेम-ग्रंथि अति गाढ़ी ।।
देखत-देखत कल नहिं माई। तिनकौ प्रेम कह्यो नहिं जाई ।।
सहज सुभाइ अनमनी देखैं। नमिषनि कोटि कलप-सम लेखैं ।।
हँस चितवति जब प्रीतम माहीं। सोई कलप निमिष ह्वै जाहीं ।।
खेलनि-हँसनि लाल को भावै। नेह की देवी नितहि मनावै ।।
कौतुक प्रेम छिनहि-छिन होई। यह रस बिरलो समुझै कोई ।।
ज्यों-ज्यों रूपहिं देखत माई। प्रेम-तृषा की ताप[2] न जाई ।।१।।

दोहा

प्रेम-तृषा की ताप 'ध्रुव', कैसेहुँ कही न जात ।
रूप-नीर छिरकत रहैं, तऊ न नैन अघात ।।२।।

चौपाई

कौन प्रेम तिहि ठां को कहिए। दुहूं कोद[3] चितवत सखि रहिए ।।
नित्य सुप्रेम एकरस-धारा[4]। अति अगाध तिहि नाहिंन पारा ।।
महा मधुररस प्रेम कौ प्रेमा। पीवत ताहिं भूल गये नेमा ।।
तैसी सखी रहैं दिन-राती। 'हित ध्रुव' जुगुल-नेह-मदमाती ।।३।।

दोहा

रसनिधि रसिककिसोर बिबि, सहचरि परम प्रबीन ।
महाप्रेम-रस-मोद में, रहति निरंतर लीन ।।४।।

चौपाई

प्रेम-कथा कछु कही न जाई। उलटी चाल तहां सब माई ।।
प्रेम बात सुनि बौरा होई। तहां सयान रहै नहिं कोई ।।

[1] किसी तरह। [2] अतृप्ति। [3] (बुंदेलखंडी) तरफ़। [4] निरंतर एक-सा।

तन मन प्रान तिहीं छिन हारै । भली-बुरी कछुवै न बिचारै ॥
ऐसो प्रेम उपजिहै जबहीं । 'हित ध्रुव' बात बनैगी तबहीं ॥
ताको जतन न दीखै कोई । कुँवरि[1] कृपा तें कहा न होई ॥
बृंदावन-रस सब तें न्यारो । प्रीतम जहां अपनपौ हारो ॥
श्री हरिबंस-चरन उर धरई । तब या रस में मन अनुसरई ॥
सो मति कौन कहै या बानी । तिन चरनन-बल कछुक बखानी ॥
जुगुल-प्रेम मनहीं में राखौ । अनमिल[2] सों कबहूँ जिन भाखौ ॥५॥

दोहा

कहि न सकत रसना कछुक, प्रेम-स्वाद-आनंद ।
को जानै 'ध्रुव' प्रेम-रस, बिन बृंदाबन-चंद ॥६॥
नारदादि सनकादि ध्रुव, उद्धव अरु ब्रह्मादि ।
गोपिन कौ सुख देखि किय[3], भजन आपुनो बादि ॥७॥

चौपाई

तिन गोपिन के दुरलभ माई । नित्य बिहार सहज सुखदाई ॥
सिव श्रीपति जद्यपि ललचाहीं । मन-प्रबेस तिनहूँ कौ नाहीं ॥
ऐसे रसिक किसोर बिहारी । उज्वल[4] प्रेम बिहार-अहारी[5] ॥८॥

रहस्य-मंजरी

दोहा

अटपट रँग कौ बिरह सुनि, भूलि रहे सब कोइ ।
जल[6] पीवत हैं प्यास कौ, प्यास भयो जल सोइ ॥१॥

[1]श्रीराधा । [2]जिसका मन अपने से न मिले; अनधिकारी। [3]किय ... बादि—अपने-अपने सिद्धांत रद कर दिये। [4]निर्विकार, दिव्य। [5]भोक्ता। [6]जल ... सोइ—जिस जल से प्यास बुझाई जाती है, वह जल ही प्यास रूप हो गया है । कवि-वर बिहारी ने लिखा है : "वहई रोग-निदान, वही बैद, औषध वहै ।"

'हित ध्रुव' दुरलभ सबनि[१] तें, नित्यबिहार-सरूप ।
ललितादिक निज सहचरी, सो सुख लहति अनूप ॥२॥

रति-मंजरी

दोहा

प्रेम-रसासव[२] छकि दोऊ, करत बिलास-बिनोद ।
चढ़त रहत, उतरत नहीं, गौर स्याम-छबि-मोद ॥१॥

चौपाई

मेंड़[३] तोरि रस चल्यौ अपारा । रही न तन-मन कछु संभारा[४] ॥
सो रस कहौ कहां ठहरानो । सखियन के उर-नैन समानो ॥
तिहि अवलंबि[५] सब सहचरी । मत्त रहति ठाढ़ी रँग-भरी ॥
या रस की जाकों रुचि रहै । भाग पाइ सो कछुइक लहै ॥
सखियन सरन भाव धरि आवै । सो या रस के स्वादहिं पावै ॥
छाँड़ि कपट भ्रम, दिन दुलरावै[६] । ताकौ भाग कहत नहिं आवै ॥
रतिमंजरि रँग लागै जाके । प्रेम-कमल फूलै हिय ताके ॥
यह रस जाके उर न सुहाई । ताकौ संग बेगि तजि भाई ॥२॥

दोहा

या रस सों लाग्यो रहै, निसिदिन जाकौ चित्त ।
ताकी पद-रज सीस धरि, बंदत रहु 'ध्रुव' नित्त ॥३॥

प्रेम-लता

दोहा

जिन नहिं समझ्यौ प्रेम यह, तिनसों कौन अलाप[७] ?
दादुर हूं जल में रहैं, जानै मीन-मिलाप[८] ॥१॥

[१]ज्ञान, कर्म योगादि सब साधनों से। [२]आनंद रूपी मद्य। [३]मर्यादा। [४]संभाल; सुध-बुध। [५]दृढ़ता से पकड़ कर। [६]भक्ति से प्यार करे। [७]वार्ता। [८]जल का प्रेम।

भक्तन सों अभिमान, प्रभुता भये न कीजिए ।
मन बच निह्चै[1] जान, इहि सम नहिं अपराध कछु ॥१०॥

दोहा

सकल बयस सतकर्म में, जो पै बितई होइ ।
भक्तन को अपराध इक, डारत सब कों खोइ ॥११॥
और सकल अघ-मुचन[2] कों, नाम उपायहि नीक ।
भक्त-द्रोह कौ जतन नहिं, होत बज्र की लीक[3] ॥१२॥
निंदा भक्तनि की करै, सुनत जौन अघरासि ।
वे तो एकै संग दोउ, बँधत भानु-सुत[4] पासि[5] ॥१३॥
भूलिहुँ मन दीजै नहीं, भक्तन निंदा ओर ।
होत अधिक अपराध तिहिं, मति जानहु उर थोर ॥१४॥
सेवा[6] करत में भक्तजन, होइ प्राप्त जो आइ ।
सो सेवा तजि बेगिहीं, अरचहु तिनकों जाइ ॥१५॥
भक्तन देखे अधिक ह्वै, आदर कीजै प्रीति ।
यह गति जो मन की करै, जाइ सकल जग जीति ॥१६॥
मन अभिमान न कीजिए, भक्तन सों होइ भूलि ।
स्वपच आदि हू होइ जो, मिलिए तिन सों फूलि[7] ॥१७॥

कुंडलिया

बहु बीती, थोरी[8] रही, सोई बीती जाइ ।
'हित ध्रुव' बेगि बिचारिकैं, बसि बृंदाबन आइ ॥
बसि बृंदाबन आइ, लाज तजिकैं अभिमानहिं ।
प्रेमलीन ह्वै दीन, आपकों तृन-सम जानहिं ॥
सकल सार कौ सार, भजन तूँ करि रस-रीती ।
रे मन, सोच बिचार, रही थोरी, बहु बीती ॥१८॥

[1]निश्चय । [2]पापों से छूट जाना । [3]अमिट रेखा । [4]यमराज । [5]फाँसी ।
[6]भगवत्-सेवा, । [7]प्रसन्न होकर । [8]थोड़ी ही आयु और बची है ।

सोरठा

बृंदाबन रसरीति, रहै बिचारत चित्त 'ध्रुव'।
पुनि जैहै बय बीति, भीजिय नवलकिसोर दोउ ॥१९॥

दोहा

दुरलभ मानुष-जनम है, पैयतु केहूँ[1] भाँति।
सोई देखौ कौन बिधि, बादि भजन बिनु जाति ॥२०॥
बिषई जल में मीन-ज्यों, करत कलोल अजान।
नहिं जानत ढिग काल-बस, रह्यौ ताकि धर ध्यान ॥२१॥
ज्यों मृग मृगियन-जूथ सँग, फिरत मत्त मन-बाँधि[2]।
जानत नाहिन पारधी[3], रह्यौ काल सर साधि ॥२२॥
निसि-बासर मग करतली[4], लिये काल कर बाहि।
कागद सम भइ आयु तब, छिन-छिन कतरत ताहि ॥२३॥
जिहि तन कों सुर आदि सब, बांछत हैं दिन आहि।
सो पाये मतिहीन है, बृथा गँवावत ताहि ॥२४॥
रे मन, प्रभुतां कालकी, करहु जतन है ज्यां न?
तूँ फिरि भजन-कुठार सों, काटत ताही क्यों न ॥२५॥
पुरुष सोइ जो पुरिष[5] सम, छाँड़ि भजै संसार।
बियन[6] भजन दृढ़ गहि रहै, तजि[7] कुटुंब परिवार ॥२६॥
सुख में सुमिरे नाहिं जो, राधाबल्लभ लाल।
तब कैसे सुख कहि सकत, चलत प्रान तिहिं काल ॥२७॥
हौं तो करि बिनती दियौ, कंचन काँच बताइ।
इनमें जाको मन रुचै, सोई लेहु उठाइ ॥२८॥

सोरठा

तब पावै रस-सार, सज्जन यह आवै हिये।

[1]किसी प्रकार। [2]मन लगाकर, प्रेम में पड़ कर। [3]बहेलिया। [4]कैंची। [5]पुरोष, विष्ठा। [6]एकांती। [7]कुटुंबियों में आसक्ति और ममत्व न लाकर।

व्यास—बर किसोर दोउ लाड़िले, नवल प्रिया नव पीय ।
प्रगट देखियतु जगत में, रसिक ब्यास के हीय ॥६॥
कहनी[१] करनी करि गयो, एक ब्यास इहि[२] काल ।
लोक-बेद तजिकैं भजे, राधाबल्लभ लाल ॥७॥
प्रेम-मगन नहिं गन्यो कछु, बरनाबरन[३] बिचार ।
सबनि मध्य पायो[४] प्रकट, लै प्रसाद रस-सार ॥८॥
मीरा—लाज छाँड़ि गिरिधर भजी, करी न कछु कुल-कानि ।
सोई मीरा जग बिदित, प्रगट भक्ति की खानि ॥९॥*
ललिताहूं[५] लई बोलि कैं, तासों हो[६] अति हेत[७] ।
आनँद सों निरखत फिरै, बृंदाबन - रस - खेत ॥१०॥
नृत्यति नूपुर बाँधिकैं, गावति लै करतार ।
बिमल होय भक्तनि मिली, तृन-सम गनि संसार ॥११॥
बंधुनि बिष ताकों दियो, करि बिचार चित आन ।
सो बिष फिरि अमरत भयो, तब लागे पछतान ॥१२॥
अजहूं सोचि बिचारि कें, गहि भक्तनि-पद-ओट[८] ।
हरि कृपालु सब पाछिली, छमिहैं तेरी खोट ॥१३॥

---

[१]कहनी...गयो = जिसे पंडित और ज्ञानी केवल कहा करते हैं, वह सब व्यासजी प्रत्यक्ष कर के दिखा गये । [२]कलिकाल । [३]ऊँच-नीच । [४]खाया । [५]यहां ललिता से स्वामी हरिदास से तात्पर्य है । [६]था । [७]प्रेम । [८]शरण ।

*नाभाजी के इस पद्य का स्मरण दिलाता है : "लोक-लाज-कुल-संखला, तजि मीरा गिरधर भजी ।"

आनंदघन

छप्पय

दिल्लीस्वर नृप निमित एक धुरपद नहिं गायो ।
मैं निज प्यारी कहे सभा कों रीझ रिझायो ।।
कुपित होय नृप दिय निकासि बृंदाबन आये ।
परम सुजान 'सुजान' छाप पद कवित बनाये ।।
नादिरसाही ब्रज-रस मिले, किय न नैकु उच्चाट मन ।
हरि-भक्ति-बेलि, सेचन करी, घनआनँद आनंद-घन ।।

—गोस्वामी राधाचरण

रसिक-वर आनंदघनजी जाति के कायस्थ थे। इनका जन्म संवत् १७४६ के लगभग हुआ था, और यह संवत् १७९६ में, नादिरशाही के ज़माने में मारे गये। इनका वास्तविक नाम घनानंद था पर कविता में यह अपना नाम 'आनंदघन' लिखते थे। दिल्लीश्वर बादशाह मुहम्मद शाह के यह मीरमुंशी थे। कहते हैं, सुजान नाम की एक वेश्या पर इनका भारी प्रेम था। यह सदा उसकी आज्ञा पर चला करते थे। एक दिन दरबार में कुछ चुगलखोरों ने बादशाह से यह कह दिया, कि हुज़ूर, मीर-मुंशी साहब गाते बहुत अच्छा हैं। बादशाह ने इन्हें गाने के लिए हुक्म दिया। इन्होंने बहाना बनाकर हुक्म टाल दिया। लोगों ने बादशाह को और भी चढ़ाया। कहा: "यह हुज़ूर के कहने से न गायेंगे; अगर इनसे सुजान कहे, तो यह फ़ौरन गाने लगेंगे।" ऐसा ही किया गया। तब घनानंदजी, बादशाह की तरफ़ पीठ और सुजान की तरफ मुँह करके गाने लगे। ऐसी समा बाँध दी, कि सारा दरबार इन पर लट्टू हो गया। बादशाह गाने पर तो ख़ुश हुए, पर इनकी पीठ दिखाने की बेअदबी को

बरदाश्त न कर सके। नाराज़ हो इन्हें शहर से बाहर निकाल दिया। चलते समय इन्होंने सुजान से अपने साथ चलने को कहा। उसने इन्कार कर दिया। सुजान के बिरह से पीड़ित मीरमुंशी साहब सीधे वृंदावन चले गये। सुजान के प्रति वैराग्य और परमेश्वर की ओर अनुराग उत्पन्न हो गया। किंतु 'सुजान' नाम इन्हें इतना प्यारा था, कि उसे ये आजीवन न भुला सके। वेश्या के बदले श्रीकृष्ण के लिए यह 'सुजान' शब्द का प्रयोग करने लगे। वृंदावन में यह निंबार्क संप्रदाय के वैष्णव हो गये। वृंदाबन-धाम की लगन इनकी इस रचना से कैसी सुदृढ़ जान पड़ती है :

गुरनि बतायो, राधा-मोहन हूं गायो सदा,
सुखद सुहायो बृंदाबन गाढ़े गहि रे।
अद्भुत अभूत महि-मंडन परे तें परे,
जीवन कौ लाहु, हा हा, क्यों न ताहि लहि रे॥
आनँद कौ घन छायो रहत निरंतर हीं,
सरस सुदेय सों पपीहा-पन बहि रे।
जमुना से तीर केलि कोलाहल-भीर, ऐसी
पावन पुलिन पै पतित, पर रहि रे॥

संवत् १७९६ में नादिरशाही के समय मथुरा में कुछ बदमाशों ने नादिरशाह के सिपाहियों से कह दिया : "वृंदावन में फ़क़ीर के वेष में बादशाह का मीरमुंशी रहता है, उसके पास बड़े-बड़े क़ीमती जवाहरात हैं; उसे जाकर क्यों नहीं लूटते ?" सिपाहियों ने फक्कड़ आनंदघन को जाकर घेर लिया। उन्होंने इनसे कहा—"ज़र ज़र ज़र" अर्थात् धन, धन, धन !

आनंदघनजी ने जर को पलट कर तीन मुट्ठी 'रज' उन पर फेंक दी। उनके पास सिवा ब्रज-रज के और था ही क्या ? मज़ाक़ समझ कर ज़ालिम सिपाहियों ने उनका एक हाथ काट डाला। तंग करने पर भी जब कुछ हाथ न आया, तब वहां से चल दिये। आनंदघनजी ने अपनी तकिया पर, अपने ख़ून से, मरते समय जो कवित्त लिखा था, वह यह है :

बहुत दिनानि की अवधि आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठ जान कों।
कहि-कहि आवत छबीले मनभावन कों,
गहि-गहि राखति ही, दे-दे सनमान कों॥
झूठी बतियान की पत्यानि तें उदास ह्वै कैं,
अब ना घिरत 'घन आनँद' निदान कों।
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान कों॥

आनंदघनजी ने 'कृपाकांड-निबंध', 'रसकेलि-बल्ली', 'सुजान-सागर' और 'बानी' नाम के ग्रंथ बनाये। बानी में श्रीराधाकृष्ण के विहार और अष्टयाम संबंधी पदों का संग्रह है। बानी के पद्य इनकी अन्य रचनाओं से कुछ शिथिल हैं। यह सवैया छंद लिखने में जितने सफल हुए उतने और छंदों में नहीं। वियोग-शृंगार लिखने में तो इन्होंने क़लम ही तोड़ दी है। विरह के लिखने में अपने ढंग के एक ही कवि थे, इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। शुद्ध ब्रजभाषा लिखने में यह अद्वितीय थे। इतनी शुद्ध भाषा तो किसी भी कवि की देखने में नहीं आई। भारतेंदु हरिश्चंद्र इनकी कविता को बहुत ही पसंद करते थे। बाबू हरिश्चंद्र कभी-कभी इनका अनुकरण करके ही सवैया लिखा करते थे। 'शिवसिंहसरोज' में 'इनकी कविता सूर्य के समान भासमान है' लिखा है। इनकी कविता के परिचय में निम्न-लिखित सवैये प्रसिद्ध हैं :—

नेही महा, ब्रजभाषा-प्रवीन, औ सुंदरताइ के भेद कों जानै।
आगे बियोग की रीति में कोविद, भावना-भेद, स्वरूप कों ठानै॥
चाह के रंग में भींज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै।
भाषा प्रवीन, सुछंद सदा रहै, सो घनजू के कवित्त बखानै॥१॥
प्रेम सदा अति ऊँचो लहै, सु कहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनिकैं सब के मन लालच दौरै, पै बौरै लखैं सब बुद्धि चकी॥
जग की कविताई के धोखे रहैं, ह्यां प्रवीननि की मति जाति जकी।

समुझै कविता घनआनंद की, हिय आँखिन नेह की पीर तकी ॥२॥

वास्तव में, आनंदघनजी की कविता सरस, हृदय में एक कसक पैदा कर देने वाली चीज़ है।

बाबू अमीरसिंहजी ने अपने हरिप्रकाश प्रेस से, स्वर्गीय जगन्नाथदास-जी 'रत्नाकर' की सहायता से, 'सुजान-सागर' नाम का ४८३ छंदों का एक संग्रह प्रकाशित किया था। रत्नाकरजी आनंदघन की कविता पर बहुत ही मुग्ध थे। उनका विचार था, कि एक सर्वांग सुंदर संग्रह घनानंद का प्रकाशित किया जाय। ब्रजभाषा का दुर्भाग्य कि रत्नाकरजी की मन की मन ही में रही। आज ब्रजभाषा के प्रति वह प्रेम किसमें है? काशी-नागरी-प्रचारिणी से, संवत् १९६५ में, श्री काशीप्रसादजी जायसवाल द्वारा संपादित इनकी 'बिरह-लीला' प्रकाशित हुई। आनंदघनजी की जीवनी के संबंध में दो में से किसी भी पुस्तक में कोई संतोषजनक बात नहीं लिखी गयी। हमें इनका यह थोड़ा सा वृत्तांत, जो ऊपर लिखा गया है, श्रद्धेय पंडित राधा-चरण गोस्वामी द्वारा प्राप्त हुआ था।

सुजान-सागर

सवैया

जा[1] हित मात कौ नाम जसोदा[2], सुबंस को चंद्रकला-कुलधारी।
सोभा-समूहमयी 'घनआनँद', मूरति रंग अनंग जिवारी ॥
जान[3] महा, सहजै रिझवार, उदार-बिलास, सु रासबिहारी।
मेरो मनोरथ हू पुरवौ[4] तुम हीं मो मनोरथ - पूरनकारी ॥१॥

मेरोई जीव जो मारतु मोहिं तौ, प्यारे, कहा तुमसों कहनौ है।
आँखिनहूँ यहि बानि[5] तजी, कछु ऐसोइ भोगनि कौ लहनौ[6] है ॥
आस तिहारियै ही 'घनआनँद', कैसे उदास[7] भये रहनौ है।

[1]जा...जसोदा---जिस श्रीकृष्ण के कारण से नंद की रानी का नाम यशोदा अर्थात् कीर्ति फैलाने वाली हुआ। [2]श्रीकृष्ण की मानी हुई माता। 'यशोदा' का अर्थ है यश देने वाली। [3]प्यारा। [4]पूरा करो। [5]स्वभाव। [6]पाना। [7]निरपेक्ष।

जानि कैं होत इते पै अजान[१] जो, तौ बिन पावक ही दहनौ है ॥२॥
इन बाट परी सुधि रावरे भूलनि, कैसे उराहनौ दीजिए जू ।
इक आस तिहारी सों जीजै[२] सदा, घन-चातक की गति लीजिए जू ॥
अब तों सब सीस चढ़ाय लई, जु कछू मन भाई सु कीजिए जू ।
'घनआनँद', जीवन-प्रान सुजान, तिहारियै बातनि जीजिए[३] जू ॥३॥
जिन[४] आँखिन रूप चिन्हारि भई, तिनकों नित ही दहि[५] जागनि[६] है ।
हित-पीर सों पूरित जो हियरो, फिरि ताहि कहां,कहु, लागनि[७] है ?
'घनआनँद', प्यारे सुजान सुनौ, जियराहि सदा दुख दागनि है ।
सुख में मुखचंद बिना निरखे, नख तें सिख लौं बिख पागनि है ॥४॥
जीव की बात जनाइए क्योंकरि, जान कहाय अजाननि आगौ[८] ।
तीरन मारिकैं पीर न पावत, एक-सो मानत रोइबौ-रागौ[९] ॥
ऐसी बनी 'घनआनँद' आनि जू, आनन सूझत सो किन त्यागौ ।
प्रान मरैंगे, भरैंगे बिथा, पै अमोही[१०] सों काहू कौ मोह न लागौ ॥५॥
जिनकों नित नीके[११] निहारति हीं, तिनकों अँखियां अब रोवति हैं ।
पल पाँवड़े पाइनि[१२]चाइनि[१३]सों, अँसुवानि की धारनि धोवति हैं ॥
'घनआनँद' जान सजीवनि कों, सपने बिन पायेइ[१४] खोवति हैं ।
न खुली-मुँदी जानि परैं, दुख ये, कछु हाइ जगे पर सोवति हैं ॥६॥
मो बिन जो तुम्हैं और रुची तौ रुचै, न तुम्हैं बिन मोहि, जियौ[१५] जू ।
सूल भयो गुन यौं जिहि अंग की, दीप सों बारि[१६] बियोग दियौ जू ॥
काह कहौं 'घनआनँद' प्यारे, इतौ हठ कौन पै आपु लियौ जू ।
हाय ! सुजान सनेही कहाइ क्यौं, मोह[१७]जनाइ कैं द्रोह कियौ जू ॥७॥

[१]अपरिचित । [२]जीते है । [३]जाते है । [४]जिन...भई--जिन आँखों ने रूप से मित्रता कर ली । [५]जलती हुई । [६]जागती हैं । [७]लगना है, प्रेम करना है । [८]आगे । [९]राग भी । [१०]निर्मोही, जिसे दूसरे के प्रेम का ध्यान न हो । [११]भली भांति । [१२]पैरों को । [१३]प्रेम-भाव से । [१४]पाये ही । [१५]जीना है । [१६]जला कर । [१७]प्रेम ।

पर काजहिं देह कों धारे फिरौ, 'परजन्य'[१] जथारथ[२] ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ, सबहीं बिधि सज्जनता सरसौ ॥
'घनआनँद' जीवन-दायक हौ, कछु मेरियौ पीर हियें परसौ[3] ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन, मो अँसुवानि कों लै बरसौ ॥८॥
धुनि पूरि रहै नित काननि में, अज कों उपराजिबोई[४]-सी करै ।
मनमोहन गोहन जोहन के, अभिलाष समाजिबोई-सी करै ॥
'घनआनँद' तीखियै[५] ताननि सों, सर[६]-से सुर साजिबोई-सी करै ।
कित तें यह बैरिनि बाँसुरिया, बिन बाजेई बाजिबोई-सी करै ॥९॥
पहिले अपनाय सुजान सनेह सों, क्यों फिरि नेह कों तोरिए जू ।
निरधार अधार दै धार मँझार, दई गहि बाँह न बोरिए जू ॥
'घनआनँद' आपके चातक कों, गुन बाँधिकैं मोह न छोरिये जू ।
रस प्याय कैं ज्याय[७] बढ़ाय कैं आस, बिसास में यों बिष घोरिए जू ॥१०॥

कवित्त

एरे बीर पौन, तेरो सबै ओर गौन,[८] बारी,[९]
तोसों और कौन मनौं ढरकौहीं बानि दै ।
जगत के प्रान ओछे-बड़े तो समान,
'घनआनँद' निधान सुखदानि दुखियानि दै ॥
जान[१०] उजियारे गुनभारे अंत मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही[११] बैठे पीठि पहिचान दै ।
बिरह-बिथा की मूरि आँखिन में राखौं पूरि,
धूरि तिन पायन की हा हा नैकु आनि दे ॥११॥
राति-द्यौस कटक[१२] सजेही रहै, दहै दुख,
कहा कहौं, गति या बियोग बज्रमारे की ।

[१] मेघ; दूसरे के लिए । [२] यथा नाम तथा गुण: । [3] जाना । [४] उत्पन्न करना । [५] तीक्ष्ण ही, ऊँचा स्वर । [६] शर, बाण । [७] जिला कर । [८] गति, प्रवेश । [९] बलिहारी । [१०] प्यारे । [११] निर्मोही, निर्दय । [१२] सेना ।

लियो घेरि औचक[1] अकेली कै बिचारो जीव,
कछू न बसाति[2] यों उपाव बलहारे[3] की ॥
जान प्यारे, लागौ न गुहार[4] तौ जुहारि करि,
जूझकैं निकसि टेक गहे पनधारे[5] की ।
हेत-खेत[6] धूरि चूर-चूर ह्वै मिलैगी तब,
चलैगी कहानी 'घनआनँद' तिहारे की ॥१२॥

इंदीबर-दलनि मिलाइ सौनजुही[7] गुही,
सुही[8] माल हाल रूप गुन न परै गनै ।
पीरी ये पिछौरी[9] छोर सीस पै उलटि राखैं,
केसर बिचित्र अंग रंग भाव सों सनै ॥
मुरली में गौरी[10] धुनि टेरी 'घनआनँद' ह्वै,
तेरे द्वार टहकनि ऊधम घने ठनै ।
हा हा, हे सुजान ! आजु दीजै प्रान-दान नैकु,
आवत गुपाल देखि लीजै बन तें बनै[11] ॥१३॥

रसिक रँगीले, भली भाँतिन छबीले,
'घन आनँद' रसीले भरे महा सुखसार हैं ।
कृपा-धन-धाम[12] स्याम सुंदर सुजान, मोद—
मूरति सनेही बिना बूझे रिझवार[13] हैं ॥
चाह-आलबाल,[14] औ अबाँह[15] के कलपतरु,
कीरति-मयंक, प्रेम-सागर अपार हैं ।
नित हित[16]-संगी, मनमोहन त्रिभंगी मेरे,
प्राननि-अधार नंदनंदन उदार[17] हैं ॥१४॥

[1]अचानक । [2]वश । [3]निर्बल की । [4]पुकार । [5]प्रतिज्ञा करनेवाले की । [6]प्रेमरूपी रणक्षेत्र । [7]पुष्पविशेष । [8]लाल । [9]दुपट्टा । [10]एक रागिनी, जो संध्या समय गायी जाती है । [11]शृंगार किए हुए । [12]कृपा के भांडार । [13]निःस्वार्थ प्रसन्न हो जानेवाले है । [14]थाला । [15]अनाथ । [16]प्रेम । [17]कृपालु ।

आँखिन को जो सुख निहारे जमुना के होत,
सो सुख बखाने न बनत देखबेई है।
गौर-स्याम-रूप-आदरस है दरस जाको,
गुपुत-प्रगट भावना बिसेखिबेई है॥
जुग कूल सरस सलाका[1] दीठि परत हीं,
अंजन सिंगाररूप अवरेखिबेई है।
आनँद के घन माधुरी[2] की झर[3] लागि रहैं,
तरल[4] तरंगनि की गति लेखिबेई[5] है॥१५॥

सवैया

आपुहि तें मन हेरि हँसे, तिरछे करि नैननि नेह के चाव में।
हाय दई! सु बिसारि दई सुधि, कैसी करौं, सो कहो, कित[6] जावँ में॥
मीत सुजान अनीति कहा, यह ऐसी न चाहिए प्रीति के भाव में।
मोहनि मूरति देखिबे कों, तरसावत हौ बसि एक ही गाँव में॥१६॥
दृग फेरिए ना अनबोलिए सो, सर-से[7] ह्वै लगे कत जीजिए जू।
रसनायक,[8] दायक हौ रस के, सुखदाई ह्वै दुःख न दीजिए जू॥
'घनआनँद' प्यारे सुजान! सुनौ, बिनती मन मानिकैं लीजिए जू।
बसिकैं इक गाँव में एहो दई! चित ऐसौ कठोर न कीजिए जू॥१७॥

दंडक

सदा कृपानिधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमानि मान-दानि हौ, समान[9] काहि दीजिए।
रसालसिंधु प्रीति के, भरे-खरे[10] प्रतीति के,
निकेत नीति-रीति के सुदृष्टि देखि जीजिए॥
ठगी[11] लगी तिहारियै, सुआप त्यों निहारिए,

[1]सींक, लकीर। [2]शोभा। [3]झड़ी, वर्षा। [4]चंचल। [5]देखने ही योग्य है। [6]मैं कहां जाऊं? [7]शर अर्थात् बाण के समान। [8]आनंद-स्वरूप, रसमूर्ति। [9]समता, उपमा। [10]शुद्ध। [11]मोहिनी।

समीप है बिहारिए[1], उमंग रंग भीजिए ।
पयोद-मोद[2] छाइए, बिनोद को बढ़ाइए,
बिलंब छाँड़ि आइए, किधौं बुलाइ लीजिए[3] ॥१८॥

दोहा

सुख सुदेस कौ राज लहि, भये अमर अवनीस ।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र[4] हमारे सीस ॥१९॥
मो-से अनपहिचानि कों, पहिचानै हरि कौन ?
कृपा कान मधि नैन ज्यों, त्यों पुकारि मधि मौन ॥२०॥
हरि तुम सों पहिचानि कौ, मोहि लगाव[5] न लेस ।
इहि उमंग फूल्यो[6] रहौं, बसौं कृपा के देस ॥२१॥

बिरह-लीला*

सलोने स्याम प्यारे क्यों न आवो ? दरस प्यासी मरैं तिनकों जिवावो ?
कहां हौ जू, कहां हौ जू, कहां हौ ? लगे ये प्रान तुमसों हैं, जहां हौ ॥
रहौ किन प्रानप्यारे, नैन आगे । तिहारे कारने दिन-रात जागे ।
सजन[7] हित मान कैं ऐसी न कीजै । भई हैं बावरी सुधि आय लीजै ॥
कहाँ तब प्यार सों सुखदैन बातें । करौ अब दूर ये दुखदैन घातें ॥
बुरे हो जू, बुरे हौ जू, बुरे[8] हौ । अकेली कै हमैं ऐसे दुरे[9] हौ ॥२२॥
लिखैं कैसे पियारे, प्रेम-पाती ? लगै अँसुवन झरी बैटूक[10] छाती ॥
पर्‌यो है आनकै ऐसो अँदेसो । जरावै जीव अरु कानन सँदेसो ॥

[1]विहार कीजिए । [2]आनंद-रूपी मेघ । [3]शरण दीजिए । [4]राजछत्र; रक्षा । [5]संबंध । [6]प्रसन्न रहता हूं । [7]अपने; प्यारे । [8]निठुर हो । यहां 'बुरा' शब्द प्यार-भरी गाली में आया है । [9]छिप गये हो । [10]दो टुकड़े ।

*बिरह-लीला में कई स्थलों पर छंदोभंग दोष दिखाई देता है । संभव है, असल कविता की प्रतिलिपि करते समय असावधानता-वश छंदों मे यह दोष आ गया हो । इसकी यदि दूसरी प्रति मिलती तो पाठ ठीक कर लिया जाता । किंतु भावोत्कृष्टता देखते हुए यह दोष कुछ अधिक नहीं खटकता ।

दसा है अटपटी पिय, आय देखो। न देखो, तो परेखो[१] हौ परेखो ॥
अनोखी पीर प्यारे कौन पावै ? पुकारौं मौन में कहिबे न आवै ॥२३॥
तिहारे मिलन की आसा न छूटै। लग्यो मन बावरो[२] तोरे न टूटै ॥
अजौं धुन बाँसुरी की कान बोलै। छबीली छैल डोलन संग डोलै ॥
सलौनी स्याम मूरति फिरै आगे। कटाछै बान-सी उर आन लागै ॥
मुकुट की लटक हिय में आय हालै[३]। चितौनी बंक जिय में आय सालै[४] ॥
हँसन में दसन दुति की होत कौंधै[५]। बियोगी नैन चेटक[६] चाय चौंधैं ॥
अधर कों देखि प्यासे नैन दौरैं। सदा हम प्रान-बिनु[७] ह्वै बिबस बौरैं[८] ॥
अचानक आय मदना जब सतावै। कहौ तब की दसा कहि, को बतावै ?
बहै तब नैन तें अँसुवान-धारा। चलावै सीसपै बिरहा जु आरा ॥
इते पै जो न पाऊं पीर, प्यारे ! रहैं क्यों प्रान ये बिरही बिचारे ॥
जरावै नीर, तो फिर को सिरावै ? अमी[९] मारै, कहौ जू, को जिवावै ?
जु चंदातें झरैं दैया[१०] अँगारे। चकोरन की कहौ गति कौन प्यारे ॥२४॥
तिहारे नाम पर हम प्रान वारे[११]। जहां हौ जू, तहां रहिए, सुखारे ॥
तुम्हैं निसि-द्यौस मनभावन[१२] असीसैं। सजीवन हौ, करो हम पै कसीसैं[१३] ॥
लगौ जिन लाड़िले को पौन[१४] ताती[१५]। सहाई हैं हमें तुमको सुहाती ॥
सुरत कीजै, बिसारे क्यों बनेगी। बिरहिनी यों अवधि[१६] कबलौं गिनेगी ॥२५॥
किये[१७] की लाज है ब्रजनाथ प्यारे। बिराजौ सीस पै जग के उज्यारे[१८] ॥
सदा सुख है हमें तुम साथ आछैं। लगी डोलैं छबीले, छाहँ पाछैं ॥
तुम्हें देखैं तुम्हैं भेंटैं भले ही। जगैं, सोवैं, उठैं, बैठैं, चले ही ॥२६॥

---

[१]परखला। [२]प्रेमोन्मत्त। [३]हिलती रहे, झूलती रहे। [४]चुभती रहे। [५]चमक। [६]जादू। [७]विदेहावस्था में होकर। [८]पागल हो जायँ। [९]अमृत। [१०]हे दैव। [११]न्यौछावर कर दिये। [१२]मनमोहन, प्रान-प्यारे। [१३]निर्दयता। [१४]हवा। [१५]गरम। [१६]मिलने की घडी। [१७]प्रेम करने की। [१८]प्रकाश-रूप।

नागरीदास

छप्पय

बल्लभ-पथहिं दृढ़ाइ, कृष्णगढ़ राजहिं छोड़्यो ।
धन जन मान कुटुंबहि, बाधक लखि मुख मोड़्यो ।।
केवल अनुभव-सिद्ध, गुप्त रस-चरित बखाने ।
हिय सँजोग-उच्छलित, और सपनेहु नहिं जाने ।।
करि कुटी रमनरेती बसत, संपति-भक्ति-कुबेर भे ।
हरि-प्रेम-माल-रस-जाल के, नागरिदास सुमेर भे ।।

—भारतेंदु हरिश्चंद्र

नागरीदास नाम के चार-पाँच भक्त-कवि ब्रज में हो गये हैं। सबसे पहले नागरीदास नाम के एक महात्मा श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य आगरे के रहने वाले थे। इनकी कथा 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में है। दूसरे नागरीदास स्वामी हरिदास की शिष्य-परंपरा में हुए हैं। यह बिहारी-दासजी के कृपापात्र शिष्य थे। तीसरे नागरीदास गोस्वामी हितहरिवंश के संप्रदाय में तथा चौथे श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय में हुए हैं। ध्रुवदासजी ने अपनी 'भक्तनामावली' में इनका उल्लेख किया है। भार-तेंदुजी ने भी इनके संबंध में लिखा है:

श्री बृंदाबन के सूर-ससि, उभय नागरीदास जन ।

पाँचवें नागरीदास कृष्णगढ़ाधीश महाराज सावंतसिंहजी हैं। यह वल्लभ-कुल के शिष्य थे। इनका जन्म पौष कृष्ण १२, संवत् १७५६ में हुआ था। 'शिवसिंहसरोज' में इनका जन्म-संवत् १६४८ लिखा है। यह अशुद्ध है। आश्चर्य है, हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर ग्रियर्सन ने भी 'सरोज' पर विश्वास करके बिना इनका कविता-काल देखे ही, इनका जन्मसंवत् १६४७

मान लिया। श्रीयुक्त पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने अपने लेख 'एंटिक्विटी आफ़ दि पोएट नागरीदास' में इनका जन्म-संवत् बहुत ही युक्ति-पूर्ण लिखा है।

इनके पिता का नाम महाराज राजसिंह था। महाराज सावंतसिंहजी बचपन से ही शूरवीर थे। तेरह वर्ष की अवस्था में इन्होंने अकेले ही बूँदी के हाड़ा जैतसिंह को मारा था। उस समय राजधानी रूपनगर थी। महाराज सावंतसिंहजी का विवाह संवत् १७७७ में भावनगर के राजावत यशवंतसिंह की कन्या से हुआ। इनके चार संतति हुई, दो पुत्र और दो कन्याएं।

संवत् १८०४ में यह दिल्ली के दरबार में थे। पिता के स्वर्गवास के बाद बादशाह अहमदशाह ने इन्हें कृष्णगढ़ का राजा बनाया। कृष्णगढ़ पहुँचने के पहले ही इनके भाई बहादुरसिंह राज्य पर अधिकार कर बैठे थे। इन्होंने बादशाह की सहायता से बहादुरसिंह को परास्त करना चाहा, किंतु उधर जोधपुर-नरेश का हाथ था! जीत हो तो कैसे! बेचारे मन-मारे ब्रज की ओर चले गये। वहां मरहठों से संधि कर ली और उनकी सहायता-द्वारा बहादुरसिंह को परास्त कर अपने राज्य पर अधिकार कर लिया। इस वरू लड़ाई-झगड़े से इनका चित्त ऐसा ऊब गया कि इन्हें राज्य एक भार-सा प्रतीत होने लगा। लिखते हैं:

जहां कलह तहँ सुख नहीं, कलह सुखन कौ सूल।
सबै कलह इक राज में, राजकलह कौ मूल॥
कहा भयो नृपहूँ भये, ढोवत जग-बेगार।
लेत न सुख हरि-भक्ति कौ, सकल सुखन कौ सार॥
मैं अपने मन-मूढ़ तें, डरत रहत हौं हाय।
बृंदाबन की ओर तें, मति कबहूँ फिरि जाय॥

ब्रज-वास के लिए आपकी कैसी उत्कट उत्कंठा थी:

ब्रज में ह्वै-ह्वै, कढ़त दिन, किते दिये लै खोय।
'अबकै-अबकै' कहत ही, वह 'अबकै' कब होय॥

वह 'अब' अब आ गया। तीर्थाटन करते हुए आपकी विरक्ति बहुत

बढ़ गयी। जहां-तहां ब्रज-ही-ब्रज भासने लगा। राज-काज से जी एकदम ऊब गया। सब छोड़-छाड़ कर वृंदावन चले आये। भगवद्भक्ति का बीज तो पहले से ही था, उर्वरा भूमि पाते ही वह अंकुरित, प्रफुल्लित और परिफलित हो उठा। वृंदावन में जाने का, स्वयं नागरीदासजी ने निम्नलिखित छंदों में क्या ही हृदय-स्पर्शी वर्णन किया है :

सुनि ब्यौहारिक नाम मो, ठाढ़े दूरि उदास।
दौरि मिले भरि नैन सुनि, नाम 'नागरीदास'॥

अर्थात्, जब साधु-संतों ने सुना कि कृष्णगढ़ाधीश महाराज सावंतसिंहजी आये हैं, तब वे उदासीन भाव से अलग खड़े हो गये, किंतु जब यह जाना कि यह तो नागरीदासजी हैं, तब सब लोग दौड़-दौड़कर इनसे प्रेमपूर्वक मिलने लगे :

इक मिलत भुजनि भरि दौरि-दौरि। इक टेरि बुलावत औरि-औरि॥
कोउ चले जात सहजैं सुभाय। पद गाय उठत भोगहिं सुनाय॥
जे परे धूरि मधि मत्त चित्त। तेउ दौरि मिलत तजि रीति नित्त।
अतिसय बिरक्त जिनके सुभाव। जे गनत न राजा रंक राव॥
ते सिमिटि-सिमिटि फिर आय-आय। फिरि छाँड़त पद पढ़वाय गाय॥

जहां इन पर और इनकी कविता पर लोग इतने मुग्ध थे, भला उस ब्रज-मंडल को यह क्यों छोड़ने चले! सर्वस्व छोड़ दिया, पर ब्रज-रज न छोड़ी :

सर्बस के सिर धूरि दै, सर्बस कै ब्रज-धूरि।

वृंदावन और वृंदावन-बिहारी पर आप कैसे आसक्त थे यह नीचे की घटना से भली भाँति प्रकट हो जाता है। एक बार आप वृंदावन के उस पार रात के समय पहुँचे; कोई नाव नहीं मिली। जायँ तो कैसे? वृंदावन का क्षण-वियोग भी न सहा गया। सबके समझाने-बुझाने पर भी यमुना में कूद पड़े और तैर कर उसी समय अपने प्यारे श्रीवृंदावन बिहारी के समीप पहुँच गये। आपके शब्दों में :

देख्यो श्रीवृंदाबिपिन पार। बिच बहति महा गंभीर धार।

नहिं नाव, नाहिं कछु और दाव । हे दई ! कहा कीजै उपाव ॥
रहे वार लगनि को लगै लाज । गये पारहि पूरे सकल काज ॥
प्रेम पंथ कों पीठि दै, यह जीवौ न सुहाय ।
मंगल दिन है आजु कौ, प्रिय-सनमुख जिय जाय ॥
यह चित्त माहिं करिकैं बिचार । परे कूदि-कूदि जल मध्य धार ॥
वार रहे, रहे वार ते, पार भये, भये पार ।
दरसे बृंदाबिपिन बिच, राधा - नंद - कुमार ॥

श्रीराधारमणजी के दर्शन देने में अब संदेह ही क्या ? आप ब्रज में रह कर कैसे संतुष्ट और सुखी हो गये, यह बात आपके इस पद से प्रकट होती है :

हमारी सबहीं बात सुधारी ।
कृपा करी श्री कुंज-बिहारिनि अरु श्रीकुंज-बिहारी ॥
राख्यौ अपने बृंदाबन में जिहि कौ रूप उज्यारी ।
नित्य केलि आनंद अखंडित रसिक संग सुखकारी ॥
कलह कलेस न ब्यापै इहि ठां ठौर बिस्व तें न्यारी ।
'नागरिदासहिं' जनम जिवायो बलिहारी-बलिहारी ॥

सफलजीवन भक्ताग्रगण्य महाराज नागरीदास ब्रजवास करते हुए भाद्र शुक्ल ३ संवत् १८२१ को ६४ वर्ष ८ महीने की अवस्था में गोलोकवासी हुए ।

महात्मा नागरीदास का कविता-काल सं० १७८० से सं० १८१९ तक माना जाता है । इस ४० वर्ष के समय में इन्होंने सहस्रों पद लिख डाले, साहित्य की रसवती जाह्नवी बहा दी । सुप्रख्यात प्रेमी कवि आनंदघनजी आपके गहरे मित्र थे । कविता में आप अपना नाम नागरीदास, नागरी, नागर और नागरिया रखते थे । आपकी उपपत्नी बनीठनीजी भी रसिक बिहारी छाप देकर पद बनाया करती थीं । बनीठनीजी महाराज के साथ अंत तक ब्रज में ही रहीं ।

नागरीदासजी वल्लभकुल के गोस्वामी रणछोड़जी के शिष्य थे । रण-

छोड़जी श्रीवल्लभाचार्यजी की पाँचवीं पीढ़ी में आते हैं। श्रीआचार्यजी के पुत्र श्रीगोसाईं विट्ठलनाथ जी, तिनके श्रीगिरिधरजी टीकैत, तिनके श्री गोपीनाथजी और तिनके श्रीरणछोड़जी थे। यह गद्दी कोटा की है। नागरीदासजी के सेव्य ठाकुर श्रीकल्याणरायजी थे, पर बाहर साथ में श्रीनृत्यगोपालजी का स्वरूप रखते थे। आज भी कृष्णगढ़ में श्रीकल्याणराय और श्रीनृत्यगोपाल के स्वरूप विराजमान हैं। नागरीदासजी का भक्ति-भाव आज भी वहां कुछ-कुछ झलकता है।

नागरीदासजी ने छोटे-बड़े सब मिलाकर ७५ ग्रंथ रचे, जिनमें दो नहीं मिलते, शेष ७३ का संग्रह ज्ञानसागर यंत्रालय के अध्यक्ष श्रीधर शिवलालजी ने 'नागर-समुच्चय' के नाम से प्रकाशित किया है। इसके तीन भाग कर दिये गये हैं— 'वैराग्य-सागर', 'सिंगार-सागर' और 'पद-सागर'। समुच्चय में ६१ पद बनीठनीजी के भी सम्मिलित हैं। उन ७३ ग्रंथों के नाम नीचे लिखे जाते हैं :

१. सिंगार-सार; २. गोपी-प्रेम-प्रकाश (सं० १८००); ३. पद प्रसंग-माला; ४. ब्रज-बैकुंठ-तुला (सं० १८०१); ५. ब्रजसार (सं० १७९९) ६. भोर-लीला; ७. प्रातरस-मंजरी; ८. बिहार-चंद्रिका (सं० १७८८); ९. भोजनानंदाष्टक; १०. जुगुलरस-माधुरी; ११. फूलबिलास; १२. गोधन-आगमन; १३. दोहन-आनंद; १४. लग्नाष्टक; १५. फाग-विलास; १६. ग्रीष्म-विहार; १७. पावस-पचीसी १८. गोपी-बैन-विलास; १९. रासरस-लता; २०. नैनरूप-रस; २१. शीतसार; २२. इश्क-चमन; २३. मजलिस-मंडन; २४. अरिल्लाष्टक; २५. सदा की माँझ; २६. वर्षाऋतु की माँझ; २७. होरी की माँझ; २८. कृष्ण-जन्मोत्सव-कवित्त; २९. प्रिया-जन्मोत्सव-कवित्त; ३०. साँझी के कवित्त; ३१. रास के कवित्त; ३२. चाँदनी के कवित्त; ३३. दिवारी के कवित्त; ३४. गोवर्धन-धारन के कवित्त; ३५. होरी के कवित्त; ३६. फाग-गोकुलाष्टक; ३७. हिंडोरा के कवित्त; ३८. वर्षा के कवित्त; ३९. भक्ति-मग-दीपिका (सं० १८०२); ४०. तीर्थानंद (सं० १८१०); ४१. फाग-विहार (सं० १८०८); ४२. बाल-विनोद (स० १८०९);

४३. सुजनानंन्द (सं० १८१०); ४४. वन-विनोद (सं० १८०६); ४५. भक्तिसार (सं० १७६६); ४६. देह-दशा; ४७. वैराग्य-वल्ली; ४८. रसिक रत्नावली (सं० १७८२); ४६. कलि-वैराग्य-वल्लरी (सं० १७६५) ५०. अरिल्ल-पचीसी; ५१. छूटक-विधि; ५२. पारायण-विधि-प्रकाश (सं० १७६६) ५३. शिखनख; ५४. नखशिख; ५५. छूटक कवित्त; ५६. चरचरियां; ५७ रेखता; ५८. मनोरथ-मंजरी (सं० १७८०); ५९. राम-चरित्रमाला; ६० पद-प्रबोधमाला; ६१. जुगुल-भक्ति-विनोद (सं० १८०८); ६२. रसानुक्रम के दोहे; ६३. शरद की माँझ; ६४. साँझी-फूल-बोनन-संवाद; ६५. बसंत-वर्णन; ६६. रसानुक्रम के कवित्त ६७. फाग-खेलन-समेतानुकम कवित्त; ६८. निकुंज-विलास (सं० १७६४) ६६. गोविंद-परचई; ७०. वनजन-प्रशंसा; ७१. छूटक दोहा; ७२. उत्सव-माला; ७३. पद-मुक्तावली ।

दो अप्राप्य ग्रंथों के नाम 'बैन-बिलास' और 'गुप्तरस-प्रकाश' हैं ।

नागरीदासजी की कविता श्रीराधाकृष्ण की भक्ति-संबंधिनी है । आपने उत्सवों का—विशेषकर होली का—वर्णन बड़ा ही विशद और रोचक किया है । आपकी कविता हरिवंशी और हरिदासी महात्माओं की बानियों से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है । यद्यपि थे आप वल्लभकुलावलंबी, आप की कविता की भाषा—ब्रजभाषा और कहीं-कहीं उर्दू-फ़ारसी मिश्रित है । कविता में सर्वत्र प्रेम की झलक दिखायी पड़ती है । नागरीदास-सरीखे महाकवि हिंदी-साहित्य में इने-गिने ही मिलेंगे । ब्रजभाषा के तो आप अभिमान-स्वरूप ही हैं । 'नागर-रस-सागर' के कुछ अनमोल रत्न नीचे दिये जाते हैं :

वैराग्य-सागर

कवित्त

लीला-रस-आसव[1] स्रवन पान कीने, हरि,
ग्यानहिं गजक आन नाहिं चहियतु हैं ।

[1] मदिरा ।

बिधिना कुबेर इंद्र आदि सब रंक दीसैं[1],
ऐसे[2] मद छाये पै नमनि[3] गहियतु हैं॥
भावनाहि भोग में मगन दिन-रैन रहैं,
ताके नैन ताके, नित छाके[4] रहियतु हैं।
और मतवारे[5] मतवारे नाहिं 'नागर' वै,
प्रेम-मतवारे मतवारे कहियतु हैं॥१॥

सवैया

'नागर' वेद पुरान पढ़्यो सब बादि[6] कै कीन्हीं कई मति पाँगुरी[7]।
गंग औ गोमती न्हात फिर्यो अति सीत में प्रीत सों हाथ लै काँगुरी॥
गल्यका[8] न्हाय गोदावरि न्हायो सु त्यागि दो अन्न रु खावत सागुरो[9]॥
और हूँ न्हायो सुमैं न बदी[10] जुपै नेह[11]-नदी में न दी पग-आँगुरी॥२॥

कवित्त

काहे कोरे[12] नाना मत सुनै तू पुरानन के,
तैंही कहा तेरी मूढ़, गूढ़ मति पंग की।
वेद के बिबादनि कौ पावेगो न पार कहूँ,
छाँड़ि देहि आसा सब दान-न्हान गंग की॥
और सिद्ध सोधे[13] अब 'नागर' न सिद्ध कछू,
मानि लेहि मेरी कही बारता सुढंग[14] की।

[1]दिखाई देते है। [2]ऐसे...गहियतु है—भगवद्भक्तिरूपी मदिरा पीने पर ऐंठ नहीं आती, बल्कि नम्रता आ जाती है। [3]नम्रता शील। [4]छके हुए। [5]मतवाले, मदोन्मत्त किसी मत वा धर्म के मानने वाले। [6]व्यर्थ। [7]लँगड़ी; किंकर्त्तव्यविमूढ़। [8]नदी-विशेष। [9]साग; फल-फलारी। [10]मानी। [11]नेह-नदी...आँगुरी—यदि प्रेमरूपीनदी में पैर की अँगुली नहीं डुबोई, अर्थात् यदि प्रेम के निकट नहीं गये। [12]व्यर्थ; कष्ट-साध्य, रूखे-सूखे। [13]साधने से, खोजने से। [14]सुख।

जाहि ब्रज भोरे[1], कोरे मन कों रँगाइ लै रे,
बृंदाबन-रैन[2] रची गौर-स्याम-रंग[3] की ॥३॥

अड़िल्ल

संग फिरत है काल, भ्रमत नित सीस पर ।
यह तन अति छिनभंग, धुँवे को धौं लहर ॥
यातें दुरलभ साँस[4] न वृथा गमाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥४॥
चली जाति है आयु जगत-जंजाल में ।
कहत टेरिकैं घरी-घरी घरियाल[5] में ॥
समै चूकिकैं काम न फिरि पछताइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥५॥
सुत-पित-पति-तिय मोह महादुखमूल है ।
जग-मृग-तृस्ना देखि रह्यौ क्यों भूल-है ?
स्वपन-राज-सुख पाय न मन ललचाइए ।
ब्रज नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥६॥
कलह-कलपना, काम-कलेस निवारनौ ।
परनिंदा परद्रोह न कबहुं बिचारनौ ॥
जग-प्रपंच[6]-चटसार[7] न चित्त पढ़ाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥७॥
अंतर कुटिल कठोर भरे अभिमान सों ।
तिन के गृह नहिं रहैं संत सनमान सों ॥
उनकी संगति भूलि न कबहूँ जाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥८॥
कहूं न कबहूं चैन जगत दुखकूप है ।

[1] सवेरे; जल्दी । [2] रँगने का बर्तन । [3] राधाकृष्ण की भक्ति । [4] व्यर्थ समय न नष्ट करना चाहिए । [5] घंटा । [6] सांसारिक जंजालरूपी । [7] पाठशाला ।

हरि-भक्तन कौ संग सदा सुखरूप है ।।
इनके ढिग आनंदित समै बिताइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ।।९।।
कृष्ण-भक्ति-परिपूरन जिनके अंग हैं ।
दृगनि परम अनुराग जगमगै[1] रंग हैं ।।
उन संतन के सेवत दसधा[2] पाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ।।१०।।
ब्रज-बृंदाबन स्याम-पियारी भूमि हैं ।
तहँ फल-फूलनि-भार रहे द्रुम झूमि हैं ।।
भुव दंपति-पद-अंकनि लोट लुटाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ।।११।।
नंदीस्वर[3], बरसानो[4], गोकुल गाँवरो ।
बंसीबट संकेत[5], रमत तहँ साँवरो ।।
गोबर्धन राधाकुंड[6] सु जमुना जाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ।।१२।।
नंद-जसोदा, की रति-श्रीबृषभान हैं ।
इनतें बड़ो न कोऊ जग में आन हैं ।।
गो-गोपी-गोपादिक-पद-रज ध्याइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ।।१३।।

[1]प्रकाशित हो रहा है । [2]भक्ति के दस प्रकार; प्राय: भक्ति नौ प्रकार की मानी गयी है—अर्थात् श्रवणं, कीर्तनं विष्णा:, स्मरणं, पाद-सेवनम् । अर्चनम्, बंदनं, दास्यं, सख्यमात्म-निवेदनम्।। 'नारद-भक्ति-सूत्र' में दशवीं और ग्यारहवीं भक्ति का भी उल्लेख आया है, जिनके नाम प्रेमासक्ति और परम विरहासक्ति हैं । [3]ब्रज का एक पवित्र स्थान । [4]महाराज बृषभानु का गाँव, जो नंदगाँव के समीप ही है । [5]स्थान विशेष । [6]एक कुंड, जो गोवर्धन के समीप है; श्रीहित-हरिवंशजी प्राय: यहीं रहा करते थे ।

बँधे उलूखल लाल[1] दमोदर हारिकैं ।
बिस्व[2] दिखायौ बदन वृत्त दिय तारिकैं ॥
लीला ललित अनेक पार कित पाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥१४॥
मेटि महोच्छव[3] इंद्र कुपित कीन्हों महा ।
जल बरसायो प्रलयकरन कहिए कहा ॥
गिरि धरि करो सहाय सरन जिहि जाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥१५॥
राधा-हित ब्रज तजत नहीं पल साँवरो ।
नागर नित्य बिहार करत मनभावरो[4] ॥
राधा-ब्रज-मिश्रित जस रसनि रसाइए[5] ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥१६॥
ब्रज-रस-लीला सुनत न कबहुँ अघावनो ।
ब्रजभक्तन, सत-संगति प्रान पगावनो ॥
'नागरिया' ब्रजवास कृपा-फल पाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥१७॥

पद

हम ब्रज सुखी ब्रज के जीव ।
प्रान तन मन, नैन सर्बसु, राधिका कौ पीव[6] ॥

[1]दामोदरलाल, श्रीकृष्ण; आप का यह नाम उलूखल-बंधन के बाद पड़ा । [2]विश्व... वदन—एक बार श्रीकृष्ण ने बाल-भाव से मिट्टी खा ली । यशोदा जी ने डाँटकर मुँह से मिट्टी उगलने को कहा । श्रीकृष्ण ने ज्योंही मुँह खोला, यशोदा देखती क्या है कि इतने छोटे मुँह में सारा संसार समाया हुआ है ? यह लीला देख कर उनका सारा मोह भंग हो गया । [3]महोत्सव; इंद्र-पूजा । [4]मन-चाहा, प्राण-प्यारा । [5]रसों का वर्णन कर या अनुभव कर आनंद लूटना चाहिए । [6]प्यारा ।

कहां आनँद मुक्ति में, यह कहां मृदु मुसकान ।
कहां ललित निकुंज लीला, मुरलिका कलगान ॥
कहां है यह सरद-रजनी, जोन्ह[1] जगमग जोति ।
कहां नूपुर-बीन-धुनि मिलि रास-मंडल होति ॥
कहां पाँति कदंब की, झुकि रही जमुना-बीच ।
कहां रंग-बिहार फागुन, मचत केसर कीच ॥
कहां लंगर[2] सखा सोहन, कहां उनकौ हासि ।
कहां गोरस छाँछि[3] टेंटी[4], छाक रोटी रासि ॥
कहां स्रवनन कीरतन, जगमगनि दसधा रंग ।
कहां गदगद रोमहर्षन, प्रेम-पुलकित अंग ॥
जहां एतौ बस्तु पैयत, बीच बृंदाधाम ।
हौंऽब[5] ऐसे ब्रज सुखद सों काहि रे बेकाम ॥
'दास नागर' चहत नहिं सुख मुक्ति आदि अपार ।
सुनहुँ ब्रज बसि स्रवन में ब्रजबासिनेन की गार[6] ॥१८॥

हमारे मुरलीवारौ स्याम ।

बिनु मुरली बनमाल चंद्रिका, नहिं पहिंचानत नाम ॥
गोपरूप बृंदाबन-चारी, ब्रज-जन-पूरन-काम ।
याही सों हित चित्त बढ़ौ नित, दिन-दिन पल छिन जाम ॥
नंदीसुर, गोबर्धन, गोकुल, बरसानो बिस्राम ।
'नागरिदास' द्वारिका-मथुरा, इनसों कैसो काम ॥१६॥*

[1] चाँदनी। [2] उत्पात करने वाले, छेड़खानी करने वाले। [3] मट्ठा। [4] करील का फल; इसका अचार रखा जाता है। [5] हौं अब। [6] प्रेम भरी गालियां।

* नागरीदास जी ब्रजवासी श्रीकृष्ण के उपासक थे। उन्हें ब्रज के आगे मथुरा और द्वारका का राज्यैश्वर्य तुच्छ जान पड़ता है। इस पद में 'माधुर्य-भावानन्यता' का बड़ा ही उत्तम वर्णन किया गया है।

चरचा करो कैसे जाय।
बात जानत कछुक हमसों, कहत जिय थहराय॥
कथा अकथ सनेह की, उर नाहिं आवत और।
बेद-संमृति[१]-उपनिषद[२] कों, रही नाहिंन ठौर॥
मनहि में है कहनि ताकी, सुनत[३] स्रोता-नैन।
सोऽब[४] नागर लोग बूझत, कहि न आवत बैन॥२०॥

कहां वे सुत नाती हय हाथी।
चले निसान बजाइ अकेले, तहँ कोउ संग न साथी॥
रहे दास-दासी मुख जोवत, कर मीड़ैं सब लोग।
काल गह्यौ तब सब हीं छाँड्यो, धरे रहे सब भोग॥
जहां-तहां निसिदिन विक्रम कों, भट्ट[५] कहत बिरदत्त[६]।
सो सब बिसरि गये एकै रट, राम-नाम कहैं सत्त॥
बैठन देत हुते नहिं माखी, चहुँ दिसि चँबर सचाल।
लिये हाथ में लट्ठा ताका, कूटत मित्र कपाल॥
सौंधे[७]-भीगो गात जारिकैं, करि आये बन ढेरी।
घर आयेतें भूलि गये सब, धनि माया हरि, तेरी॥
'नागरिदास' बिसरिए नाहीं, यह गति अति असुहाती।
काल-ब्याल कौ कष्ट-निवारन, भजि हरि जनम-सँगाती[८]॥२१॥

जो मेरे तन होते दोय।
मैं काहू तें कछु नहिं कहतो, मोतें कछु कहतो नहिं कोय॥
एक जु तन हरि-बिमुखनि के सँग रहतो देस-बिदेस।
बिबिध भाँति के जग-दुख-सुख जहँ, नहीं भक्ति-लव-लेस॥
एक जु तन सतसंग-रंग रँगि, रहतो अति सुख-पूरि।

[१]स्मृति; धर्मशास्त्र-संबंधी ग्रंथ। [२]अध्यात्मविद्या-संबंधी ग्रंथ। [३]जिसे नेत्र-रूपी श्रोता ही सुनते हैं, अर्थात् जो देखते ही बनता है, कहते नहीं। [४]सो अब। [५]भाट, बंदीजन। [६]यश। [७]सुगंध, इत्र। [८]सदा साथ रहने वाला।

जनम सफल कर लेतो ब्रज बसि, जहँ ब्रज-जीवन-मूरि ॥
द्वै तन बिन द्वै काज न ह्वै हैं, आयु सु छिन-छिन[1] छीजै ।
'नागरिदास' एक तनतें अब, कहौ, कहा करि लीजै ॥२२॥

दरपन[2] देखत, देखत नाहीं ।
बालापन फिरि प्रगट स्याम कच, बहुरि स्वेत ह्वै जाहीं ॥
तीन रूप या मुख के पलटे, नहिं अयानता[3] छूटी ।
नियरे आवत मृत्यु न सूझत, आँखें हिय की फूटी ॥
कृष्ण-भक्ति-सुख लेत न अजहूँ, वृद्ध देह दुख-रासी ।
'नागरिया' सोई नर निहचै, जीवत नरक-निवासी ॥२३॥

हरिजू अजुगत[4] जुगत करेंगे ।
परबत ऊपर बहल[5] काँच की नीके लै निकरेंगे ॥
गहिरे जल पाषान नाव बिच, आछी भाँति तरेंगे ।
मैन-तुरंग[6] चढ़े पावक बिच, नाहीं पिघरि[7] परेंगे ॥
याहू तें असमंजस हो किन, प्रभु दृढ़ करि पकरेंगे ।
'नागर' सब आधीन कृपा के, हम इन डर न डरेंगे ॥२४॥

दुहुँ भाँतिन कौ मैं फल पायो ।
पाप किये तातें बिमुखन सँग, देश-देश[8] भटकायो ॥
तुच्छ कामना-हित कुसंग बसि, झूठे लोभ लुभायो ।
कौन पुन्य अब वृंदाबन, बरसाने सुबस[9] बसायो ॥

[1]क्षीण होती चली जा रही है। सारांश यह, कि एक शरीर से पूरे तौर पर एक ही काम हो सकता है। [2]दरपन...नाहीं—दर्पण में मुँह देखता हुआ भी यह नहीं देखता कि बुढ़ापा और मौत पास आती जाती है। [3]अज्ञानता। [4]अयुक्त, असंभव। [5]काँच की गाड़ी, जो पत्थर की ठोकर से टूट-फूट जाती है। [6]मोम का घोड़ा। [7]पिघलेंगे नहीं। [8]नागरीदासजी को बादशाह की ओर से काबुल की लड़ाई में जाना पड़ा था। दूसरे, गृह-कलह-वश इधर-उधर भागना पड़ा था, यही उल्लेख इस पद में किया गया है। [9]स्वतंत्र, सुखपूर्वक।

आनँदनिधि ब्रज-अनन्य[1]-मंडली, उर लगाय अपनायो।
सुनिबेहू को दुर्लभ सो सब, रस बिलास दरसायो॥
स्यामा-स्याम 'दास नागर' कौ, कियो मनोरथ भायो॥२५॥

हमारी तुमसों हरि, सुधरेगी।
बहुत जनम हम जनम बिगार्यो, अबहूँ बिगरि परेगी?
प्रीति-रीति पूरन नहिं, कैसे माया-ब्याधि टरेगी।
'नागरिया' की सुधरेगी जो, अँखियां इतहिं ढरेंगी॥२६॥

हमारी सबही बात सुधारी।
कृपा करो श्रीकुंजबिहारिनि, अरु श्रीकुंजबिहारी॥
राख्यो अपने बृंदाबन में, जिहि ठां[2] रूप-उजारी[3]।
नित्य केलि-आनंद अखंडित, रसिक संग सुखकारी॥
कलह-कलेस न ब्यापै इहि ठां, ठौर बिस्व[4] तें न्यारी।
'नागरिदासहि' जनम जितायो, बलिहारी, बलिहारी॥२७॥*

ब्रज के लोग सब ठग महा।
आप ठग, ठग[5] के उपासक, अधिक कहिए कहा॥
कनक-बीज[6] सी बचन-रचना देत तनिक चखाय।
बावरो ह्वै रहत सो फिरि धाम धन बिसराय।
छाड़िकैं[7] रज लुटत रज में दीन दीसत अंग।
और जग-सुख-रंग उड़िकैं चढ़त कारो-रंग[8]॥
भूमि ठग, द्रुम, देस ठग इत ठगे स्याम सुजान।
राखैं सयानप सोऽब इनके और कौन समान॥

[1]अनन्य भक्तों की मंडली। [2]स्थान। [3]दिव्य-स्वरूप का नित्य प्रकाश। [4]पाँचभौतिक संसार से परे (गोलोक)। [5]ठग के उपासक—भक्तों के मन को ठगने वाले श्रीकृष्ण के उपासक। [6]सोने के ऐसे बीज के ही मधुर और प्यारे। [7]छाड़िकैं... रज में—राजसी अहंकार छोड़ कर ब्रज की धूल में लोटते है। [8]श्रीकृष्ण का रंग।

*'आत्म-तुष्टि' का यह बडा ही उत्तम पद है।

इहां आवत हीं परत दृढ़ प्रेम की गर-पास[1] ।
भूलि ह्यां कोउ आइयो मति कहत 'नागरिदास' ॥२८॥*

भक्ति बिन हैं सब लोग निखट्टू[2] ।
आपस में लड़िबे-भिड़िबे को, जैसे जंगी टट्टू[3] ॥
नित उनकी मनि भ्रमत रहत है, जैसे लोलुप लट्टू ।
'नागरिया' जग में वे उछरत, जिहि बिधि नट के बट्टू[4] ॥२९॥

बृंदाबिपिन रसिक-रजधानी ।
राजा रसिकबिहारी सुंदर, सुंदर रसिकबिहारिनि रानी ॥
ललितादिक ढिग रसिक सहचरी, सुंदर जुगल-रूप[5]-मदपानी ।
रसिक टहलनी[6] बृंदा देवी, रचना रुचिर निकुंज सुहानी ॥
जमुना रसिक, रसिक द्रुम-बेली, सोहै रसिक-भूमि सुखदानी ।
इहां रसिक चर[7] थिर 'नागरिया', रसिकहि रसिक सबै गुनगानी ॥३०॥

किते दिन बिन बृंदाबन खोये ।
योंही बृथा गये ते अबलौं, राजस - रंग - समोये[8] ॥
छाँड़ि पुलिन फूलनि की सैज्या, सूल सरनि सिर सोये ।
भीजे[9] रसिक अनन्य न दरसे, बिमुखनि के मुख जोये[10] ॥
इकरस[11] ह्यां के सुख तजि कैं, ह्यां कबौं हँसे कबौं रोये ।
कियो न अपनो[12] काज, पराये भार सीस पर ढोये ॥
पायो नहिं आनंद-लेस मैं, सबै देस टकटोये[13] ।
'नागरिदास' बसे कुंजन में, जब सब बिधि सुख भोये[14] ॥३१॥

[1]फंदा । [2]पुरुषार्थ-हीन । [3]लड़ाके घोड़े । [4]बटा, लोहे का गोला जिसे नट लोग उछाला करते हैं । [5]रूप-रूपी मद्य पानेवाली । [6]दासी । [7]चैतन्य । [8]लीन । [9]भाव में सराबोर । [10]देखे । [11]सदा एक से रहनेवाले; अखंड । [12]आत्म-सुधार । [13]खोज डाले । [14]भोगे ।

*प्रेमपूर्ण व्यंग्य का क्या ही सुंदर पद है ?

जो सुख लेत सदा ब्रजबासी ।
सो सुख सपनेहूँ नहिं पावत, जे जन हैं बैकुंठ-निवासी ॥
ह्यां घर-घर है रह्यो खिलौना, जगत कहत जाकों अबिनासी ।
'नागरिदास', बिस्व तें न्यारी, लगि गई हाथ, लूट सुखरासी ॥३२॥

ब्रजबासी तें हरि की सोभा ।
बैनु अधर छबि भये त्रिभंगी, सो वा ब्रज की गोभा ॥
ब्रज-बन-धातु बिचित्र मनोहर, गुंज - पुंज अति सोहैं ।
ब्रजमोरनि कौ पंख सीस पर, ब्रज - जुवती-मन मोहैं ॥
ब्रज-रज नीकी लगति अलक पै, ब्रज - द्रुम फल उर माल ।
ब्रज-गउवन के पीछे आछे, आवत मद - गज[1]-चाल ॥
बीच लाल ब्रजचंद सुहाये, चहूँ ओर ब्रज- गोप ।
'नागरिया' परमेसुरहूँ की, ब्रज तें बाढ़ी ओप[2] ॥३३॥

ब्रज सम और कोउ नहिं धाम ।
या ब्रज में परमेसुरहूँ के, सुधरे सुंदर नाम ॥
कृष्णनाँव यह सुन्यो गर्ग[3] तें, कान्ह - कान्ह कहि बोलैं ।
बाल-केलि-रस-मगन भये सब, आनँद - सिंधु - कलोलैं ॥
जसुदानंदन, दामोदर, नवनीत[4]-प्रिय, दधिचोर ।
चोर-चोर, चित-चोर, चिकनियां[5], चातुर, नवलकिसोर ॥
राधा - चंद - चकोर, साँवरो, गोकुलचँद, दधिदानी[6] ।
श्रीवृंदाबन-चंद, चतुर चित, प्रेम-रूप अभिमानी ॥
राधारमन सु राधाबल्लभ, राधाकांत, रसाल ।
बल्लभ-सुत[7], गोपीजन-बल्लभ, गिरिवर-धर, छबि-जाल[8] ॥
रासबिहारी, रसिकबिहारी, कुंजबिहारी स्याम ।

[1]मस्त हाथी । [2]तेज; शोभा । [3]यादव-वंशियों के कुलगुरु । [4]जिनको मक्खन प्यारा है । [5]छैला । [6]दही का दान माँगने वाले । [7]श्रीवल्लभाचार्यजी के पुत्र । [8]अत्यंत सुंदर ।

बिपिनबिहारी, बंकबिहारी[1], अटलबिहारऽभिराम[2] ।।
छैलबिहारी, लालबिहारी, बनवारी, रसकंद[3] ।
गोपीनाथ, मदनमोहन, पुनि बंसीधर, गोविंद ।।
ब्रजलोचन, ब्रजरमन, मनोहर, ब्रजउत्सव[4], ब्रजनाथ ।
ब्रजजीवन, ब्रजबल्लभ सबके, ब्रजकिसोर, सुभगाथ[5] ।।
ब्रजभूषण, ब्रजमोहन, सोहन[6], ब्रजनायक, ब्रजचंद ।
ब्रजनागर, ब्रजछैल, छबीले, ब्रजवर, श्रीनँदनंद ।।
ब्रज-आनँद, ब्रजदूलह नितहीं, अति सुंदर ब्रजलाल ।
ब्रज-गउवन के पाछे आछे[7], सोहत ब्रजगोपाल ।।
ब्रज - संबंधी नाम लेत ये, ब्रज की लीला गावै ।
'नागरिदासहिं' मुरलीवारो, ब्रज कौ ठाकुर भावै ।।३४।।

मनोरथ-मंजरी*

दोहा

मो नैनन की ठौर कों, कब[8] लैहै वह रूँध ।
तीन - ताप - सीतलकरन, सघन तरुन[9] की धूँध ।।३५।।
कब बृंदाबन-धरनि में, चरन परेंगे जाय ।
लोटि धूरि, धरि सीस पर, कछु[10] मुखहूँ में पाय ।।३६।।
पिक, केकी, कोकिल-कुहुक, बंदर-बृंद अपार ।
ऐसे तरु लखि निकट कब, मिलिहों बाँह पसार ।।३७।।

[1] बांकेबिहारी। [2] बिहार-अभिराम, सुंदर विहार करने वाले। [3] आनंदकंद। [4] ब्रज को सुख देने वाले। [5] पवित्र है कथा जिनकी। [6] सुंदर। [7] अच्छे। [8] कब…रूँध—वह कब ढक लेगी। [9] तरुन की धूँध—पेड़ों की अँधेरी छाया। [10] कछु…पाय—थोड़ी-सी मुँह में भी डाल कर।

* नागरीदासजी की सर्वप्रथम रचना यही है। इसका रचना-काल सं० १७८० है।

कबै रसीली कुंज में, हौं करिहौं परबेस[१] ।
लखि-लखि लताजु लहलही[२], चित ह्वैगो आबेस[३] ॥३८॥
प्रिय-परिकर के सुघरजन, बिरही-प्रेम-निकेत[४] ।
देखि कबै लपटायहौं, उनतें हिय करि हेत[५] ॥३९॥
कछु मोहूँ में प्रेम लखि, तब औरन तें फाट ।
कबै पुलिन[६] लै जाहिंगे, करन मानसी[७] ठाट ॥४०॥
जमुना-तट निसि चाँदनी, सुभग पुलिन में जाय ।
कब एकाकी[८] होयहौं, मौन बदन उर चाय[९] ॥४१॥
जुगलरूप - आसव - छक्यो, परे रीझ के पान ।
ऐसे संतन की कृपा, मो पै दंपति[१०] जान[११] ॥४२॥
कुंडल-झलक कपोल पर, राजति नाना भाँति ।
कब इन नैननि देखिहौं, बदन-चंद की काँति[१२] ॥४३॥
दमक दसनि, ईषद[१३] हँसनि, उपमा समसर[१४] है न ।
फैलि परत किरननि-निकर, कब देखौं इन नैन ॥४४॥
कब दुखदाई होयगो, मोको बिरह[१५] अपार ।
रोय-रोय उठि दौरिहौं, कहि-कहि, किन 'सुकुवाँर'[१६] ॥४५॥
ता दिन हीं तें छूटिहै, खान-पान अरु सैन ।
छीन देह, जीरन बसन, फिरिहौं हिये न चैन ॥४६॥
नैन द्रवै, जल-धार बह, छिन-छिन लेत उसाँस ।
रैनि अँधेरी डोलिहौं, गावत जुगल, उपास[१७] ॥४७॥
चरन छिदत काँटेन तें, स्रवत रुधिर, सुधि नाहिं ।

[१]प्रवेश । [२]हरी-भरी । [३]प्रेमानंद । [४]प्रेम-स्वरूप । [५]प्रेम । [६]किनारा । [७]मानसी शृंगार; भगवान की मानसी भावना । [८]अकेला; विरक्त । [९]चाह, प्रेम । [१०]श्रीराधाकृष्ण । [११]प्यारे । [१२]कांति । [१३]मंद-मंद । [१४] बराबरी । [१५]भगवद्-विरह; विरहासक्ति सर्वोत्कृष्ट भक्ति है । [१६]सुकुमार; श्रीराधाकृष्ण । [१७]उपास्य; इष्टदेव ।

पूँछत हौं फिरिहौं भटू[१], खग, मृग, तरु बन माहिं ॥४८॥
हेरत, टेरत डोलिहौं, कहि-कहि स्याम सुजान ।
फिरत-गिरत बन सघन में, यौंही छुटिहैं प्रान ॥४९॥
कबै मनोरथ सिद्ध ये, ह्वैहैं मेरे लाल ।
सतसंगति तें दूर नहिं, जानैं रसिक रसाल ॥५०॥
परम मित्र[२] आग्या दई, मेरेहूँ हित बास ।
नवल 'मनोरथ-मंजरी', करी[३] 'नागरीदास' ॥५१॥
जो बाँचै सीखै सुनै, रीझि करै फिरि प्रस्न[४] ।
सो सतसंगति कीजियौ, पहुँचै 'जय श्रीकृस्न'[५] ॥५२॥

पद

नंद-सुत नित्यरस बाललीला-मगन,
उदधि आनंद गोकुल कलोलैं ।
गौर[६] अरु स्याम अभिराम भैया दोऊ,
ललित लरिकान लिय संग डोलैं ॥
भवन प्रति भवन चलि चोरहीं दूध दधि,
रतन भूषन बदन तन उजेरैं ।
खात, लपटात, ढरिकात[७] फिरि हँसि भजत,
चकृत ह्वै भवन निज भवन हेरैं ॥
कबहुँ गहि-गहि फिरत पूँछ बछियान की,
किंकिनी कनक कटि मधुर बाजैं ।
गोप-गोपीन मन दृगनि से खिलौना खिलत[८],
मुख-कमल मुरि[९] हँसनि भ्राजैं ॥

[१]गोपीजन । [२]यहां परम मित्र से, जान पड़ता है, कविवर आनंदघनजी से आशय है । [३]रची । [४]प्रश्न । [५]उसे मेरी "जय श्रीकृष्ण" पहुँचे । वल्लभकुलावलंबी वैष्णव आपस में 'जय श्रीकृष्ण' कह कर दंडवत प्रणाम करते हैं । [६]रोहिणी के पुत्र श्रीबलभद्रजी । [७] गिरा देते है । [८]प्रफुल्लित । [९]मुड़ कर ।

बदन दधि-छींट-छबि, धूरि-धूसरित अँग,
अबहिं तें मदन-गति पगनि पेलैं ।
कंठ बघना[1] दिये पाय पैंजनि झनक,
दास 'नागर'-हिये-अँगन खेलैं ॥५३॥*

शृंगार-सागर

दोहा

अरी, छिमा कर मुरलिया, परत तिहारे पाय ।
और सुखी सुनि होत सब, महादुखी हम हाय ॥५४॥
कियो न, करिहै कौन नहिं, पिय सुहाग कौ राज ।
अरी, बावरी बँसुरिया, मुख-लागी मति गाज ॥५५॥
तो कारन गृह-सुख तजे, सह्यौ जगत कौ घैर ।
हमसों तोसों मुरलिया, कौन जनम कौ बैर ॥५६॥
ऐ अभिमानी मुरलिया, करी सुहागिनि स्याम ।
अरी, चलाये सबनि पै, भले[2] चाम के दाम ॥५७॥
मुख मूँदे रहु मुरलिया, कहा करति उतपात ।
तेरे हाँसी घर-बसी, औरन के घर जात[3] ॥५८॥
हरि चित लियो चुरायकैं, रह्यौं परत नहिं मौन ।
तापर बंसी बाज मति, देत कटे पर लौन ॥५९॥
तूहूँ ब्रज की मुरलिया, हमहूँ ब्रज की नारि ।
एक बास[4] की कान करि, पढ़ि-पढ़ि मंत्र न मारि । ६०॥

[1]बाघ के नख, जो सोने की तावीज मे मढ़ाकर बच्चों को पहनाये जाते है । कहते हैं, बघनहा के पहना देने मे लड़कों को नज़र नहीं लगती । [2]झूठे सिक्के भी असल के भाव चला दिये ! [3]दूसरों का घर और कुटुंब मे हाथ धोना पड़ता है । [4]एक जगह पर रहने के नाते तू मर्यादा न तोड़, कुछ तो शान्त रख ।

* यह वात्सल्य-रस का पद सूरदासजी के तत्संबंधी पदों से किसी अंश में कम नहीं है ।

मति मारै सर तानिकैं, नातो इतो बिचारि ।
तीन लोक सँग गाइए, बंसी अरु ब्रजनारि ॥६१॥
सब कौ मन लै हाथ में, पकरि नचाई हाथ ।
एक हाथ की मुरलिया, लगि पिय-अधरनि साथ ॥६२॥*
बंस-बंस में प्रगट भई, सब जग करत प्रसंस ।
बंसी हरि-मुख सों लगी, धन्य बंस कौ बंस ॥६३॥
फूँकनि के चल तीर तन, लगे परतु नहिं चैनु ।
अँग-अँग आप बिधाइकैं, हमहू बेधतु बैनु ॥६४॥
हा हा ![1] अब रहि मौन गहि, मुरली करति अधीर ।
मोसी[2] ह्वै जो तू सुनै, तब कछु पावै पीर ॥६५॥
सबद सुनावत हमहिं तूँ, देत नहीं छिन चैनु ।
अनबोलो[3] रहु तनिक तो, ऐ बकवादी बैनु[4] ॥६६॥
थिर[5] कीन्हें चर, चर सुथिर, हरि-मुख मुरली बाजि ।
खरब सुकीनों सबनि कों, महागरब सों गाजि ॥६७॥

इश्क-चमन

दोहा

इस्क उसी[6] की झलक है, ज्यौं सूरज की धूप ।
जहां इस्क तहँ आपु है, कादिर नादिर रूप ॥६८॥

[1]तेरी विनय करती है । [2]मोसी ..पीर—मेरी तरह; हे मुरली, एक क्षण के लिए यदि तू गोपी बन कर अपना घातक शब्द सुन ले, तो हमारी वेदना समझ में आ जाय । [3]मौन । [4]बाँसुरी । [5]थिर...सुथिर—जड़ को चैतन्य और चैतन्य को जड़ बना दिया, ऐसा तेरा प्रभाव है ! यह भाव गोसाईं तुलसीदासजी की इस चौपाई से मिलता है—"जो न जनम जग होत भरत को । अचर सचर, चर अचर करत को ॥" [6]परमात्मा की ।

*जो कहीं मुरली के दो हाथ होते, तो न जाने, वह क्या कर डालती ।

कहूं किया नहिं इस्क का, इस्तैमाल सँवार[१] ।
सो साहिब[२] सों इस्क वह, करि क्या सकै गँवार ॥६६॥
सब मजहब सब इल्म अरु, सबै ऐस के स्वाद ।
अरे, इस्क के असर बिन, ये सब हीं बरबाद ॥७०॥
आया इस्क-लपेट में, लागी चस्म-चपेट ।
सोई[3] आया खलक में, और भरैं सब पेट ॥७१॥
कोइ न पहुँचा वहां तक, आसिक नाम अनेक ।
इस्क-चमन के बीच में, आया मजनूं[४] एक ॥७२॥
इस्क-चमन महबूब का, सँभल पाँउ धरि आव ।
बीच राह[५] के बूड़ना, ऊबट[६] माहिं बचाव ॥७३॥
इस्क-चमन महबूब का, जहां न जावै कोइ ।
जावै सो जीवै नहीं, जियै सु बौरा[७] होइ ॥७४॥*
सीस काटिकें भू धरै, ऊपर रक्खै पाव ।
इस्क चमन के बीच में, ऐसा हो तो आव ॥७५॥
अरे पियारे, क्या करौं, जाहि रहो है लाग ।
क्योंकरि दिल-बारूद में, छिपै इस्क की आग ॥७६॥

[१]सँभाल कर; मन लगाकर । [२]परमेश्वर । [3]सोई ... में—उसी का संसार में जीना सफल है । [४]यह बहुत बड़ा प्रेमी था । कहते हैं, जब यह अपनी प्यारी लैला के विरह में मर गया, तब परमेश्वर ने धिक्कारते हुए इस से पूछा कि अगर तू जितना प्रेम उस नाचीज़ लैला पर करता था उससे आधा भी मुझ पर करता तो आज तू मुक्त ही न हो जाता ! इस पर मजनूं ने जवाब दिया, कि अगर आपको अपने पुजाने की ही इच्छा थी, तो लैला का रूप धर कर मेरे पास क्यों न आ गये ? मेरे लिए तो लैला ही परमेश्वर है ! [५]शास्त्रोक्त मार्ग । [६]मरे-मिटे प्रेमियों का मार्ग । [७]गूँगा ।

*यह दोहा कबीरदासजी की साखियों में भी कुछ पाठ-भेद से पाया जाता है ।

आतिस[1] लपटै राग की, पहुँचै दिल बिच जाय ।
दबी इस्क-बारूद की, भभकनि लागी लाय ॥७७॥

कवित्त

बृंदाबन-काननं में भीर है बिमानन की,
देवबधू देखि-देखि भई हैं मनंचला[2] ।
बंसी कल गान कै बितान धुनि बायु बँध्यो,
रमा लोक लोभित ह्वै भूली उर-अंचला ॥
द्वै द्वै-बिच गोपिन के ललित त्रिभंगीलाल,
'नागरिया' पदन्यास[3] बजै छुन-छुंछुला[4] ।
रास-रंग-मंडल अखंड रत भेद-हाव,
संग ह्वै भ्रमत मानों मेघ-चक्र चंचला[5] ॥७८॥

दोहा

यह बृंदाबन, यह समै, यह दंपति की प्रीति ।
'नागरिया' के हिय बसौ, नित-बिहार-रस-रीति ॥७९॥

बिहार-चंद्रिका

रोला

उज्ज्वल पख की रैन, चैन उज्ज्वल रसदैनी[6] ।
उदित भयौ उडुराज अरुनदुति मन-हर-लैनी ॥
दहनमान पुर भये मिलन को मन हुलसावत ।
छावत छपा अमंद चंद ज्यों-ज्यों नभ आवत ॥
जगमगात बन-जोत सोत[7] अमरत-धारा से ।
नवद्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा-से ॥

[1]आग । [2]मन चंचल हो गया है जिनका । [3]नृत्य करते समय पैरों का रखना और उठाना । [4]नूपुर का शब्द विशेष । [5]बिजली; यहां गोपियों से आशय है । [6]दिव्यानंद देने वाली । [7]स्रोत ।

स्वेत रजत की रैन, चैन चित मैन-उमहनी ।
तैसिय मंद-सुगंध पौन दिन मनि-दुख-दहनी ॥
अधिनायक गिरिराज पदिक बृंदाबन-भूषन ।
फटिक-सिला मनि-सृंग जगमगत दुति निर्दूषन ॥
सिला-सिला प्रतिचंद चमकि किरननि छबि छाई ।
बिच-बिच अब कदंब झब झुकि पाइन आई ॥
ठौर-ठौर चहुँ फेर, ढेर फूलन के सोहत ।
आवत सुखद सुगंध अंध-मद[1] भँवर बिमोहत ॥
बिमल नीर निरझरत कहूँ झरना सुखकरना ।
महासुगंधित सहज बास कुंकुम मदहरना ॥
ठौर-ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सो भारी ।
बिहरत बिबिध बिहार तहां गिरि पर गिरिधारी ॥८०॥

---

[1] मदांध ; मतवाले ।

अलबेलीअलि

छप्पय

गुरु-गोबिंद में भेद-भाव नहिं कछुवै मान्यो ।
भजन-कीरतन चारु सारु जीवन कौ जान्यो ।।
सुधी, सुसील, सुसंत सहजरस-रास रँगीलो ।
निरमत्सर, निरद्वंद, कंद नवनेह-रसीलो ।।
रचि 'समय-प्रबंध-पदावली' लली-लाल गुन-गान कर ।
श्रीबंसीअलि कौ सिष्य श्रीअलबेलीअलि रसिक-वर ।।

—वियोगी हरि

अलबेलीअलिजी महात्मा वंशीअलिजी (वंशीधर) के कृपापात्र शिष्य थे । वंशीअलिजी श्रीनारायण मिश्र की वंश-परंपरा में हुए हैं । नाभाकृत भक्तमाल में इनके संबंध का यह छप्पय प्रसिद्ध है :

भागवत भली बिधि कथन कों धनि जननी एकै जनो ।

इत्यादि

पूज्यपाद स्वर्गीय श्रीराधाचरण गोस्वामी श्रीवंशीअलिजी के विषय में लिखते हैं : "वंशीअलिजी ने बरसाने में श्रीललिताजी की उपासना कर के श्रीप्रियाजी का दर्शन पाया । इनका जन्म विक्रम की १८ शताब्दी के आदि में हुआ ।" गोस्वामीजी ने, इनके संबंध में, अपनी "नव-भक्तमाल" में यह छप्पय भी लिखा है :

श्री बरसाने बास बरस द्वादस दृढ़ कीनों ।
श्रीललिता-सँग आपु लाड़िली दरसन दीनों ।।
रहस-केलि-माधुर्य मधुर पद लीला गायी ।
प्रेम-पंथ अति गूढ़, तासु पदवी दरसायी ।।

श्रीरासेस्वरी-कृपा-कुसल निज परिकर में अपनई ।
श्रीबंसीअलि आचार्य श्रीललिता जिमि सहचरिं भई ।।

वंशीअलिजी के प्रधान शिष्य किशोरीअलिजी थे । इनका यह पद प्रसिद्ध है :

श्री बृंदाबन बृंदाबन बृंदाबन कहु रे ,
बृंदाबन-रज की तू सरन बेगि गहु रे ।।

अलबेलीअलिजी के संबंध में विशेष ऐतिहासिक वृत्त नहीं मिलता । इन्होंने अपने 'गुरु-संबंध' के विषय में—गुरु-परंपरा में—केवल इतना ही लिखा है :

पुरुषार्थः शुद्ध सख्यं तत्प्रख्यं सर्वमेव हि ।
यत्प्रसादान्मया प्राप्तं सा वंश्यालिर्गतिर्मम ।।

यह विष्णुस्वामि-संप्रदाय में हुए हैं । इन्होंने संस्कृत में गुरु-परंपरा का आद्यंत वर्णन किया है । अनुमान से इनका जन्म १८ शताब्दी के मध्य में माना जा सकता है ।

अलबेलीअलिजी का 'समय-प्रबंध-पदावली' नाम का एक ग्रंथ संवत् १९५८ में श्रीमान् बाबू जगन्नाथदास, बी० ए० (रत्नाकर) द्वारा प्रकाशित हुआ था । उसमें इनके विषय में एक पंक्ति भी नहीं लिखी है । विनोद में भी इनका नामोल्लेख नहीं किया गया है । यह भाषा के सुकवि होने के अतिरिक्त संस्कृत के भी अच्छे पंडित थे । इनका लिखा 'श्रीस्तोत्र' एक सुंदर काव्य-ग्रंथ है । उदाहरणार्थ, उसमें से दो श्लोक लिखे जाते हैं :

श्रीराधिकां ललितया सहितां प्रसन्नां,
या लालयत्यतिसुभाषितचारुहासैः ।।
निःश्रेयसे समभवन्नति यामराणाम्,
सा वंशिकास्फुरतु मे हृदि सुन्दरास्या ।।
कमलिनी मलिनी मलिनी कृता,
भुवि न ते विनते विनते स यः ।
विशमलं शमलं शमलंकरो

भवतु मेवतु मेवतु मेदिनीम् ॥

'समय-प्रबंध-पदावली' में 'अष्टयाम' विषयक ३१३ अनूठे भावपूर्ण पद हैं। आदि में, श्रीवंशीअलि-संबंधी 'मंगल' भी अपूर्व है। गान-विद्या में भी यह परम दक्ष थे। इनके सभी पद संगीत-संगत और सुसंस्कृत हैं। आपके कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :

सूहो

जय जय श्रीबंसीअलि, जे अनुगत[1] भये।
भर्म भूलि जग-द्वंद तिमिर हिय के गये ॥
प्रेम-सुधारस-सिंधु-मगन मन मीन-से।
निरभय, निरअभिमान, सबन सों दीन-से ॥
दीन-से रहैं संतजन सों, रूप में नैना जके[2]।
फिरत झूमत प्रेम-बिह्वल मनों मादिक-मद-छके ॥
बसि सु बृंदाबिपिन संतत सुख सुमन भाये लये।
जय जय श्रीबंसीअलि जे अनुगत भये ॥१॥
जय जय 'श्रीबंसीअलि' आनँदकंदना।
रसिक-चकोरन हेतु सुप्रगट्यो चंदना[3] ॥
बरसत आनँदसिंधु अतिहि सुखदाइनो।
हियो-नैन-मन-पुंज-कुमुद - बिगसाइनो[4] ॥
कुमुद बिगसत मोद दिन-दिन किरिन कृपा पसारहीं।
द्वंद कलिमल मिटत तम सब जोन्ह[5] हिम संचारहीं ॥
झलकै सुबैनन माधुरी बिबि रसिकमनि बर राजहीं।
जाके सुहृदय प्रकास है यह कलपतरु बड़ साजहीं ॥२॥
जय जय 'श्रीबंसीअलि' आनँद-रूपिनी।
दीनन सदा सहाई सुखद सरूपिनी ॥

[1] अनुगामी; शिष्य। [2] स्तंभित; टक लगाये। [3] चंद्रमा। [4] प्रफुल्लित कर देनेवाला। [5] चाँदनी, प्रकाश।

परमप्रेम, गुन, रूप अमित कवि को कहै ?
मीन दीन जललीन सुक्यों अंतहिं लहै ॥
लहै अंत[1] न कोटि कलपन सारदा मूक[2] रहै ।
जीवन-कृपन[3] की का चलै, बिनु तव कृपा जो कछु कहै ॥
चरन-रति जो देहु स्वामिनि, जन्म कौ फल पाइए ।
'श्रीबंसीअलि' अलबेलि जीवन सुजस तुम्हरो गाइए ॥३॥*

पद

श्रीबंसीअलि प्रान हमारे ।
हृदय-कमल-संपुट करि राखूं, अँखियन के बर तारे ॥
चरन सरोज सुगति मति मेरी, निरधन-धन अनुसारे ।
अलबेली, अलिगन मधुकर ह्वै, पीवत रस सुखसारे[4] ॥४॥
श्रीबंसीअलि की बलि जाऊँ ।
जाकी चरन सरन किरपा तें, बृंदाबन - धन पाऊं ॥
नवनागरि-अलिकुल-चूड़ामनि, रहसि-रहसि[5] दुलराऊं ।
अलबेली, अलि हिय कौ गहिनो, प्रेम-जराइ[6] जराऊं[7] ॥५॥

समय-प्रबंध

मंगल

भोरहिं उठि अलिरूप बिचारूं ।
अद्भुत नवल किसोर माधुरी, रूप अनूप निहारूं ॥
करि अस्नान उबटि अँग-अंगनि, नाना भाँति सिंगारूं ।
भूषन बसन प्रसादी[8] स्वामिनि, पुलकि-पुलकि उर धारूं ॥
सदा रहूं ललितादिक संगी, प्रेम-भरी अनुहारूं ।

[1]पार । [2]मूक, मौन । [3]असमर्थ । [4]सुखों का सार; चिदानंद । [5]प्रसन्न हो-होकर । [6]जड़ाव । [7]जड़वाऊं । [8]अर्पित किया हुआ पदार्थ ।

*यह पद्य "श्रीबंसीअलिजी के मंगल" से लिये गये है । भाव कितनी उत्कृष्टता पर पहुँच गया है, यह इस मंगल से भलीभाँति ज्ञात होता है ।

अलबेली, श्रीबंसीअलि बलि, महल - टहल[1] अनुसारूं ॥१॥

भैरव

गुंजन मधुपन, सुनत अली री ।
उमगी मनों प्रेम की सरिता, रूप के सिंधु चली री ॥
बिहँसत बदन हँसत बिगसत-सी, जनु अनुराग-कली री ।
रूप अनूप लखैं 'अलबेली' आई बारि भली री ॥२॥

भैरव

लीन्हें कर बीन ललित, लाड़िली जगावैं ।
प्रेम पुलकि अंग-अंग, दरस सरस अति उमंग ;
मधुर-मधुर तान लगी, कान सों सुनावैं ॥
झीने पट बदन जोत, कोटि चंद मंद होत ;
भूषन दुति अति उदोत[2]; उड़गन चमकावैं ।
आरस-रस-भरे नयन, छाई मनु मयन-सयन;
रैन की उनींद[3] पलक, झपकि-झपकि जावैं ।
'अलबेली अलि' उरसि लाल, लगी मनो रूपमाल;
मंद-मंद हास बदन, बासि[4] में दुरावैं ॥३॥

ललित

लला, तू अनोखे ख्याल पर्‌यो है ।
अतिहीं नींदर[5] नैन उनींदे, आरस[6]-रंग भर्‌यो है ॥
अति आसक्ति[7]-भर्‌यो, नहिं जानत, पुहुप प्रभाव कर्‌यो है ।
'अलबेली अलि' तृपति न मानत, किहि रस रंग ढर्‌यो है ॥४॥

[1]सेवा । [2]उदय; प्रकाश । [3]निद्रित । [4]वस्त्र । [5]नींद । [6]आलस्य । [7]अनुराग से भरा हुआ ।

*इस पद में 'उमगी...चली री' चरण बड़ी ही सजीव कविता का उदाहरण है ।

पंचम

बने दोउ रसिक रस-रास मंडल सरस,
सरद की रैन सुखदैन माई ।
परम पावन पुलिन सरस स्वच्छ स्थलनि,
मदन-मद-दवनि[1] ससि-जोन्ह छाई ॥
बनी अति चारु जरतारि सारी सुभग,
किरनि चौंकार मुख लहलहाई ।
नीलपट, पीत फहरात अंगनि मिथुन[2],
तड़ित घन नील उद्योतिताई[3] ।
लेत ओघर सुघर तालगति तान की,
जगमगत पीकमुख अरुनिमाई ॥
ताल मिरदंग लिय संग सजनी खरीं[4],
मुरलि मोहन मधुर सुर बजाई ।
देहिं पग थाप[5] आलाप सुर रँग भरीं,
भूषननि अंग छनकनि मिलाई ॥
अलक अंगुष्ठ तरजनि गहे पलटि पग,
जात मुसक्यात सुंदर सुहाई ।
परी रसभीर[6] दृग धीर नाहिंन धरें,
निरखि 'अलबेलिअलि', छबि छटाई ॥५॥

छंद चाली

मुरली धुनि बन बाजै । मनो मैन दल साजै ॥
मनों मैन दल साजि अंग-अंग नौ-सत[7] सरस बनाये ।
उमगि चलीं अलिकुल सरिता-सी स्रवननि सुनि सचुपाये ॥
जोर करन चहुँ ओर खरीं मिलि मंडल अति छबि छाजै ।

[1]दमन करने वाली । [2]संयुक्त । [3]प्रकाश । [4]खड़ी है । [5]ताल । [6]आनंद का समूह; अत्यधिक आनंद । [7]नौ और सात; सोलह शृंगार ।

कर कंकन किंकिन पग नूपुर, मुरली धुनि बन बाजै ॥
खेलत रास रसीले। दंपति छैल छबीले ॥
दंपति-रंग रँगी सँग सजनी महि-मंडल पर डोलैं।
बीच-बीच नव नागरि सुंदरि तत्ता थेइ-थेइ बोलैं ॥
भूषन बसन बने अँग-अंगनि, फहरत पट चटकीले।
करत बिलास हास रस बरसत, खेलत रास रसीले ॥
लिए बीन कल गावैं। पिय मोहनहिं रिझावै ॥
पिय मोहन दच्छिन दिसि सजनी, बाम भाग कर जोरैं।
ठुमकि चलनि, डोलनि पदगति की, ताननि मान जु तोरैं ॥
ग्रीवा ढुरनि[1], मुरनि[2] कल कटि की, भृकुटी नैन नचावैं।
सुंदरि सरस मधुर पिकबैनी लिये बीन कल गावैं ॥
गौरी[3] राग जमायो। सब बन घन में छायो ॥
सब बन घन पूरित अति आनँद मोहीं सकल सहेली।
उडपति थकित, चकित उडमंडल[4], प्रेम-बिबस द्रुमबेली ॥
पद पटकत लटकत अँग-अँग प्रिय, रतिपति प्रगट नचायो।
गावत सनमुख स्याम मनोहर गौरी राग जमायो ॥६॥

सोरठ

देखु सखी, इनकौ नब नेह।
उमड़ि[5] ढरे[6] घन रूप के मानों, बरसत रस कौ मेह ॥
खान पान बसनन कल भूषन, भूले सब सुधि देह।
'अलबेली' नहिं[7] जानत निसिदिन, परे प्रेम के गेह ॥७॥

[1] हिलना। [2] मोड़। [3] एक रागिनी जो प्राय संध्या समय गायी जाती है। [4] तारा-मंडल। [5] उमड़कर। [6] गिर रहे हैं। [7] इन प्रेमियों के लेखे न दिन है न रात, सदा एकरस आनंद ही आनंद है। हितहरिवंशजी ने लिखा है—"चंद्र घटै सूरज घटै, घटै त्रिगुन बिस्तार। पै दृढ़ हितहरिवंश कौ, घटै न नित्य-बिहार ॥

परज

बृंदाबन बसि यह सुख लीजै ।
सात[१] समय की टहल महल बिनु, इकछिन जान न दीजै ।
परमप्रेम की रासि रसिक जे, तिनही कौ सँग कीजै ।
निबिड़[२] निकुंज बिहार चारु अति, सुरस-सुधा दिन[३] पीजै ॥
और भजन साधन में मिथ्या[४], कबहूं काल न छीजै[५] ।
दिन दुलराइ लड़ाइ दुहुन कों, 'अलबेली अलि' जीजै[६] ॥८॥

लीनों बृंदाबन बसि लाह्यो[७] ।
सेवा टहल महल की निसि दिन, यह जिय नेम निबाह्यो ।
अद्भुत प्रेम बिहार चारु रस, रसिकनि बिनु किनु चाह्यो ।
'अलबेली अलि' सफल कियो सब, जिन यह रस अवगाह्यो ॥९॥

ऐसे काल बितावौं निसिदिन ।
भोर साँझि लगि, साँझि भोर लौं, लाड़ लड़ाय दोऊ जन ॥
छिन बिच्छेप[८] न होइ टहल में, कीजै यह अद्भुत पन[९] ।
सब रस कौ रस-सार बिहार, सुबीन्यौ[१०] हंस रसिक गन ॥
बिबिध भाँति के और भजन जे लौन बिना ज्यौं बिंजन ।
श्रीराधा-पद-कमल-कृपा बिनु को पावै रस कौ कन ?
श्रीबृंदावन-बास रासि-रस, समय[११] प्रबंध परम धन ।
'अलबेली' श्रीबसीअलि बलि, यह मानों मेरे मन ॥१०॥

---

[१] विष्णु-संप्रदाय अथवा वल्लभकुल के अनुसार भगवान् की सात समय की सेवा-पूजा—मंगला, ग्वाल, शृंगार, राजभोग, उत्थापन, आरती, और शयन । [२] सघन । [३] नित्य । [४] वृथा । [५] नष्ट करे । [६] जीवन बिताना चाहिए । [७] लाभ । [८] अंतर । [९] प्रतिज्ञा । [१०] विवेक से चुन लिया । [११] अष्टयाम के अनुसार श्रीराधा-कृष्ण की सेवा ।

चाचा हितवृंदावनदास

छप्पय

श्रीहरिबंस प्रसंस प्रेम-पथ जो हिय ध्यायो ।
रसिक रसायन जानि मानि सोइ प्रगट लखायो ॥
अनुभव अकथ उदार, पार कोई नहिं पायो ।
देवन-दुरलभ वस्तु, सु दोनों हाथ लुटायो ॥
श्रीराधाबल्लभ लाड़िली लाल सुनत मन में प्रबोधि ।
'चाचा बृंदाबनदास' के, चार लच्छ पद चारों पयोधि ॥

—गोस्वामी राधाचरण

हितवृंदावनदासजी गौड़ ब्राह्मण थे । इनका निवास-स्थान पुष्कर-क्षेत्र था । इनका जन्म संवत् १७६५ में हुआ । श्रीराधावल्लभीय गोस्वामी हितरूपजी इनके गुरु थे । तत्कालीन गोसाईंजी के पिता के गुरु-भ्राता होने के कारण, गोसाईं जी की देखादेखी, लोग इन्हें 'चाचाजी' कहने लगे और आप चाचाजी ही के नाम से प्रसिद्ध हो गये ।

महाराज नागरीदासजी के भाई बहादुरसिंहजी इनके आश्रय-दाता थे । राज्य-कुल में पारस्परिक कलह के कारण चाचाजी विरक्त होकर वृंदावन चले आये, और फिर आजीवन वहीं रहे ।

चाचाजी का कविता-काल संवत् १७९५ से प्रारंभ होता है । इन्होंने प्रायः चार लाख पद लिख कर ब्रज-साहित्य-रत्नाकर को लबालब भर दिया । यह बात नहीं है कि इनकी रचना साधारण-सी हो । उसमें यत्र-तत्र भाव-वैचित्र्य, भाषा-शील और काव्य-प्रौढ़ता आदि गुण दिखाई देते हैं । इन्होंने ब्रजवासी कृष्ण का गुण-गान किया है, द्वारकावासी यदु-राज का नहीं । इनका 'नख-शिख', 'अष्टयाम', 'समय-प्रबंध', 'छद्म' और अनेक

अपूर्व लीलाओं का बड़ा ही विशद वर्णन है। छद्म-लीलाओं के लिखने में तो चाचाजी ने कमाल ही कर दिया है। इनके वैराग्य और सिद्धांत-संबंधी पद भी अनूठे हैं। चाचाजी की बानी अभी तक कहीं से प्रकाशित नहीं हुई है। कुछ फुटकर पद 'राग-रत्नाकर' आदि संग्रह ग्रंथों में ही छपे हैं। चारों लाख पद तो मिलते नहीं, किंतु लगभग एक लाख पद के प्राप्य हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि कोई सज्जन किसी योग्य संपादक-द्वारा इन अमूल्य पदों का संपादन करा कर इन्हें प्रकाशित करा दें। सुना है, इनके पदों की एक प्रतिलिपि छतरपुर राज्य के पुस्तकालय में है।

प्राप्य ग्रंथों अथवा संग्रह-ग्रंथों के नाम ये हैं : —१. श्री ब्रज-प्रेमानंद सागर; २. हिंडोरा; ३. छद्म-लीला; ४. चौबीस लीला; ५. श्रीकृष्ण गिरि-पूजन मंगल; ६. श्रीकृष्ण-मंगल; ७. रास-रस; ८. अष्टयाम (८); ९. समय-प्रबंध (१९); १०. भक्त-प्रार्थनावली; ११. श्रीहितरूप-चरितावली।

समुद्र में से दो-चार बूँद के रूप में, चाचाजी के थोड़े-से अनमोल पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :

वीणावारी-लीला

खेमटा

प्रीतम, तुम मो दृगनि बसत हौ।
कहा भरोसे ह्वै पूछत हौ, कै चतुराई करि जु हँसत हौ?
लीजै परखि स्वरूप आपनो, पुतरिन में तुमहीं जु लसत हौ।
बृंदाबन हितरूप, रसिक तुम, कुंज लड़ावत हियहुलसत हौ॥१॥*

कान्हरा

यह छबि बाढ़ी, री रजनी, खेलत रास रसिकमनि माई।
कानन वर सौरभ की महकनि, तैसिय सरद-जुन्हाई॥

*यह पद उत्तम कविता का नमूना कहा जा सकता है। इसमें अवश्य कोई एक ऐसी चीज़ है, जो आँखों के आगे भाव का सजीव चित्र खींच कर खड़ा कर देती है।

पुलिन प्रकास मध्य मनि-मंडल, तहँ राजत हरि-राधा ।
प्रतिबिंबित तन दुरनि-मुरनि[1] में, तब छबि बढ़त अगाधा ॥
गौर-स्याम छबि-सदन बदन पर, फबि रहे स्नम-कन ऐसे ।
नील कनक-अंबुज अंतर धरे, ओपि जलज-मनि जैसे ॥
झलकत हार, चलत[2] कल कुंडल, मुख मयंक-ज्यौं सोहैं ।
वारौं सरद निसा ससि केतिक, मैन कटाच्छनि मोहैं ॥
थेइ-थेइ[3] बचन बदति[4] पिय प्यारी, प्रगटति नृत्य नई गति ।
'बृंदाबन हित' तान गान रस, अलि हित रूप कुसल अति ॥२॥

हौं बलि जाउँ, मुख सुख-रास ।
जहां त्रिभुवन-रूप-सोभा, रीझि कियौ निवास ॥
प्रतिबिंब तरल कपोल कमनी[5], जुग तरौना कान ।
सुधा-सागर मध्य बैठे, मनों रबि जुग न्हान[6] ॥
छबि-भरे नवकंज-दल-से नेह-पूरित[7] नैन ।
पूतरी मधु मधुप-छौना, बैठि, भूले गैन[8] ॥
कुटिल भ्रकुटी अमित सोभा, कहा कहौं बिसेख ।
मनहुँ ससि पर स्याम बदरी[9] जुगल किंचित रेख ॥
लसत भाल बिसाल ऊपर, तिलक नगनि जराय ।
मनहुँ चढ़े बिमान ग्रहगन ससिहि भेंटत जाय ॥
मंद मुसुकनि, दसन दमकनि, दामिनी दुति हरी ।
'बृंदाबन हित' रूप स्वामिनी[10] कौन बिधि रचि करी ॥३॥

सोभा केहि बिधि बरनि सुनाऊं ।
इक रसना, सोउ लोचन-हानी[11], कहौ पार क्यों पाऊं ॥
अंग-अंग लावन्य-माधुरी, बुधि बल किती बताऊं !

[1] छिपने और मुड़ने में । [2] हिलते-डुलते हैं । [3] नृत्य-संबंधी गति का शब्द विशेष । [4] बोलती है । [5] कमनीय, सुंदर । [6] नहाने के लिए । [7] रँगीले । [8] गमन । [9] बादल का छोटा-सा टुकड़ा । [10] राधिकाजी से तात्पर्य है । [11] रहित, हीन ।

अतुलित सुनति कहि गये क्यों दृग पल रजि धरि जु उचाऊं ॥
नव वय-संधि[1] दुहुनि नित उलहत, जब देखौ तब औरै ।
यहि कौतुक मेरो सुनि सजनी, चित न रहत इक ठौरै ॥
लोक न सुनी दृगन नहिं देखी, ऐसी रूप निकाई[2] ॥
मेरी तेरी कहा चली, खग-मृग-मति प्रेम बिकाई ।
कबहूं गौर स्याम तन[3] कबहूं, लोचन प्यासे धावैं ।
कह घटि जात सिंधु कौ, पंछी जो चौंचन भरि लावैं ॥
सुंदरता की हद मुरलीधर, बेहद छबि श्री राधा ।
गावै बपु अनंत धारि शारद, तऊ न पूजै साधा[4] ॥
न्याइ काम करवट ह्वै निकसत पिय अरु रूप गुमानी ।
'बृंदाबन हितरूप' कियो बस, सो कानन की रानी ॥४॥

पद

भजन भावना हीय न परसी, प्रेम नहीं उर कपटी ।
कुआँ[5] पर्‌यो आकास उड़त खग ताको करत जु झपटी ॥
रसिक कहावें, कोई जिनके जुगल[6] मिलन की चटपटी[7] ।
'बृंदाबन हितरूप' कहां लगि, बरनो सृष्टि अटपटी ॥५॥
देखा-देखी रसिक न ह्वैहै, रस मारग है बंका[8] ।
कहा सिंह की सरबर करिहैं, गीदर फिरै जु रंका[9] ?
असहन[10] निंदा करत पराई, कबौं न मानी संका ।
'बृंदाबन हितरूप' रसिक जिन, दिय अनन्य पथ डंका ॥६॥

[1]पौगंड और किशोरावस्था का मेल। वय-संधि पर बिहारी ने क्या ही मार्के का दोहा लिखा है : "छुटी न सिसता की झलक, झलक्यौ जोबन अंग । दीपति देह दुहूँन मिलि, मनौ ताफता रंग ॥" [2]शोभा । [3]तरफ़ । [4]इच्छा । [5]कुआँ ......उड़त—असमर्थ होते हुए भी अपने को बड़ा पुरुषार्थी मान रहा है । [6]श्रीराधाकृष्ण । [7]अत्यंत विरहासक्ति । [8]बाँका, टेढ़ा, कठिन । [9]बेचारा । [10]असहाय । चाचाजी के यह पद्य (१३-१४ संख्या) अनन्य-सिद्धांत-प्रतिपादक है ।

भगवतरसिक*

छप्पय

श्रीस्वामी हरिदास रसिक-नृप कौ जो मारग ।
ताहि धारि नित कुंज-केलि करि भो भव-पारग ।।
जग-वैभव सुख मोरि, कियो करवा सों नातौ ।
स्यामा-स्याम लड़ाइ फिरै ब्रजवीथिन मातौ ।
बिरचे अनन्य-निश्चय-रहस, अष्टयाम पद सामयिक ।
श्रीललितमोहिनीदास के कृपापात्र भगवतरसिक ।।

—वियोगीहरि

भगवतरसिकजी का जन्म-संवत् अनुमानतः १७९५ सिद्ध होता है । टट्टी-संस्थान के मुख्याचार्यों में श्रीस्वामी ललितकिशोरीजी के शिष्य श्रीस्वामी ललितमोहिनीदासजी के कृपापात्र भगवतरसिकजी थे । सहचरिशरणजी ने स्वरचित आचार्योत्सव सूचना में इन महात्माओं का अवतार और अंतर्धान-काल इस प्रकार दिया है :

ललितकिसोरी ललित प्रगट पट अगहन बदि आठै दिन ।
सत्रह सौ तैंतीस मनोहर, ताहि न भूलौं इक छिन ।।
अंतरध्यान पौष बदि छठि कों रसिकन के उर दाहू ।
वर्ष अठारह सौ तेईसा हर्ष हर्यौ सब काहू ।।
ललितमोहिनी प्रभा सोहिनी आस्विन सुदि दसमी कों ।
कियो प्रकास सरद जनु चंद्रम वर्षायो सु अमी कों ।।

* 'मिश्रबंधुविनोद' में भगवतरसिकजी स्वामी हरिदासजी के शिष्य लिखे गये है ।

संवत् सत्रह सौ सु असी कौ अति प्रमोद कौ दानी।
सरन माघ बदि इकदसमी कों सबही ने यह जानी॥
फागुन बदि नवमी कों प्रमुदित रंगमहल कों गमने।
वर्ष अठारह सौ अट्ठावन निरखत राधारमने॥

टट्टी-संस्थान के अष्टाचार्यों में सब से अंतिम यही ललितमोहिनी-दासजी थे। भगवतरसिकजी ने गद्दी का अधिकार नहीं लिया। अहर्निश भगवद्भजन में ही मस्त रहे। भगवतरसिकजी ने वैराग्य और शृंगार दोनों का ही सुंदर वर्णन किया है। इनकी सिद्धांती कुंडलियां तो अपूर्व ही हैं। इनकी कविता में निष्पक्षपात, सच्चा त्याग, प्रत्यक्षानुभूति और अनन्यता दृष्टि आती है। इनका "अनन्य-निश्चयात्मक" ग्रंथ लखनऊ-निवासी लाला केदारनाथजी वैश्य ने छपवा कर वितरण किया था।

भगवतरसिकजी ने शायद अपनी 'बानी' की ओर संकेत कर के एक पद में लिखा है कि :

भगवतरसिक, रसिक की बातैं, रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना।

वास्तव में, भगवतरसिक सरीखे निस्पृह भगवत्-भक्ति रसोन्मत्त महानुभावों की कविता का समझना हँसी खेल नहीं है।

थोड़े से छंद आपकी बानी से लेकर नीचे लिखे जाते हैं :

छप्पय

सब कालन कौ काल, लोकपालन को पालै।
आपुन सदा स्वतंत्र, नियंता बुद्धि बिसालै॥
उपजावै, सब बिस्व रमैं, फिर ताके नाहीं।
देखतभूली[1] करै, परै भूलन में नाहीं॥
षट् ऐश्वर्य समर्थ हरि, सो भगवत, असरन-सरन।
तन मन जन की वेदना[2], हरहु मोद-मंगल करन॥१॥

[1]भ्रमात्मक ज्ञान, अविद्या। [2]कष्ट।

कुंजन तें उठि प्रात गात जमुना में धोवै ।
निधिबन[1] करि दंडौत, बिहारी[2] कौ मुख जोवै ॥
करै भावना बैठ स्वच्छ थल रहित उपाधा[3] ।
घर-घर लेइ प्रसाद लगै जब भोजन-साधा[4] ॥
संग करै 'भगवत रसिक' कर करुवा, गूदरि गरे[5] ।
बृंदावन बिहरत फिरै, जुगलरूप नैननि भरे ॥२॥

कुंडलिया

साँचे श्रीराधारमन, झूठो सब संसार ।
बाजीगर[6] कौ पेखनो, मिटत न लागै बार ॥
मिटत न लागै बार, भूति की संपति जैसे ।
मिहरी[7] नाती पूत, धुवाँ कौ धौरर[8] तैसे ॥
'भगवत' ते नर अधम, लोभ-बस घर-घर नाचे ।
झूँठे गढ़ै सुनार, मोम के बोले साँचे[9] ॥३॥
नित्य-बिहारी की कला, प्रथम पुरुष[10] अवतार ।
तासु अंस माया भई, जाकौ सकल पसार ॥
जाकौ सकल पसार, महत्ततु[11] उपज्यौ जातें ।
अहंकार उतपति भई, स्तुति कहै जु तातें ॥
अहंकार त्रैरूप[12] भयौ, सिव बिधि असुरारी[13] ।
भगवत सब कौ तत्व-बीज श्रीनित्यबिहारी ॥४॥
आचारज ललिता[14] सखी, रसिक हमारी छाप ।
नित्यकिसोर-उपासना, जुगल-मंत्र कौ जाप ॥

[1]एक कुंज का नाम जहां बैठ कर स्वामी हरिदास जी प्रायः भजन किया करते थे। [2]बाँकेबिहारी जी से तात्पर्य है; स्वामीहरिदासजी की अर्च्य श्री कृष्ण-मूर्ति। [3]उपाधि। [4]इच्छा। [5]गले में। [6]जादूगर। [7]स्त्री। [8]धुरहरा। [9]गहने ढालने का साँचा। [10]शेषशायी नारायण। [11]महत्तत्व। [12]सत्व; रज और तम। [13]विष्णु। [14]ललिता से यहां स्वामीहरिदासजी से तात्पर्य है।

जुगल-मंत्र कौ जाप, बेद रसिकन की बानी ।
श्रीबृंदाबन, धाम, इष्ट स्यामा महरानी ॥
प्रेम-देवता मिले बिना सिधि होइ न कारज ।
भगवत, सब सुखदानि, प्रगट भे रसिकाचारज[1] ॥५॥
नहिं हिंदू नहिं तुरक हम, नहिं जैनी अंगरेज ।
सुमन सँवारत रहत नित, कुंज-बिहारी-सेज ॥
कुंज-बिहारी-सेज, छाँड़ि मग दच्छिन[2] डेरो[3] ।
रहै बिलोकति केलि, नाम 'भगवत' अलि मेरो ॥
श्रीललिता सखि पाय कृपा, सेवत सुख स्यामहिं ।
नहिं काहू सों द्रोह, मोह काहू सों है नहिं ॥६॥
जैसे मिले कुधातु के, लगै कंचनै दाग ।
दूरि करै सब कालिमा, जबहीं मिलै सुहाग[4] ॥
जबहीं मिलै सुहाग, रीति ललिता की जानौ ।
ज्यौं जल खाड़ समाइ, फिरै करकट[5] उतरानौ ॥
'भगवतरसिक' अनन्य महल में राजत ऐसे ।
ज्यों दृग अंजन बसै, बरौनी बाहिर तैसे ॥७॥
चसमा नित्य बिहार कौ, दियो बिहारिनि[6] मोहि ।
भई प्रीति परतीति उर, अंतर लीनों जोहि[7] ॥
अंतर लीनों जोहि, निरंतर निज धन पायौ ।
नारद सुक सनकादि, 'नेति' निगमागम गायौ ॥
'भगवत' यह रस-रीति, प्रगट परिपूरन ससमा[8] ।
प्रेम[9]-पियूष न स्रवै, भाव-रूपी बिनु चसमा ॥८॥

[1]रसिकों के आचार्य स्वामीहरिदासजी । [2]वैदिक मार्ग । [3]वाम मार्ग, तांत्रिक मार्ग । [4]सुहागा; आग में सोने के साथ सुहागा डाल देने से सोने का सब मैल कट कर दूर हो जाता है । [5]कूड़ा । [6]श्रीराधिकाजी । [7]देख लिया । [8]चन्द्रमा । [9]प्रेम...स्रवै—बिना भाव के प्रेम-रूपी अमृत स्रवित नहीं होता ।

देखे हाट-बजार सब, जहँ-तहँ पोति[1] बिकाय।
लिये जवाहिर जौहरी, बिनु गाहक फिरि जाय॥
बिनु गाहक फिरि जाय, बलाहक[2] ऊसर बरसैं।
छप्पन भोग बनाय, कहा बनचर के परसैं?
ऐसेहि कर्मठ[3] लोग, धर्म रति बरन बिसेखे।
'भगवतरसिक' अनन्य, स्वाद-भेदी[4] कहुँ देखे॥६॥
अनुभव बिनु जग आँधरो, बस्तु न दीखै कोइ।
मुकुर दिखाये होत कह, आनन जात न जोइ॥
आनन जात न जोइ, अरथ बानी कौ कहिबौ।
सुने न होइ प्रतीति, बिना देखे उर दहिबौ॥
बहु बिधि मरदन करैं, नहीं चैतन्य होइ शव।
'भगवत' रस की बात कहा जानै बिनु अनुभव॥१०॥
काहू दई न लई कोउ, विद्यमान दरसाय।
ज्यौं मनियारौ-उरग[5] मनि, लै आवै लै जाय॥
लै आवै लै जाय, वस्तु रसिकन की ऐसे।
निसिदिन सेवत रहैं, कृपन निज संपति जैसे॥
'भगवतरसिक' सुकेलि, स्याम-स्यामा अवगाहू।
रही दृगनि भरिपूर, भेद जान्यो नहिं काहू॥११॥
'भगवतरसिक' अनन्य मति, गौर स्याम रँगरात।
अमरकोस[6] से धूम लौं, मृगमद[7] छाँड़ि न जात॥
मृगमद छाँड़ि न जात, गही ज्यों हारिल[8] लकरी।
चुम्बक लोह न तजै, दारु पावक जिमि पकरी॥

[1]काँच के छोटे-छोटे दाने। [2]मेघ। [3]हृदयहीन, कोरे कर्मकांडी। [4]रस-रहस्य के ज्ञाता। [5]मणिवाला साँप। [6]अमरबेल। [7]कस्तूरी। [8]एक चिड़िया। प्रवाद है कि, हारिल कभी ज़मीन नहीं छूती; जब बैठती है तब एक लकड़ी पर, जिसे वह सदा अपने साथ रखती ।

गुन बयारि तनु लगै, डिगै नहिं मनसा नग[1] वत[2] ।
संतत स्यामा-स्याम, धाम कीनों उर भगवत ॥१२॥
चलनी में गैया दुहैं, दोष दई को देहिं ।
हरि-गुरु कह्यौ न मानहीं, कियो आपनो लेहिं ॥
कियो आपनो लेहिं, नहीं यह ईस्वर-इच्छा ।
देस काल-प्रारब्ध देव कोउ करिइ न रच्छा ॥
मूरख मरकट[3] मूढ़ कीर हठि तजै न नलिनी ।
कहि 'भगवत' कह करै भाग भौंड़े[4] कों चलनी[5] ॥१३॥
अनहोनी नहिं होइ कछु, होनी मिटै न कोय ।
देखौ सीता दसरथै, अति समरथ तहँ दोय ॥
अति समरथ तहँ दोय, राम भरता बसिष्ट गुर ।
यदुबंसिन कौ नास भयो, देखत परमेसुर ॥
पारीछत[6] उर ब्याल, मृतक पहिरायौ मौनी[7] ।
'भगवत' इच्छा जानि नहीं यामें अनहोनी ॥१४॥
जाति-जाति में जात सब, सबहीं जाति कुजाति ।
रसिक अनन्य अजात की कहौ कौन सी जाति ?
कहौ कौन सी जाति, सजाती मिलै सुजानै ।
बिमुख बिजाती देह-खेह[8] की जाति बखानै ॥
निज स्वरूप नहिं लखै, विवादी बात-बात में ।
'भगवत' भगत न तेइ, जगत सब जाति-जाति में ॥१५॥

[1]पहाड़ । [2]समान । [3]बंदर । [4]मूर्ख, अभागा । [5]आटा छानने की चलनी; धार्मिक आचार । [6]अभिमन्यु के पुत्र महाराज परीक्षित । [7]एक ध्यानावस्थित मुनि, जिन्हें परीक्षित ने मरा हुआ साँप पहना दिया था । इस पर मुनि-पुत्र ने राजा को यह शाप दे दिया, कि सातवें दिन साँप के काटने से मर जायँ । शुकदेवजी के मुखारविंद से श्रीमद्भागवत सुनते-सुनते सातवें दिन, ब्रह्मशाप-वश, राजा परमधाम को सिधार गये । [8]पंचभौतिक शरीर ।

पैसा पापी साधु कों, परसि लगावै पाप !
बिमुख करै गुरु इष्ट[1] तें, उपजावै संताप ॥
उपजावै संताप, ग्यान, बैराग्य बिगारै ।
काम क्रोध मद लोभ, मोह मत्सर सृंगारै[2] ॥
सब द्रोहिन में सिर[3], भगत द्रोही नहि ऐसा ।
'भगवतरसिक' अनन्य, भूल जिन परसौ पैसा ॥१६॥
आवे जो सो चून कों, जहँ जइए तहँ चून ।
दियो चून चसमा चखनि, भगति भाव भो नून[4] ॥
भगति भाव भो नून, साधु कौ रूप न सूझै ।
रहे मान मद बूड़ि, और की औरै बूझै ॥
हरि गुरु साधु बिहाय, आपनी प्रभुता गावै ।
'भगवत' स्यामा-स्याम, कहौ उर कैसे आवै ॥१७॥
गेही[5] संग्रह परिहरै, संग्रह करै बिरक्त ।
हरि गुरु द्रोही जानिए, आज्ञा तें बितिरक्त[6] ॥
आज्ञा तें बितिरक्त, होय जमदूत हवालैं ।
अष्टाबिंसति निरय[7], अधोमुख करि तहँ घालैं ॥
'भगवतरसिक' अनन्य, भजौ तुम स्याम सनेही ।
संग दुहुन कौ तजौ, वृत्ति[8] बिनु बिरत[9] रु[10] गेही ॥१८॥
जाकों जैसी लखि परी, तैसी गावै सोय ।
बीथी भगवत मिलन की, निहचय एक न होय ॥
निहचय एक न होय, कहैं सब पृथक् हमारी ।
स्रुति स्मृति भागौत, साखि गीतादिक भारी ॥
भूपति सबनि समान, लखै निजु परजा ताको ।
जाकौ जैसो भाव, सुभोषै तैसी ताको ॥१९॥

[1]परमेश्वर। [2]परिपुष्ट करता है। [3]अव्वल। [4]न्यून, कम। [5]गृहस्थ। [6]हीन। [7]रौरव कुंभपाक आदि पुराणोक्त २८ नरक। [8]नियत स्वकर्म। [9]विरक्त। [10]अरु

हाथी देख्यो आँधरनि, निज मन के अनुमान ।
कान पूँछ पग पीठि गहि, कर्‍यौ सबनि परमान ॥
कर्‍यौ सबनि परमान, बिटौरा[1] रूप पेटतर ।
झगरैं संत महंत, निगम-आगम पुरान बर ॥
'भगवतरसिक' अनन्य, दृष्टि-बर[2] कीजै साथी ।
जिन देख्यो गुन रूप, अंग हिय में हरि हाथी ॥२०॥
चेला काहू के नहीं, गुरु काहू के नाहिं ।
सखी लड़ैती लाल की, रहैं महल के माहिं ॥
रहैं महल के माहिं, टहल सब करैं निरंतर ।
दंपति अति अकुलाहि, पलक कहुँ धरै जु अंतर ॥
'भगवत' भगवत कहैं, करैं नहिं हम बिन केला[3] ।
ताते हम परिहरे देह-मानी[4] गुन चेला ॥२१॥
नहीं द्वैत[5] अद्वैत[6] हरि, नहीं बिसिष्टाद्वैत[7] ।
बँधे नहीं मत-वाद में ईस्वर इच्छा द्वैत ॥
ईस्वर इच्छा द्वैत, करैं सबही कौ पोषन ।
आप रहैं निरलेप, भगत सों मानैं तोषन[8] ॥
'भगवतरसिक' अनन्य संग डोलैं गलबाहीं ।
करैं मनोरथ-सिद्धि, उचित अनुचित कछु नाहीं ॥२२॥
सतगुरु सब्द सुस्वाति-जल, सिष्य-सीप-हिय होय ।
सकुचि-मीन[9] टक्कर लगै, तब वह मुकता होय ॥
तब वह मुकता होय, सजाती संगति जैसे ।

[1]ढेर । [2]अनन्य निश्चयात्मक दिव्य दृष्टि । [3]केलि; नित्य विहार । [4]शरीर ही को आत्मा मानने वाले; अविद्याग्रस्त । [5]श्रीमाध्वसंप्रदाय का सिद्धांत, जिसमें जीव और ब्रह्म पृथक्-पृथक् माने गये हैं । [6]श्रीशांकर-सिद्धांत, जिसमें केवल ब्रह्मसत्ता स्वीकार की गयी है । [7]श्रीरामानुजीय सिद्धांत, जिसमें प्रकृति और जीव विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म की सत्ता सिद्ध की गयी है । [8]प्रसन्नता । [9]शील-रूपी मछली ।

नतरु तोय कौ तोय, होय नहि मुकता ऐसे ॥
'भगवतरसिक' अनन्य बधू नव गर्भ धरैं उरु ।
सदा सहायक सासु, स्वामियां जानौ सतगुरु ॥२३॥ *
माँछी, माछर, माँगने[1], मूसे, बादर, चोर ।
काँटे, दीमक, जीव कों जागा[2] दस दुख घोर ॥
जागा दस दुख घोर, बास क्यों कीजै बन में ।
असन-बसन बिनु मिले, रहै ना धीरज मन में ॥
'भगवतरसिक', अनन्य-मिलन दुस्तर-स्रुति साछी[3] ।
बिहरत स्यामा-स्याम, जहां नहिं माछर-माँछी ॥२४॥
कौवा धोये हंस नहिं, होइ न बछुरा स्वान ।
रासभ[4] तें हय होइ नहिं, जो धोवै भगवान ॥
जो धोवै भगवान, साखि देखौ दुरजोधन ।
हरि आये बनि दूत गये फिरि, भयो न बोधन[5] ॥
'भगवतरसिक' अनन्य होय नहि बाँभन नौवा ।
गुन-सुभाउ नहि मिटै, हंस-संगति करि कौवा ॥२५॥
काटै कूकर बावरौ, जाकों लागै भूत ।
करै अमल[6] तहँ आपनो, दाबि परायो पूत ॥
दाबि परायो पूत प्रेम की यह गति जानौ ।
जिय[7] तें ईस्वर होय, साखि ब्रजबधू[8] बखानौ ॥
'भगवतरसिक' अनन्य होय, अद्भुत रस चाटै ।
स्यामा-स्याम-बिहार नित्य तिहिं काल न काटै ॥२६॥
साँचौ नहिं निज धर्म कोउ, कासों करिए प्रीति ।
व्यभिचारी[9] सब देखिए, आवति नहिं परतीति ॥

[1]भिखारी। [2]जगह। [3]साक्षी। [4]गदहा। [5]ज्ञान। [6]शासन; नशा। [7]जीव। [8]गोपिकाएँ, जीव से ब्रह्मरूप होकर 'कृष्णोऽहं' कहने लगी थीं। [9]मनमुखी, अनेक-मार्गी।
*साहित्य-साँचे में ढला हुआ क्या ही सुंदर आध्यात्मिक सिद्धांत है।

आवति नहिं परतीति, दीजिए काकों निज धन ।
मन-माफिक नहिं मिले, खोजि देखे बसती-बन ॥
'भगवतरसिक' अनन्य संग की सहै न आँचौ[1] ।
कूकर हाड़ चबाय, सिंह मारै गज साँचौ ॥२७॥
घर-घर में गुरु बैद सब, बिन गुरु बैद न कोय ।
औषधि मंत्र बतावहीं, सीघ्र सिद्ध यह होय ॥
सीघ्र सिद्ध यह होय, बहुत भाँतिन अजमायो ।
कह्यौ हमारो करौ, लेहु सुख मन कौ भायौ ॥
रोगी वर गुरु हीन करै कह काकों परिहर ।
निहचै 'भगवत' करै एक, नहिं डोलै घर-घर ॥२८॥

पद

परम पावन करुवा[2] कौ पानी ।
जाके पियत हृदय में आवत, मोहन-राधा रानी ॥
अनुभव प्रगट होत क्रीड़ा कौ, मोद विनोद कहानी ।
'भगवतरसिक' निकुंज महल की, टहल मिलै मनमानी ॥२९॥
लखी जिन लाल की मुसक्यान ।
तिनहिं बिसरी बेद-बिधि, जप, जोग, संयम, ध्यान ॥
नेम, ब्रत, आचार, पूजा, पाठ गीता ग्यान ।
'रसिक भगवत' दृग[3] दई असि,[4] ऐंचिकै मुख-म्यान ॥३०॥

भक्त-नामावली

पद

हमसों इन साधुन सों पंगति[5] ।
जिनकौ नाम लेत दुख छूटत, सुख लूटत तनु संगति ॥

[1]आग । [2]टट्टी संप्रदाय के महात्मा बरतन के नाते केवल एक करुवा रखते थे। [3]दृग...म्यान-मुख-रूपी म्यान से मुसक्यान-रूपी तलवार खींच कर आँखों को हलाल कर डाला । [4]तलवार । [5]पंक्ति, जाति-बिरादरी ।

मुख्य महंत काम रति, गनपति, अज, महेस, नारायन[1] ।
सुर, नर, असुर, सुमुनि, पंछी, पसु, जे हरि भगति परायन ॥
बालमीकि, नारद, अगस्त, सुक, ब्यास सूत कुल-हीना[2] ।
सबरी, स्वपच, बसिष्ठ, बिदुर, बिदुरानी[3], प्रेम-प्रबीना ॥
गोपी, गोप, द्रौपदी, कुंती, आदि पंडवा, ऊधौ[4] ।
बिस्नुस्वामि[5], निंबारक, माधौ, रामानुज मग सूधौ ॥
लालाचारज, धनुरदास, कूरेस भावरस-भीजै ।
ग्यानदेव गुरु, सिष्य तिलोचन, पटतर कों किहिं दीजै ?
पदमावती-चरन कौ चारन[6], कवि जयदेव जसीलौ ।
चिंतामनि चित रूप लखायो बिल्वमंगलहि रसीलौ ॥
केसव भट्ट, श्रीभट्ट, नारायन भट्ट, गदाधर भट्टा ।
बिट्ठलनाथ, बल्लभाचारज, ब्रज के गूजर जट्टा[7] ॥
नित्यानंद, अद्वैत, महाप्रभु, सची[8]-सुवन चैतन्या ।
भट्टगुपाल, रघुनाथ गुसाईं, मधू गुसाईं धन्या ॥
रूप, सनातन, भजि बृंदाबन तजि दारा सुत संपति ।
व्यासदास, हरिबंस गुसाईं दिन दुलराई दंपति ॥
श्री स्वामी हरिदास हमारे, बिपुल[9], बिहारनि-दासी ।
नागरि, नवल माधुरी, बल्लभ नित्यबिहार-उपासी ॥
तानसेन, अकबर, करमेती, मीरा, करमाबाई ।
रतनावती, मीर, माधौ, रसखानि रीति रस गाई ॥
अग्रदास, नाभादि सखी ये सबै राम-सीता की ।

[1]शेषशायी नारायण, श्रीकृष्णोपासकों के मतानुसार नारायण नित्यविहारी के अंश-मात्र हैं। [2]शूद्र। [3]भक्तवर विदुर की सती स्त्री। [4]श्रीकृष्ण के अनन्य सखा उद्धव। [5]विष्णुस्वामि ... रामानुज—क्रमशः शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत और विशिष्टाद्वैत वैष्णव सिद्धांतों के प्रवर्त्तक। [6]भाट, यश वर्णन करने वाला। [7]जाट। [8]श्रीचैतन्य महाप्रभु की माता। [9]विट्ठलविपुल।

सूर, मदनमोहन, नरसी अलि तसकर[१]-नवनीता की ॥
माधौदास, गुसाईं तुलसी, कृष्णदास, परमानँद ।
बिस्नुपुरी, श्रीधर, मधुसूदन, पीपा, गुरु रामानँद ॥
अलि भगवान, मुरारि रसिक, स्यामानँद, रंका बंका ।
रामदास, चोधर, निष्किंचन[२] सह्मन भक्त निसंका ॥
लाखा, अंगद भक्त, महाजन गोविँद, नंद-प्रबोधा[३] ।
दास मुरारि, प्रेमनिधि, बीठलदास मथुरिया योधा[४] ॥
लालमती, सीता, प्रभुता झाली गोपाली बाई ।
सुत विप्र दियो पूजि सिलपिल्ले भक्ति रसीली पाई ॥
पृथ्वीराज, खैमाल, चतुरभुज राम-रसिक रस-रासा ।
आसकरन, मधुकर जैमल नृप, हरीदास, जनदासा ॥
सैना, धना, कबीरा, नामा, कूबा, सदन कसाई ।
बारमुखी[५], रैदास सभा में सही न स्याम सहाई ॥
चित्रकेतु, प्रहलाद बिभीषन, बलि गृह बाजै[६] बावन ।
जामवंत, हनुमंत, गीध, गुह, किये राम जे पावन ॥
प्रीति, प्रतीति, प्रसाद साधु सो इन्हें इष्ट गुरु जानों ।
तजि ऐश्वर्य, मृजाद[७] बेद की तिनके हाथ बिकानों ॥
भूत भविष्य, लोक चौदह में भये हाँयँ हरि प्यारे ।
तिन-तिन सों ब्यौहार हमारो अभिमानिन तें न्यारे[८] ॥
'भगवतरसिक' रसिक परिकर करि सादर भोजन पावैं ।
ऊँचो कुल आचार अनादर देखि ध्यान नहिं आवैं ॥२१॥*

[१]माखनचोर, श्रीकृष्ण। [२]परमत्यागी। [३]स्वामी प्रबोधानंद। [४]भक्त-वीर। [५] पिंगला नाम की वेश्या। [६]प्रसिद्ध है। [७]मर्यादा। [८]विरक्त।

*इस पद में आये हुये भक्तों की कथा नाभा-कृत भक्तमाल, उत्तरार्द्ध भक्तमाल तथा नवभक्तमाल, में लिखी है। यहां पर, यदि प्रत्येक भक्त की कथा लिखी जाय, तो एक बन जायगा। अतएव स्थल-संकीर्णतावश हम इनकी प्रासंगिक पोथ कथा देने में असमर्थ है।

सारंग

बेषधारी[1] हरि के उर सालै[2] ।
परमारथ स्वपनें नहिं जानें, पैसनही कों खैंचें ॥
कबहुँक बकता ह्वै बनि बैठैं, कथा भागवत गावैं ।
अर्थ-अनर्थ कछू नहिं भासें, पैसन ही कों धावैं ॥
कबहुँक हरि मंदिर कों सेवें, करें निरंतर बासा ।
भाव-भगति को लेस न जानें, पैसन ही की आसा ॥
नाचैं-गावैं, चित्र बनावें, करैं काव्य चटकीली[3] ।
साँच बिना हरि हाथ न आवे, सब रहनी है ढीली[4] ॥
बिन बिबेक, बैराग भगति बिनु, सत्य न एकौ मानों ।
'भगवत' विमुख कपट चतुराई, सो पाखंडै जानौ ॥ ३२ ॥

पद

इतने गुन जामें सो संत ।
श्री भागवत मध्य जस गावत, श्री मुख कमलाकंत[5] ॥
हरि कौ भजन, साधु की सेवा, सर्वभूत पर दाया ।
हिंसा लोभ दंभ छल त्यागै, विष-सम देखै माया[6] ॥
सहनसील, आसय उदार अति, धीरज-सहित बिवेकी ।
सत्य बचन सब कों सुखदायक, गहि अनन्य-ब्रत एकी ॥
इंद्रीजित अभिमान न जाके, करै जगत कों पावन ।
'भगतरसिक' तासु की संगति, तीनहुँ ताप-नसावन ॥ ३३ ॥

पद

हमारो बृंदाबन उर और ।
माया काल तहां नहिं ब्यापै, जहां रसिक सिरमौर ॥
छूटि जाति सत-असत-बासना, मन की दौरादौर[7] ।

[1]कपटमय साधु-भेष धारण किये हुए । [2]कष्ट पहुँचाता है । [3]जी-लुभावनी । [4]व्यर्थ । [5]लक्ष्मीनाथ विष्णुभगवान् । [6]कामकांचन । [7]चंचलता ।

'भगवतरसिक' बतायो श्रीगुरु[१], अमल अलौकिक ठौर ॥३४॥

काफी

बलि जैहौं श्री रसिकाचारज[२] ।
नित बिहार उद्धार कियो जिन, मथिकैं हृदय-सिंधु बर बारज ॥
भ्रम, तम, स्रम[३] सब हरे हमारे, कर गहि सकल सँभारे कारज ।
'भगवतरसिक' प्रसंसित कीन्हैं, स्यामास्याम सहायक आरज[४] ॥३५॥

गौरी

नमो नमो बृंदाबन-चंद ।
नित्य अनंत अनादि एकरस, पिय-प्यारी बिहरत स्वच्छंद ॥
सत्त[५] चित्त[६]-आनंद[७]-रूप मय खग मृग, द्रुम बेली वर बृंद ।
'भगवतरसिक' निरंतर सेवत, मधुप भये पीवत मकरंद[८] ॥३६॥

अरिल्ल

दुख-सुख भुगतै देह, नहीं कछु संक है ।
निंदा-स्तुति करौ राव क्या रंक है ॥
परमारथ ब्यौहार बनौ कै[९] ना बनौ ।
अंजन ह्वै मम नैन 'रसिकभगवत' सनौ[१०] ॥३७॥

टोड़ी

तुव[११] मुख नैन कमल अलि मेरे ।
पलक[१२] न लगत पलक[१३] बिनु देखे, अरबरात[१४] अति फिरत न फेरे ॥
पान करत मकरंद रूप-रस, भूलि नहीं फिर इत-उत हेरे ।
'भगवतरसिक,' भये मतवारे, घूमत रहत छके मद तेरे ॥३८॥

[१]श्रीललितमोहिनीदासजी से तात्पर्य है। [२]रसिकों के आद्याचार्य श्रीस्वामी-हरिदासजी। [३]संशय। [४]आर्य। [५]अस्ति; भाव। [६]चैतन्य। [७]त्रिकालाबाधित, एकरस, अखंड आनंद। [८]पराग। [९]अथवा। [१०]लीन रहो। [११]तुव...मेरे—तेरे मुख रूपी कमल का पराग पान करने के लिये मेरे नेत्र भ्रमर रूप हैं। [१२]आँखों की पलक। [१३]एक पल। [१४]फड़फड़ाते हैं।

टोड़ी

तुव मुख चंद चकोर ये नैना।

अति आरत अनुरागी, लंपट[1], भूल गई गति पलहुँ लगै ना ॥
अरबरात मिलिबे को निसिदिन, मिलेइ[2] रहत मनु कबहुँ मिलै ना ॥
'भगवतरसिक' रसिक की बातैं, रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना ॥३९॥

दोहा

काया कुंज निकुंज मन, नैन द्वार अभिराम ।
'भगवत' हृदय सरोज सुख, बिलसत स्मामा-स्याम ॥४०॥
जीभ जुगुल नामहिं जपै, दृगन बिलोकै रूप ।
उदर भरै अलिवृत्ति[3] सों, छाँड़ि स्वान मृग भूप ॥४१॥
जप तप तीरथ दान ब्रत, जोग जग्य आचार ।
'भगवत' भक्ति अनन्य बिनु, जीव भ्रमत संसार ॥४२॥
बेदनि[4] खोवै बैद सो, गुरु गोविंद-मिलाप ।
भूख भजै भोजन सोई, 'भगवत' और खिलाप[5] ॥४३॥
'भगवत' जन[6] स्वाधीन नहिं, पराधीन जिमि चंग[7] ।
गुन[8] दीने आकाश में, गुन लीने अँग-संग ॥४४॥
'भगवत', जन चकरी कियो, सुरत[9] समाई डोर ।
खेलति निसिदिन लाड़िली,[10] कबहुँ न डारति तोर ॥४५॥*
ग्राम-सिंह भूखो विपिन, देखि सिंह कौ रूप ।

[1]लोभी। [2]मिलेइ ... मिलै ना— दिन रात रहते तो सामने ही है, किंतु प्रेम की तृप्ति न होने के कारण सदा यही शंका रहती है कि अभी मिले हैं या नहीं। [3]मधुकरी भिक्षा, दस-पाँच घरों से माँग कर खाना। [4]वेदना, कष्ट। [5]खिलाफ़, विरुद्ध। [6]जीव। [7]पतंग। [8]गुण, डोरी। [9]ध्यान, लव। [10]श्रीराधिकाजी।

*संसार-चकरी से यदि मुक्त होना है, तो भगवतरसिक जैसी चकरी बनने का प्रयत्न कीजिए।

सुनि-सुनि भूखैं गलिन में, सबै स्वान बेकूप[1] ॥४६॥
नहिं निरगुन सरगुन[2] नहीं, नहिं नेरे, नहिं दूरि ।
'भगवतरसिक' अनन्य की, अद्भुत जीवन मूरि ॥४७॥
तुष्टि पुष्टि तासों रहै, जरा न ब्यापै रोग ।
बाल अवस्था जुवा पुनि, तिनकों करै न भोग ॥४८॥
जनम-मरन माया नहीं, जहँ निसि-दिवस न होइ ।
सत-चित-आनँद एकरस, रूप अनूपम दोइ ॥४९॥
निसिबासर तिथि मास रितु, जे जग के त्यौहार ।
ते सब देखौ भाव[3] में, छाँड़ि जगत-ब्यौहार ॥५०॥
छके जुगुल-छबि-बारुनी, डसे[4] प्रेमवर-ब्याल ।
नेम न परसै गारुड़ी[5] देख दुहुँन कौ ख्याल[6] ॥५१॥
नवरस[7] नित्य-बिहार में, नागर[8] जानत नित्त ।
'भगवतरसिक' अनन्य वर, सेवा मन बुधि चित्त ॥५२॥

ईमन

जय जय रसिक रवनी-रवन[9] ।
रूप-गुन-लावन्य-प्रभुता, प्रेमपूरन भवन ॥
बिपति जन की भानिबे[10] कों, तुम बिना कहु कवन ।
हरहु मन की मलिनता, ब्यापै न माया-पवन ॥
विषयरस इंद्री अजीरन, अति करावहु बवन ।
खोलिए हिय के नयन, दरसै सुखद बन अवन ॥
चतुर चिंता मनि दयानिधि, दुसह दारिद-दवन ।

[1]बेवक़ूफ़ । [2]सगुण । [3]त्रिकालाबाधित, नित्य, अखंड, एकरस भगवत्प्रेम । [4]काटे गये, घायल किये गये । [5]मंत्र-बल से साँप का विष दूर करने वाला । [6]दशा, लीला । [7]साहित्यिक नवरस; यथा— शृंगार, हास्य, करुणा, वीर, रौद्र, भयानक, अद्भुत, वीभत्स और शांत । [8]रस-प्रवीण । [9]रमणी-रमण, श्रीराधा वल्लभ । [10]काटने के लिये ।

मेटिए 'भगवत' व्यथा, हँसि भेंटिए तजि मवन[1] ॥५३॥

चर्चरी

कुंज बिहारी एक आस, और सकल तजि दुरास,
असन बसन तें उदास,[2] बाँके ब्रत-धारी[3] ।
गान-दया-गुन-निधान, रसिक-मुकुट-मनि-प्रधान,
रागभोग समय जान, तोषत[4] पिय-प्यारी ॥
तिमिर-हरन कों दिनेस, ताप-हरन को निसेस[5],
पाप-दहन पावकेस, गुरुता मुखचारी[6] ।
निधिबन-आसीन[7] नित्त, बर बिहार सरस वित्त,
जय जय हरिदास, रसिक 'भगवत' बलिहारी ॥५४॥

पद

यह दिव्य प्रसाद प्रिय प्रिया कौ ।
दरसत हीं मन मोद बढ़ावत, परसत पाप हरत हिय कौ ॥
पावन परमप्रेम उपजावत, भुलवत[8] भाव पुरुष तिय कौ ।
'भगवतरसिक' भावतो[9] भूषन, तिहिं छन होत जुगुल जिय कौ ॥५५॥

---

[1]मौन-ब्रत । [2]बेपरवाह । [3]प्रेम का महाकठिन व्रत धारण करने वाले । बोधा कवि कहते हैं: 'यह प्रेम कौ पंथ कराल महा, तरवार की धार पै धावनो है ।' [4]तोषत...प्यारी—श्रीराधाकृष्ण को प्रसन्न करते हैं । [5]चंद्रमा । [6]ब्रह्मा । [7]विराजमान । [8]भुलवत...तिय कौ—स्त्री-पुरुष का दैहिक भेद-भाव भुला देता है । [9]प्यारा ।

हठी

छप्पय

राधा-चरन-सरोज-मधुप रस-सरस-उपासी ।
भावुक-भक्ति-विभोर मोर, घनस्याम-विलासी ॥
ब्रजरज पै तिहुँ लोक-विभव तृन लों तजि दीन्हों ।
परमप्रेम दरसाय विमल जीवन-फल लीन्हों ॥
श्रीहित कुल कौ अवलंब लै, 'राधा-सत' विरच्यौ जु इक ।
दृढ़व्रत अनन्य हठ कै भयौ हठी, हठी साँचो रसिक ॥

—वियोगी हरि

हठीजी ने 'राधासुधाशतक' संवत् १८३७ में समाप्त किया, जैसा कि उन्होंने इस दोहे में लिखा है:—

ऋषि सुदेव बसु ससि सहित, निरमल मधु को पाय ।
माधव तृतिया भृगु निरखि, रच्यौ ग्रंथ सुखदाय ॥

कुछ लोगों का यह अनुमान है कि हठीजी श्रीहितहरिवंशजी के शिष्य थे, परंतु रचना-काल देखने पर यह सिद्ध नहीं होता। हितकुल के शिष्य अवश्य थे, किंतु इनके गुरु कौन थे, यह अभी तक अज्ञात है। इन्होंने 'राधा-सुधा-शतक' में कहीं अपने गुरुदेव का नाम-स्मरण भी नहीं किया।

इनका बनाया केवल एक 'राधा-सुधा-शतक' मिलता है। इसमें ११ दोहे, और सवैये तथा कवित्त १०३ हैं। हठीजी, भगवद्भक्त होने के अतिरिक्त, साहित्य-मर्मज्ञ भी थे। इन्होंने उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और अनुप्रासों का अच्छा आदर किया है। राधिकाजी का प्राधान्य मानते हुए इन्होंने अन्य सब देवी-देवताओं को नीचा दिखाया है। इनको राज-दरबारों तथा अंतःपुरों का अच्छा अनुभव था। जान पड़ता है, 'शतक' में कई पद्य

ऐसे मिलते है, जिनमें इन्होंने राजसी ठाटबाट का पूरा चित्र उतार दिया है। इनके कतिपय मधुर पद्य नीचे लिखे जाते हैं :

श्रीराधा-सुधा-शतक

दोहा

श्रीबृषभानु-कुमारि के, पग बंदौं कर जोर।
जे निसिबासर उर धरैं, ब्रज बसि नंद-किसोर ॥१॥
कीरति[1]-कीरति[2] कुँवारि की, कहि-कहि थके गनेस।
दस सत मुख बरनन करत, पार न पावत सेस ॥२॥
अज सिव सिद्ध सुरेस मुख, जपत रहत निसि जाम।
बाधा जन की हरत हैं, राधा राधा नाम ॥३॥
राधा राधा जे कहैं, ते न परैं भव-फंद।
जासु कंध पर कमलकर, धरे रहत ब्रजचंद ॥४॥
राधा राधा कहत हैं, जे नर आठो जाम।
ते भवसिंधु उलंघि कैं, बसत सदा ब्रजधाम ॥५॥

कवित्त

काहू कों सरन संभु गिरिजा गनेस सेस,
काहू कों सरन है कुबेर-ऐसे धोरी[3] कौ;
काहू कों सरन मच्छ, कच्छ बलराम, राम,
काहू कों सरन गोरी साँवरी-सी जोरी कौ ॥
काहू कों सरन बोध, बामन, बराह, व्यास,
एही निराधार सदा रहै मति मोरी कौ।
आनँदकरन बिधि-बंदित[4] चरन एक,
'हठी' कों सरन बृषभानु की किसोरी कौ ॥६॥

[1]कीर्ति, यश। [2]राधिका जी की माता का नाम। [3]धनी। [4]आदि सृष्टि-कर्ता ब्रह्मा से बंदनीय।

कलपलता के किधों पल्लव नवीन दोऊ,
हरन मंजुता[१] के कंजता के बनिताके हैं ।
पावन पतित गुन गावैं मुनि ताके छबि,
छलै सविता के[२] जनता के गुरुताके हैं ।।
नवो निधिता के सिद्धता के आदि-आलै[३] 'हठी'
तीनों लोक ताके प्रभुता के, प्रभुताके हैं ।
कटैं पाप ताके[४], बढ़ैं पुन्य के पताके, जिन,
ऐसे पद ताके[५] वृषभानु की सुता के हैं ।।७।।

कोमल बिमल मंजु कंज से अरुन सोहैं,
लच्छन[६]-समेत सुभ सुद्ध कंदनी के हैं ।
हरी के मनालय[७] निरालय निकारन के,
भक्ति-बरदायक बखानैं छंद नीके हैं ।।
ध्यावत सुरेस संभु सेस औ गनेस, खुले,
भाग अवनी के जहां[८] मंद परैं नीके हैं ।
कटै जन फंदनीय द्वंदनीय हरि-हर,
बंदनी चरन वृषभानु-नंदनी के हैं ।।८।।

कोऊ उमाराज[९], रमाराज, जमाराज[१०] कोऊ,
कोऊ रामचंद सुखकंद नाम नाधे मैं ।
कोऊ ध्यावै गनपति, फनपति, सुरपति, कोऊ,
देव ध्याय फल लेत पल आधे मैं ।।

[१]कोमलता । [२]सूर्य । [३]आदि स्थान मूलाधार । [४]उसके । [५]देखे; सेये । [६]चिह्न, २४ चिह्न दक्षिण चरण में और २४ वाम चरण में माने गये हैं; भक्ति-मार्ग के अनुसार श्रीचरण-चिह्नों के ध्यान से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है । [७]मन के बसने का स्थान । [८]जहां...परैं—जिस पर धीरे-धीरे मंदगति से चरण रखे जाते हैं । [९]शिवजी । [१०]यमराज ।

'हठी' की अधार निरधार[1] को अधार तू ही,
जप तप जोग जग्य कछुवै न साधे मैं ।
कटै कोटि बाधे[2] मुनि[3] धरत समाधे, ऐसे,
राधे, पद रावरे सदा ही अवराधे[4] मैं ॥९॥

कोऊ धन-धाम कोऊ चाहै अभिराम, कोऊ,
साहिबी सुरेस भाँति लाख लहियतु[5] है ।
कोऊ गजराज, महाराज, सुखराज कोऊ,
तीरथ-बरत[6]-नेम अंग दहियतु[7] है ॥
ऐसो चित चाहै, चरचा है दुनिया की 'हठी',
चाहै हृदै एक तीन ठीक ठहियतु है ।
जन रखवारी की सु प्रभु-प्रानप्यारी की,
सुकीरति-दुलारी की नजर[8] चहियतु है ॥१०॥

कंचन-महल-चौक, चाँदनी बिछौना तामें,
जरी को बितान[9]-तान[10]भान[11]-जोतिमंद की ।
लालन की मालैं, लाल सारी कोरदार अंग,
ओंठन की लाली जिमि लाली जोवबंद[12]की ॥
रंभा[13]-सी रमा-सी जहां दासी मेनका-सी 'हठी',
ठाढ़ी कर जोरें, तेऊ छीनै जोति चंद की ।
गावै बेद बानी[14],चौंर ढारति भवानी[15]राधे,
बैठी सुखदानी महारानी नँद-नंद की ॥११॥

[1]निराधार,असहाय। [2]बाधाएं। [3]मुनि...समाधे—मुनि लोग समाधि अवस्था में जिन (चरणों) का ध्यान धरते हैं। [4]मैंने आराधना की है। [5]प्राप्त करता है। [6]व्रत। [7]कठोर हठयोग द्वारा शरीर को जलाते हैं। [8]कृपादृष्टि। [9]चँदोवा। [10]तनाव। [11]भानु। [12]जपा पुष्प। [13]अप्सराएं। [14]सरस्वती। [15]पार्वती।

चंदन लिपायो चौक, चाँदनी[1] चँदोवे तामें,
चाँदनी। बिछौना फैली लहर सुगंद[2] की ।
चाँदनी की साज नीकी चंद-सम चमकन,
चारयो ओर चंदमुखी चंद-जोति मंद की ॥
चाँदनी-सी चार चारु चाँदनी-सी फैली 'हठी',
चाँदनी-सी हाँसी, कै मिठाई सुधा-कंद[3] की ।
चंदन की चौकी बैठी चंदन लगाय भाल,
चंद-से बदन राधे रानी ब्रजचंद की ॥१२॥

चामीकर[4] चौकी पर चंपक-बरन 'हठी',
अंग चमकैं[5] चारु चंचलै चलावतीं ।
तारा-सी तरंगना-सी अतर लगावैं रति,
मुकुर दिखावैं बिजैं बीजन डुलावतीं ॥
कमला करनि जोरैं, बिमला[6] सुतृन[7] तोरैं,
नवला[8], लै मरजी[9] को अरजी सुनावतीं ।
सुरन की रानी, सुरपालन की रानी,
दिगपालन की रानी द्वार[10] मुजरा न पावतीं ॥१३॥

फटिकसिलान के महल महरानी बैठी,
सुरन की रानी जुरि आईं मन-भावतीं ।
कोऊ जलदानी[11] पानदानी पीकदानी लिये,
कोऊ कर बीनै लै सुहाये गीत गावतीं ॥

[1]सफ़ेद मलमल का चँदोवा । [2]सुगंध । [3]अमृत के समान कंद; अमृत का रंग श्वेत माना गया है—"अमी हलाहल मद भरे, सेत स्याम रतनार ।" [4]सोना। [5]चमक-दमक । [6]सरस्वती । [7]तिनका तोड़-तोड़ कर बलैयां लेती हैं । [8]नव-वधू । [9]आज्ञा लेकर । [10]द्वार...पावतीं—प्रणाम करने का भी साहस नहीं पड़ता, द्वार पर पड़ी-पड़ी प्रतीक्षा किया करती हैं । [11]गड़ुवा ।

कोऊ चौंर ढारैं चारु चाँदनी-से चौजबारे,
'हठी' लै सुगंधन सों अलकैं बनावतीं ।
मोतिन के, मनिन के, पन्नन[1] के, प्रबालन के,
लालन के, हीरन के हार पहिनावतीं ।।१४।।

सारी जरतारी, लगी मनिन-किनारी त्योंही,
दामिनी[2] दबाइ लेति दमक रदन की ।
हीरन के हार 'हठी', गजरा गुहाबदार,
अंग-अंग फैलि रही दीपति[3] मदन की ।
हेम की धरी-सी मानों मुखन जराब जरी,
सब गुनभरी, परी छबि के कदन की ।
चाँदनी बिछौना, भाल चंदन लगाये बाल,
चाँदनी में बैठी लाल चंद[4] से बदन की ।।१५।।

चंद की कला-सी, नवला-सी सखी संग वारौं,
रंभा, रमा, उमा, 'हठी' उपमा कों को रही ?
कीरति-किसोरी बृषभानु की दुलारी राधा,
आली, बनमाली कौ सहज चित चोर ही ।।
भौन तें निकसि प्यारी पाय धारे बाहिर लौं,
लाली तरवान की उमड़ि इक ओर ही ।
बगर-बगर[5] अरु डगर-डगर बर,
जगर-मगर चारयों ओर दुति हो रही ।।१६।।

हीन हौं, अधीन हौं, तिहारो ब्रज-साहिबनी[6] !
हिय में मलीन करुना की कोर ढरिए ।

[1] हरे रंग का एक रत्न । [2] दामिनी...रदन की—दाँतो की दमक के आगे बिजली भी छिप जाती है । [3] कांति । [4] लाल पूर्णिमा का उदय होता हुआ चंद्रमा । [5] घर-घर । [6] ब्रज-स्वामिनी ।

भारी भवसागर तें बोरत बचावौ मोहिं,
काम क्रोध लोभ मोह लागे सब अरि ए[१] ।
बुरो-भलो, जैसो-तैसो, तेरे द्वार पर्‌यो हौं तो,
मेरे गुन-औगुन तू मन में न धरिए ।
कीरति-किसोरी, बृषभानु की दुहाई[२] तोहिं,
लच्छ-लच्छ[३] भाँति सों 'हठी' कौ पच्छ[४] करिए ॥१७॥

जन-दुख-हरनी, धरनी-पति ध्यावैं तोहिं,
तेरी जग कर्नी[५] बिधि बर्नी[६] बड़े थान[७] की ।
चिंता कैसो घेरा मन ढेरा[८]-सो भ्रमत फिरै,
हृदै नहि डेरा,[९] सुधि खान की न पान की ॥
ध्यावत बनै न मोहिं तेरोई कहावत हौं,
'हठी' पै कृपा की कोर राखि दया-दान की ।
औगुननि-भरो हौं कहत करजोरि अब,
मेरो पच्छ करि तू किसोरी बृषभानु की ॥१८॥

ध्यावत महेसहूं गनेसहूं धनेसहूं,[१०]
दिनेसहूं फनेस[११] त्यों मुनेस[१२] मन मानी हैं ।
तीनो लोक जपत, त्रिताप की हरनहारि,
नवो निद्धि, सिद्धि, मुक्ति भई दरवानी[१३] हैं ॥
कीरति-दुलारी सेवैं चरन बिहारी धन्य,
जाकी कित्त[१४] नित्त बिधि बेदन बखानी है ।

[१]ये शत्रु । [२]सौगंध । [३]लाख । [४]पक्ष, तरफ़दारी । [५]करणी, लीला । [६]वरणी, वर्णन की । [७]स्थान । [८]चक्कर । [९]शांति । [१०]कुबेर । [११]शेषनाग । [१२]शुद्ध शब्द 'मुनीश' है; यहां महेस-गनेस आदि का अनुप्रास मिलाने के लिए कवि ने शब्द को विकृत कर 'मुनेस' कर दिया है। [१३]द्वार पर खड़ी रहनेवाली नौकरानी । [१४]कीर्त्ति ।

साधा[1] काज पल में, अराधा[2] छिन आधा 'हठी',
बाधा हरिबे को एक राधा महारानी है ॥१९॥

गति पै गयंद वारौं, पग अरबिंद वारौं,
हठी, अलि-बृंद वारौं अलकन-फंद पै।
गुलफ[3] गुबिंद वारौं, सीलता पै सिंधु वारौं,
सकल सुगंध वारौं मुख की सुगंद पै ॥
कटि पै मृगेंद वारौं, तनु छबि-बृंद वारौं,
बेनी पै फनिंद वारौं नारी नँदनंद पै।
ओंठ जीवबंधु[4] वारौं, हाँसी सुधाकंद वारौं,
कोटि-कोटि चंद वारौं राधे-मुख-चंद पै ॥२०॥

गिरि कीजै गोधन[5], मयूर नव कुंजन को;
पसु कीजै महाराज नंद के बगर[6] कौ।
नर कौन ? तौन, जौन 'राधे-राधे' नाम रटै,
तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर[7] कौ ॥
इतने पै जोई कछु कीजिए कुँवर कान्ह,
राखिए न आन फेर 'हठी' के झगर कौ।
गोपी-पद-पंकज-पराग कीजै महाराज !
तृन कीजै रावरेई गोकुलनगर कौ ॥२१॥

सवैया

मोरपखा, गर गुंज[8] की माल, किये नव भेष बड़ी छबि छाई।
पीतपटी दुपटी कटि में, लपटी लकुटी 'हठी' मो मन भाई ॥
छूटी लटैं, डुलैं कुंडल कान, बजै मुरली-धुनि मंद सुहाई।
कोटिन काम गुलाम भये, जब कान्ह ह्वै भानु[9]-लली बनि आई ॥२२॥

[1]पूरा कर दिया। [2]आराधना की। [3]गुल्फ, एडी के ऊपर की गाँठ। [4]जपा पुष्प। [5]गोवर्द्धन। [6]गोशाला। [7]कगार, किनारा। [8]गुंजा, घूँघुची। [9]वृषभानु।

नवनीत गुलाब तें कोमल है, 'हठी' कंज की मंजुलता इन में ।
गुललाला[१] गुलाल प्रबाल जपा छबि, ऐसी न देखी ललाइन[२] में ॥
मुनि-मानस-मंदिर मध्य बसैं, बस होत हैं सूधे सुभाइन में ।
रहु रे मन, तू चित-चाइन सों, बृषभानु-कुमारि के पाइन में ॥२३॥

चंद-सों आनन, कंचन-सो तन, हौं लखिकैं बिनमोल बिकानी ।
औ अरबिंद-सी आँखिन कों 'हठी', देखत मेरियै[३] आँखि सिरानी[४] ॥
राजति है मनमोहन के सँग, वारौं मैं कोटि रमा, रति, बानी[५] ।
जीवनमूरि सबै ब्रज की, ठकुरानी[६] हमारी है राधिका रानी ॥२४॥

जाकी कृपा सुक[७] ग्यानी भये, अतिदानी औ ध्यानी भये त्रिपुरारी ।
जाकी कृपा बिधि बेद रचे, भये ब्यास पुरानन के अधिकारी ॥
जाकी कृपा तें त्रिलोकी धनी, सु कहावत श्री ब्रजचंद-बिहारी ।
लोक-घटा[८] तें 'हठी' को बचाउ, कृपा करि श्रीबृषभानु-दुलारी ॥२५॥

दोहा

ऋषि[९] सुदेव बसु ससि सहित, निरमल मधु को पाय ।
माधव तृतिया भृगु निरखि, रच्यौ ग्रंथ सुखदाय ॥२६॥

---

[१]लाल रंग का एक फूल । [२]लाली में, अरुणिमा में । [३]मेरी भी । [४]ठंडी हुई, प्रसन्न हुई । [५]सरस्वती । [६]स्वामिनी । [७]व्यासजी के बाल परमहंस पुत्र शुकदेव । [८]सांसारिक प्रपंच । [९]ऋषि...ससि—७३८१; इसे, संवत निकालने के नियमानुसार पलट देने से १८३७ संवत सिद्ध होता है ।

सहचरिशरण

छप्पय

कुंज-केलि-माधुर्य-सिंधु पूरन अवगाह्यो ।
गादी कौ अधिकार संतव्रत अगम निबाह्यो ॥
'मंजावलि' रचि सरस रहसि-पद्धति विस्तारी ।
भई न है नहिं ह्वैहै रचना अस रसवारी ॥
जन-रसिक-मंडली-आभरण, सेये श्रीस्यामा-चरण ।
पट सिष्य राधिकादास कौ, प्रेमपुंज सहचरिसरण ॥

—वियोगी हरि

सहचरिशरणजी का असली नाम सखीशरणजी[1] था। यह टट्टी संस्थान की परंपरा[2] में महंत राधिकादासजी के उत्तराधिकारी थे। सहचरिशरणजी का जन्म-काल, अनुमानतः, वैक्रमीय १६ वीं शताब्दी

[1] 'मिश्रबंधुविनोद' प्रथम संस्करण, (पृष्ठ ७८३) में गुरु-प्रणालिका और मंजावली के रचयिता सखीशरणजी अयोध्या के महंत माने गये हैं। सखीशरण और सहचरिशरण एक ही व्यक्ति थे, और यह वृंदावन के टट्टी-संस्थान के महंत थे।

[2] टट्टी-स्थान की गुरु-परंपरा इस प्रकार है :

१. श्रीस्वामीहरिदासजी; २. श्रीविट्ठलविपुलजी; ३. श्रीविहारनिदेवजी; ४. श्रीसरसदेवजी; ५. श्रीनरहरिदेवजी; ६. श्रीरसिकदेवजी; ७. श्रीललितकिशोरीजी (इन्होंने टट्टी-स्थान बनवाया); ८. श्रीललितमोहिनीजी; ९. श्रीचतुरदासजी (श्री-भगवद्रसिकजी इनके गुरु भाई थे); १०. श्रीठाकुरदासजी; ११. श्रीराधिकादासजी; १२. श्रीसखीशरण (सहचरिशरण); १३. श्रीराधाप्रसादजी; १४. श्रीभगवानदासजी (वर्त्तमान महंत)।

का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। इन्होंने गुरु-प्रणालिका तथा आचार्योत्सव सूचना में टट्टी-संस्थान के महंतों और महात्माओं का समय-निरूपण किया है। किंतु समय-निरूपण केवल श्रीस्वामीहरिदासजी से लेकर श्रीललितमोहिनीजी तक ही किया गया है। उन्होंने ललितमोहिनीजी के बाद के महंतों का कुछ भी वर्णन नहीं किया; कदाचित् अष्टाचार्य के साथ ही टट्टी-संस्थान का वास्तविक जीवन समाप्त कर दिया है। और बात भी ऐसी ही है।

सहचरिशरणजी ने फुटकर पदों के अतिरिक्त दो स्वतंत्र, ग्रंथों की रचना की—'ललित-प्रकाश' और 'सरस-मंजावली टट्टी।' 'ललित-प्रकाश' में टट्टी-संस्थान का सिद्धांत, श्रीस्वामीहरिदासजी का चरित, गुरु-प्रणालिका, आचार्योत्सव आदि विषयों का विविध छंदों में वर्णन किया गया है। 'सरसमंजावली' में १४० मंज वा मौंझ हैं। बीच में कहीं-कहीं पर अड़िल्ल छंद भी हैं। इसकी रचना बड़ी ही उच्च-कोटि की है। काव्य-चमत्कार के साथ ही इसमें प्रेम-माधुरी और रस-वारुणी की एक निराली ही छटा और मादकता है। इसकी भाषा भी एक अनूठे ढंग की है। व्रजभाषा, खड़ीबोली, पंजाबी और फ़ारसी का उसमें बड़ा ही मधुर मिश्रण हुआ है। कोई-कोई छंद तो 'तीर तलवार और तमंचा' का काम कर जाता है।

सहचरिशरणजी की सुधारस-मयी रुचिर रचना की कुछ बानगी यहां रसिकजनों के प्रीत्यर्थ प्रस्तुत की जाती है :

सरस-मंजावली

अड़िल्ल

स्याम कठोर न होहु हमारी बार कों।
नैकु दया उर ल्याय उदय करि प्यार कों॥
'सहचरि सरन' अनाथ अकेलो जानिकैं।
कियो चहत खल ख्वार[1] बचाओ आनिकैं॥१॥

[1] बरबाद, नष्ट।

स्याम सुबेद[1] बेद कौ सार है।
आशिक-तिलक, इश्क-करतार है॥
आनँद कंद तीन गुन[2] तें परे।
प्रीति - प्रतीति रसिक तासों करें॥२॥

मंज

कहि-कहि बचन, बिहँसि, माथे पर कर को कबै धरोगे ?
करुनाकर चितचोर कहावत, चित को कबै हरोगे ?
हरषि हमारी आँखिन मे सुख, सुषमा[3] कबै भरोगे ?
'सहचरिसरन' रसिक आशिक माहि, मोहन कबै करोगे ? ॥३॥
सरल सुभाव, सील, संतोषी, जीव-दया चित-धारी।
काम क्रोध-लोभादि बिदा[4] कीर, समुझि-बूझि अवतारी॥
ज्ञान - भक्ति - बैराग बिमलता, दसधा[5] पर अनुसारी।
'सहचरिसरन' राखि उर सद्गुन, जिमि सुबास फुलवारी॥४॥
धीरज-धर्म-विवेक-छमाजुत भजन-यजन[6], दुखहारी।
तजि अनीति मन सेइ संत जन, मानि दीनता भारी॥
मीठे बचन बोल सुभ साँचे, कै चुप आनँद कारी।
कीरति-बिजय-बिभूति मिलै श्रीहरि-गुरु-कृपा अपारी॥५॥
पाहि-पाहि[7], उर अंतरजामी, हरन अमंगल ही[8] के।
'सहचरिसरन' बिनय सुनि कीजै, बारिधि कृपा-अमी के॥
दुस्तर दुसह दुखद अबिचारू, बिफल होहिं खल जी के।
जिमि सिसुपाल[9] कुचाली-जी के परे[10] मनोरथ फीके॥६॥

[1]सुवेद्य, भली-भाँति जानने योग्य। [2]सत, रज और तम। [3]आनंदमय सौंदर्य। [4]दूर करदे। [5]दसधा भक्ति के दस प्रकार। [6]यज्ञ करना। [7]रक्षा करो, रक्षा करो। [8]हृदय के। [9]चेदि का राजा, जो श्रीकृष्ण का फुफेरा भाई था। [10]परे...फीके—शिशपाल की सारी दुरिच्छाएं व्यर्थ गईं; रुक्मिणी के साथ पाणि-ग्रहण न कर सका, श्रीकृष्ण और उनके भक्त पांडवों का बाल भी

छितिपति[१] लेत मोल पसु पच्छिन, इहि बिधि कबै लहौगे ?
रबि-दुहिता[२]सुरसरित-भूमि जिमि, रस उर कबै बहौगे ?
पकरत भृंग कीट कों जैसे, तैसे कबै गहौगे ?
'सहचरिसरन' मराल मानसर[3] मन इमि कबै रहौगे ? ॥७॥
निरदय हृदय न होहु मनोहर, सदय[४] रहौ मन-भावन !
नवल मोहिलौ[५] मोहि तजौ जिन, तोहि सौंह प्रिय पावन ॥
रसिक 'सहचरीसरन' स्यामघन, रस[६]-बरसाव न सावन ।
दरस देहु बर बदन-चंद्रमा, चख-चकोर-बिलसावन[७] ॥८॥
उर में घाव, रूप सों सैंकै, हित[८] की सेज बिछावै ।
दृग-डोरे सुइयां बर-बरुनी, टाँके ठीक लगावै ॥
मधुर सचिक्कन[९] अंग-अंग छबि, हलुवा सरस खवावै ।
स्याम तबीब[१०] इलाज करै जब, तब घायल[११]सचु[१२]पावै ॥९॥*
गज मोतिन की मंजुल माला, सीस जरकसी[13] चीरा ।
चंद्र चारु बारौं पुनि तापर, कलित कलंगी हीरा ॥
नगवर[१४]-जड़े कड़े कर सुंदर, खड़े फेंट पट पीरा ।
'सहचरिसरन' लिया बिन मोलन, मृदुबोलन मुख बीरा[१५] ॥१०॥

बाँका न कर सका, जगद्विजया भी न हो सका। यह सब न होकर यह हुआ कि अंत में भगवान् कृष्ण के चक्र सुदर्शन-द्वारा मारा गया।

[१]राजा। [२]सूर्य-पुत्री यमुना। [3]एक निर्मल झील, जो तिब्बत में है। कहते हैं, यहां राजहंस पाये जाते हैं। [४]दयालु। [५]मोही, प्रेमी। [६]रस...सावन—आनंद की वर्षा करने के लिए सावन मास के समान। [७]प्रसन्न करने वाले। [८]प्रेम। [९]स्निग्ध; स्नेह-पूर्ण। [१०]हकीम। [११]प्रेम का घायल। [१२]आराम। [13]रेशमी वस्त्र, जिस पर लड़ी का काम होता है। [१४]श्रेष्ठ रत्न। [१५]तांबूल का बीड़ा।

*यह मंजु, मीरा के पद की, भाष्य-स्वरूप कही जा सकती है :
"मीरा की तब पीर मिटैगी, जब बैद सँवलिया होय।"

जरीदार पगरी[1] उदार उर, मुक्तमाल थहरति[2] है।
जरद[3] लपेटा फेंटा[4] कटि सों, गुरु गर्बीली गति है॥
'सहचरिसरन' मयंक-बदन की, मदन-मोहनी अति है।
छबि-सागर की छबि को बरनै, कबि की क्या कुदरति[5] है॥११॥
कटि किंकिनि, सिर मोरमुकुट बर, उर बनमाल परी है।
करि मुसक्यान चकाचौंधी चित, चितवनि रंग-भरी[6] है॥
'सहचरिसरन' सुबिस्व-बिमोहिनि, मुरली अधर धरी है।
ललित त्रिभंगी सजल मेघ तनु, मूरति मंजु खरी[7] है॥१२॥
मलयज-तिलक ललाट पटल, पट अटल सनेह सटक सो।
मदन-बिजय जनु करत पुरट मय, कटि किंकिनी कटक सो॥
'सहचरिसरन' तरनि-तनया-तट, नटवर मुकुट-लटक सो।
चित चुरली मुरली-धुनि गावत, आवत चटक-मटक सो॥१३॥
अब तकरार[8] करौ मति यारो, लगी लगन चित चंगी।
जीवन-प्रान जुगल जोरी के, जगत जाहिरा अंगी[9]॥
मतलब नहीं फ़रिश्तों से[10] हम, इश्क-दिलां-दे[11] संगी।
'सहचरिसरन' रसिक सुलतां[12] बर, महिरबान रसरंगी॥१४॥
मय अमलादि पिया न पिया, सुख प्रेम-पियूष पिया रे।
नाम अनेक लिया न लिया, रति स्यामा-स्याम लिया रे॥
आन सुदान दिया न दिया, बर आनँद हुलसि दिया रे।
जप जग्यादि किया न किया, हिय पर-उपकार किया रे॥१५॥*

[1]पगड़ी। [2]हिलती। [3]पीला। [4]कमर में लपेटने का वस्त्र। [5]मजाल, शक्ति। [6]मतवाली। [7]खरी है। [8]लड़ाई-झगड़ा। [9]पक्षवाले, शरणागत। [10]देव-दूतों से, सिद्ध पुरुषों से। [11]प्रेमियों के। [12]बादशाहों में श्रेष्ठ।

* इस मंज के तीसरे और चौथे चरण बड़े मार्के के हैं। दूसरों को 'आनंद देना' यही सर्वोत्तम दान है, तथा 'परोपकार करना' यही सर्वोत्तम यज्ञ है। कर्म-योगियों के लिए क्या ही प्रशस्तपथ प्रणीत किया गया है।

अड़िल्ल

फूल बिमल हरिदास रसिक रसमूल है ।
आलि सरन, अलि-सरन कृपा अनुकूल है ॥
पान करत उर भरत प्रेम स्वच्छंद कौं ।
बंस प्रसंसित सुलभ दुलभ[1] मति मंद कौं ॥१६॥

दोहा

यह मंजावलि मंजु बर, इस्क सिलीमुख[2]-ग्राम ।
रसिकन हृदय प्रबेस करि, राजत अति अभिराम ॥१७॥

ललित-प्रकाश

गुरु-प्रणालिका

रोला

आसधीर[3] गंभीर बिप्र सारस्वत स्रुतिपर[4] ।
जनम अलीगढ़ मध्य मधुर बानी प्रमोदकर ॥
गुरु अनुकूल अतूल[5] कूल बन निधिबन माहीं ।
सत्तर लों तनु राखि साखि[6] जस की मित नाहीं ॥१८॥
श्रीस्वामी हरिदास रसिक-सिरमौर अनीहा[7] ।
द्विज सनाढ्य सिरताज सुजसु कहि सकत न जीहा[8] ॥
गुरु-अनुकंपा मिल्यो ललित निधिबन[9] तमाल के ।
सत्तरलों[10] तरु[11] बैठि गनै गुन प्रिया लाल के ॥१९॥

[1]दुर्लभ । [2]बाण । [3]महाराज निंबार्क-संप्रदाय में महात्मा हरिदेवजी के शिष्य थे । श्रीस्वामी हरिदासजी के गुरु यही आसधीरजी थे । भक्तमाल में भी लिखा है । 'अस आसधीर उद्योतकर रसिक छाप हरिदास की ।' [4]श्रोत्रिय, वैदिक धर्मानुयायी । [5]अनुपम । [6]साक्षी । [7]निष्काम । [8]जीभ । [9]वृंदावन में एक कुंज का नाम । [10]सत्तर वर्ष तक । [11]पेड़ के नीचे बैठ कर । श्रीस्वामी हरिदासजी श्रीललिताजी के अवतार माने जाते हैं ।

'बीठल'[1]-बिपुल सनाढ्य आढ्य[2] धन-धरम पताका ।
श्रीगुरु अनुग[3] अनन्य अनूपम जनु ससि राका ॥
बिपिन सु निधिबन सघन जहां जाको मन अटक्यो ।
ब्यासी[4] की गनि आयु उदासी[5] ह्वै चित झटक्यो ॥२०॥
सुमन बिहारिनदास[6] सूर सूरज द्विज धरमी ।
जन्म मधुपुरी[7] लीन्ह, कीन्ह अति ही निज नरमी[8] ॥
द्वै कम इक सत बरस आयु आनँद में बीती ।
गायो नित्य-बिहार, सार निगमागम नीती ॥२१॥
श्रीगुरु अंत प्रसन्न धन्य, बनवास बिसेखी ।
उनसठि सुठि जेहि आयु स्याम-स्यामा-दुति[9] देखी ॥
सरसदेव रति-सरस[10] गौड़कुल कल जनु भृंगी ।
गुरु करुना बनवास बहत्तर आयु असंगी[11] ॥२२॥
गुरु पीछे छत्तीस बरस बनराज[12] बिराजे ।
काम-केलि-कौतूह[13] गाय आनँद नित साजे ॥
नरहरिदेव सनाढ्य, गुढ़ा[14] कौ प्रथम बसेरो[15] ।
पुनि आरन्य अनादि अनूपम आनँद हेरो ॥२३॥
'रसिकदेव' रसमीन सनावढ़ पीन[16] प्रेम सों ।
जनम बुँदेलाखंड बिपिन पुनि भजन नेम सों ॥
कीन्हैं शिष्य अनेक एक-ते-एक अमायक[17] ।
तिन बिच मिथुन[18] प्रसिद्ध-सिद्ध सुनि सब बिधि लायक ॥२४॥

[1] इन्हें विट्ठलविपुल भी कहते है। यह स्वामी हरिदासजी के मामा थे। पीछे स्वामीजी के शरणापन्न होकर उनके उत्तराधिकारी हुए। [2] संपन्न। [3] अनुगामी। [4] (८२)। [5] विरक्त। [6] इन्हें विहारिनिदेवजी भी कहते हैं। [7] मथुरा। [8] माधुर्ययुक्त। [9] छवि। [10] प्रेम में प्रवीण। [11] विरक्त। [12] वनराज से तात्पर्य यहां 'निधिवन' से है। [13] लीला। [14] यह स्थान बुंदेलखंड में है। [15] निवास-स्थान। [16] परिपुष्ट, दृढ़। [17] माया से निर्लिप्त। [18] दो; इनके प्रधान शिष्य

ललितकिशोरी छकित[1] ललित माथुर द्विजराजू ।
भये प्रगट अति कांति साखि सज्जन सिरताजू ।।
रीझि दियो गुरु जाहि अगद[2] बृंदाबन पद कौ ।
नव ऊपर धरि सुन्न रहे गहिकैं सद-हद[3] कौ ।।२५।।
ललितमोहिनीदास[4] व्यासकुल[5] कौ अवतंसा ।
जनम ओड़छे माँहि नाहिं कलि की रति अंसा[6] ।।
हृदयजनित निर्वेद सदय गुरु कृपा घनेरी ।
बन-मकरंद-प्रमत्त आयु अठहत्तर हेरी[7] ।।२६।।

दो थे श्रीललितकिशोरीजी और श्रीपीतांबरदेवजी ।

[1]मस्त । [2]व्याधिरहित । [3]मर्यादा-स्वरूप स्थान, वृंदावन । [4]श्रीस्वामी हरिदासजी से श्रीललितमोहिनीदासजी तक टट्टी-संस्थान के यही मुख्य अष्टाचार्य हैं । [5]श्रीहरिराम व्यासजी । [6]लेशमात्र । [7]बताई ।

गुणमंजरीदास

छप्पय

जुगल-प्रेम-सर्वस्व, भजन भावन-गत अहर्निस ।
ब्रज-बासिन कों करन सरन भक्तन कों सब दिस ॥
राधारमन लड़ाय रहत ताही रँगराते ।
श्रीभागौत - सुरूप इष्टग्रंथन - रसमाते ॥
पद - रचना पावन किये, देस-देस भव - भंजरी ।
श्रीगल्लूजी गुणमंजरीदास अपर गुणमंजरी ॥

—गोस्वामी राधाचरण

गुणमंजरीदासजी का असल नाम श्रीगोस्वामी गल्लूजी था । इनका जन्म ज्येष्ठ कृष्णा ६, संवत् १८८४ को वृंदावन में हुआ । यह राधारमणी[1], गोस्वामी श्रीरमणदयालुजी के पुत्र थे । इनकी माता का नाम श्रीसखीदेवी था । गोस्वामी रमणदयालुजी अधिकतर फ़र्रुख़ाबाद में रहते थे । संवत् १६०१ में गोस्वामी गल्लूजी का विवाह फ़र्रुख़ाबाद

[1]श्रीराधारमणी गुसाँइयो की वंश-परंपरा में इनका स्थान श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु [संवत १५४२] तच्छिष्य श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी; तच्छिष्य श्री-दामोदरदास गोस्वामी; तच्छिष्य श्रीगोपीनाथ गोस्वामी, तत्पुत्र श्री हरि-नाथदास गोस्वामी; तत्पुत्र श्रीसुंदरदास गोस्वामी; तत्पुत्र श्रीमधुसूदनदास गोस्वामी; तत्पुत्र श्रीजयकृष्णदास गोस्वामी; तत्पुत्र श्रीब्रजलाल गोस्वामी; तत्पुत्र श्रीलाल गोस्वामी; तत्पुत्र श्रीप्रभुदयाल गोस्वामी; तत्पुत्र श्रीरमणदयालु गोस्वामी; तत्पुत्र श्रीगल्लूजी गोस्वामी; तत्पुत्र श्रीराधाचरण गोस्वामी ।

में जगन्नाथ पुरोहित की कन्या के साथ हुआ। इसके गर्भ से एक पुत्र हुआ, किंतु वह तत्क्षण मर गया। कुछ दिनों बाद सखीदेवीजी का भी स्वर्गवास हो गया। लोगों के आग्रह से आपको वृंदावन में श्रीजगन्नाथ मिश्र की कन्या सूर्यादेवी के साथ दूसरा विवाह करना पड़ा। इनके गर्भ से फाल्गुन कृष्ण ४ संवत् १९१४ में हमारे साहित्य-पथ-प्रदर्शक भारतेंदु-सखा स्वर्गीय श्रीराधाचरण गोस्वामी का जन्म हुआ। संवत् १९२३ में दूसरी धर्मपत्नी का भी परलोकवास हो गया।

संवत् १९३२ में श्रीगल्लूजी महाराज ने वृंदावन में भी श्रीषड्भुज महाप्रभुजी का मंदिर स्थापित किया। अब तक आप प्रायः बाहर जाया करते थे, कभी काशी, कभी फ़र्रुख़ाबाद, कभी लखनऊ। संवत् १९३७ से आप बराबर वृंदावन वास करने लगे। श्रीराधारमणजी की सेवा-अर्चा करते हुए, ६३ वर्ष की अवस्था में, मार्गशीर्ष कृष्ण १, सं० १९४७ को दिन के १२ बजे आप गोलोक-धाम पधार गये।

श्रीगल्लूजी महाराज का स्वभाव बड़ा ही सरल, निष्कपट और मधुर था। क्रोध तो आप में लेशमात्र भी नहीं था। भगवच्चरणारविंदों में आपकी अनन्य निष्ठा थी। ब्रजभाषा के तो आप अनन्य भक्त थे। फ़ारसी शब्द न बोलने का बड़ा कड़ा नियम था। एक दिन साहजी साहब (श्री-ललितकिशोरी) से बंदूक़ चलने का वर्णन इस प्रकार किया—'लोह-नलिका में स्याम चूर्ण प्रवेश करिकैं अग्नि जो दीनीं, तो भड़ाम शब्द भयौ!' श्रीमद्भागवत पर आपकी विशेष भक्ति थी। आपने जितना धनोपार्जन किया, सब भगवत्-सेवा में लगा दिया। पदों में आप अपना नाम गुण-मंजरी रखते थे। आपने 'श्रीयुगल छद्म', 'रहस्य-पद' तथा 'पदावशेष' और फुटकर पदों की रचना की है। पद पुरानी परिपाटी के हैं। इनके पदों में रूपक और उपमाओं की अच्छी बहार है। कुछ मधुर सुंदर पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :

मलार

देखो आली, गौर[1]-मेघ-उल्लास।
श्रीअद्वैत[2] - पवन पुरवाई, करुना-बिजुरि[3]-बिलास ॥
अंतर स्याम घटा प्रघटत है, अरुनांबर परगास[4]।
नाम-धुनी[5] गरजत प्रेमामृत, बरसत है रसरास ॥
कबहुँ परत बैवर्न्य इंद्रधनु, धुरवा - अस्रु - निकास।
उपजत है रोमांच-सस्य[6] बहु, निरखत पूरै आस ॥
पोषक चातक-रसिक-भक्तजन, हरत है बिरह-हुतास।
नव-अनुराग-नदी उमगी है, करम - धरम - तट-नास ॥
देत बहाय त्रास-लज्जा-तृन, कपट-पंक नहि पास।
श्रीबृंदावन-प्रेमसिंधु मिलि, 'गुनमंजरि' सुखवास ॥१॥*

मलार

हमारे धन स्यामाजू को नाम।
जाको रटत निरंतर मोहन, नंदनँदन घनस्याम ॥
प्रतिदिन नव-नव महा माधुरी, बरसति आठों जाम।
'गुनमंजरि' नवकुंज मिलावै, श्रीबृंदाबन - धाम ॥२॥

[1]महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव। [2]अद्वैतप्रभु; यह माध्व-संप्रदाय के बड़े भारी उद्भट आचार्य थे। इनका जन्म-स्थान नदिया शांतिपुर माना जाता है। 'नवभक्तमाल' में इनके विषय का यह छप्पय प्रसिद्ध है : 'देखि प्रबल पाखंड खल करिबे मति कीनो। गंगोदक तुलसी बिमिश्र, हरि-चरनन दीनो ॥ सघन लेन हुंकार मार अवतार धरायो। प्रेमानंद-समुद्र सर्व दिग-बिदिग बहायो ॥ अद्वैत भये अद्वैत हरि, भक्ति प्रचारी परात्पर। कलिकाल प्रलय प्रगटो प्रथम रुद्रमूर्त्ति शांतिनगर ॥' [3]बिजली। [4]प्रकाश। [5]'हरे कृष्ण, हरे राम' आदि की ध्वनि। [6]धान।

* इस पद में श्रीचैतन्यदेव का पावस के साथ बड़ा ही सुंदर सांग-रूपक बाँधा गया है।

बसंत

प्यारी-चरनन में नव-बसंत। दसनख ससि-किरननि नित लसंत[१]।
अरुनित अँगुरी है नव प्रवाल। बिछुवा घुँघरू मुकुलित[२] रसाल[३]॥
मेहँदी-दुति केसू[४] कौ प्रकास। जावक नव-बेली कर बिलास।
छिप बोलत स्यामल मनि सुरूप। कोकिल कुहकत है अति अनूप॥
दामन लामन[५] मलया समीर। सुरभित चहुँदिसि मिलि हरत धीर॥
केसर उर की प्रिय लगी आय। गुनगन[६] 'गुनमंजरि' मधुप धाय॥३॥*

होली

पिय-प्यारी खेलत होरी।
श्रीबृंदाबन कुंज-भवन में, श्रीजमुनाजी - ओरी[७]।
नँदनदन - रसिकेस रसीले, श्रीबृषभानु - किसोरी॥
भरें हिय भाव-कमोरी[८]॥
तरल कटाच्छ, मंजु पिचकारी, छूटत तन-मन बोरी[९]।
दुहुँ अनुराग[१०]-गुलाल घुमड़िकैं, चहुँदिसि माँझ छयोरी॥
लगत है नयो-नयो री॥
हँसन-अबीर हीर[११]-दुति सुंदर, उजलत[१२] परम उजोरी।
गौर-स्याम-छबि मिलकैं चोवा, अंग-अंग चरचो[१३] री॥
सुगंधन चित्तनि चोरी॥
गोल कपोल-कुमकुमा दोऊ, धारत हैं सुख सों री।
कंकन ताल किंकिनी ढप रव, बाजत हैं सुर सों री॥

[१]शोभित होते हैं। [२]बौरे हुये। [३]आम। [४]टेसू; पलाश। [५]हिलना, लटकना। [६]भौंरों का गुंजार। [७]तरफ़। [८]रंग भरने का पात्र। [९]डूब गये। [१०]प्रेम-रूपी गुलाल; प्रेम का रंग साहित्य में लाल माना गया है। [११]हीरे की चमक। [१२]प्रकाशमय। [१३]लगा दिया।

*इस पद में श्री राधिकाजी के चरणों के साथ वसंत का रूपक बड़ा ही

मधुर बंसी - धुनि थोरी ॥
आलीलतादिक सखी - सहेली, यह आनंद लहो री ।
'गुनमंजरि' राधा-माधव पर, वारति हैं तृन तोरी ॥
सिरावति[1] नैन हियो री ॥४॥*

---

[1]शीतल करतो है ।

*इस होली का रूपक क्या ही भावमय और साहित्य-गुण-संपन्न है !

नारायणस्वामी

छप्पय

अच्छर अरथ अनूप, अलंकारन सु अलकृत ।
भाव हृदय गंभीर, अनुप्रासन गुन-गुंफित ॥
राग नवीन-नवीन प्रवीनन कौ मन मोहै ।
नृत्य करत, गति भरत, रास-मंडल अति सोहै ॥
करि देस-विदेस प्रचार श्रीवृंदावन विश्राम ।
श्रीनारायण स्वामी नवल पद रचना ललित ललाम ॥

—गोस्वामी राधाचरण

नारायणस्वामी का जन्म संवत् १८८५ वा ८६ के लगभग रावलपिंडी (पंजाब) ज़िले में हुआ। यह सारस्वत ब्राह्मण थे । संवत् १९०० में वृंदावन आकर इन्होंने लाला बाबू के मंदिर में दफ़्तर की नौकरी कर ली । दिन में नौकरी बजाते और रात में रास-विलास और सत्संग में लगे रहते थे। उस समय यह गृहस्थ थे, पर साथ में स्त्री-पुत्र नहीं रखते थे ।

सब से पहले इन्होंने भगवत् संबंधी ग़ज़लों की एक पुस्तक छपवाई । रेख्ता और पद भी कभी-कभी रच लिया करते । श्रीमती महारानी टिकारी के मंदिर में जो मंडली रास करती थी, उसके द्वारा यह अपने पदों का अभिनय कराते थे । प्रेम-रंग कुछ ऐसा चढ़ गया, कि आपने नौकरी छोड़ कर संन्यास ग्रहण कर लिया । इधर आपके पदों की ओर रसिक-प्रेमियों का दिन-दिन प्रेम बढ़ने लगा । स्वामीजी अद्वैतवादी संन्यासी नहीं थे । इन्होंने दंड आदि भी कभी धारण नहीं किया । प्रायः आप केशीघाट पर खपटिया बाबा के घेरे में यमुना-तट पर निवास करते थे ।

स्वामीजी का स्वभाव बड़ा सरल और दयालु था। आप कभी धातु-स्पर्श नहीं करते थे। कामिनी-कांचन से बचा करते थे। स्वामीजी की धीरे-धीरे ख्याति बढ़ती ही गई। रुपया बहुत भेंट में आया करता था जिसे इनके बगुला-भगत चट कर जाते थे। इन गुंडों के मारे स्वामीजी वृंदावन छोड़ कर कुसुमसरोवर पर रहने लगे।

स्वामीजी वृंदावन की पवित्र भूमि पर शौच नहीं जाते थे। वर्षा में भतरौड़ की ओर, और गर्मी-जाड़े में यमुना-पार जाते थे। ध्यान-धारणा तो आदर्श थी। प्रेम-सिंधु में डूब कर आप आँसुओं का तार बाँध देते थे।

वैसे तो स्वामीजी के सैकड़ों शिष्य थे, पर पट्ट-शिष्य अमृतसर के ठाकुर महानचंद्रजी और जालंधर के लाला वसंतरायजी थे। श्रीमान् पंडित दीनदयालुजी व्याख्यानवाचस्पति भी आप के अंतरंग मित्रों में हैं।

फाल्गुन कृष्णा ११, संवत् १६२७ में श्रीगोवर्द्धन के समीप कुसुम-सरोवर पर श्रीउद्धवजी के मंदिर में श्रीस्वामीजी का देहावसान हुआ। ठाकुर महानचंद्रजी ने वहां पर एक समाधि बनवा दी है।

स्वामीजी ने सहस्रों भक्तिरस-पूरित पद-भजन रचे। संवत् १६४० में प्रथम बार लाला गनेशीलाल लाहावाले ने स्वामीजी के पदों का एक संग्रह 'ब्रज-बिहार' के नाम से छपवा कर मुफ़्त बाँटा था। अब तक इसके कई संस्करण हो चुके हैं। 'भारतेंदु' पत्र के संपादक श्रीराधाचरणजी गोस्वामी ने 'ब्रज-विहार' के प्रथम संस्करण की समालोचना इस प्रकार की थी :

"ब्रज-विहार-परमहंस-परिव्राजकाचार्य श्रील श्रीयुक्त महानुभाव श्रीनारायण स्वामीजी की वाणी है। स्वामीजी महाराज इस समय वृंदावन में महात्माओं की श्रेणी में अग्रगण्य हैं। आपने जो कुछ समय पर लीला-रस अनुभव किया है, वही पदों के द्वारा रसिक लोगों की तृप्ति के लिए पुस्तक-पयोद के द्वारा बरसाया है। ये पद कुछ हमारी प्रशंसा के आश्रित नहीं। इनमें कुछ ऐसा चमत्कार है, कि सैकड़ों पुस्तकें लिख कर और हज़ारों पुस्तकें छप कर भारतवर्ष के इस ओर से उस ओर तक प्रसिद्ध हुईं,

पर प्रेमीजनों की तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। इससे अधिक रास-धारियों की मंडलियों में तो इनका राज्य है। जब तक ये पद नहीं गाये जाते, दर्शनीक चित्र-लिखित ही नहीं होते। फिर इन पदों का भाव विलक्षण, राग सद्यः मनोहर और अक्षर तो जादू के बाण हैं। कैसा ही कुटिल कल्मषी क्यों न हो, एक बार तो मोहित हो ही जाता है। इसीसे आज स्वामीजी की वाणी प्राणीमात्र को प्यारी लगती है। इसी वाणी के बेधे अनेक अनुरागी घरबार छोड़ कर ब्रजमंडल में फिरते हैं।"

अब आपकी सरस रचना पर हमें कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं है। आपने पंजाबी होकर भी ब्रजभाषा की जो उपासना की है, वह सराहनीय और स्तुत्य है। आपके कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं।*

कवित्त

चाहे तू योग करि भ्रकुटी-मध्य[1] ध्यान धरि,
चाहे नामरूप मिथ्या जानिकैं निहारि लै।
निर्गुन, निर्भय, निराकार ज्योति व्याप रही,
ऐसो तत्वग्यान निज मन में तू धारि लै॥
'नारायन' अपने को आपु ही बखान करि,
मोतें[2] वह भिन्न नहीं या विधि पुकारि लै।

[1]भौंहों के बीच में सुषुम्ना नाड़ी होती है। इसी नाड़ी के द्वारा योगियों को आत्मज्योति का दर्शन मिलता है। [2]मोतें ... नहीं—जीव और ब्रह्म एक ही है। 'अयमात्मा ब्रह्म' आदि वाक्यों से सिद्ध अद्वैतवाद। इसी आशय का एक श्लोक भी प्रसिद्ध है—'यावन्निरं जनमजं पुरुषं जरन्तम् संचितयामि निखिले जगति स्फुरंतम्। तावद्बलाद् हंत! हृदन्तरे मेगोपस्य कोऽपि शिशु रंजनपुंज मंजुः॥'

* श्रीनारायणस्वामी की यह संक्षिप्त जीवनी हमने श्रीमान् पंडित राधाचरण गोस्वामी लिखित उस लेख के आधार पर लिखी है, जो उन्होंने द्वादश हिंदी-साहित्य-संमेलन के लिए लिखा था।

जौलौं तोहि नंद कौ कुमार नाहिं दृष्टि पर्‌यौ,
तब लौं तू भलै बैठि ब्रह्म कों बिचारि लै ॥१॥

जैजैवंती

आजु सखी, प्रीतम जो पाऊँ, तौ अपने बड़ भाग मनाऊं ॥
साँवरि मूरति नैन बिसाला, चंदबदन, गर मुतियन-माला ।
रूप मनोहर, चाल मराला, सुंदरता पर बलि-बलि जाऊं ॥
जो प्यारे इन गलियन आवैं, मो बिरहिन कों दरस दिखावै ।
बैठि निकट मृदु बचन सुनावै, मैं उनकों हँसि कंठ लगाऊं ॥
'नारायन' जीवन गिरिधारी, कब लेंगे सुधि आय हमारी ।
जब मोसों वो कहैंगे प्यारी, तब मैं फूली अँग न समाऊं ॥२॥

कान्हरो

नंद-नँदन के ऐसे नैन ।
अति छबि-भरे नाग के छौना, डरति डसैं करि सैन[1] ॥
इन सम साबर[2] मंत्र न होई, जादू जंत्र-तंत्र नहिं कोई ।
एक दृष्टि में मन हरि लेवैं, करि देवैं बेचैन ॥
चितवन में घायल करि डारैं, इनपै कोटि बान लै वारैं ।
अति पैने तिरछे हिय कसकैं, स्वास न देवैं लैन ॥
चंचल चपल मनोहर कारे, खंजन-मीन लजावनहारे ।
'नारायन' सुंदर मतवारे, अनियारे दुख दैन ॥३॥

झंझोटी

साँवरे, क्यों मोसों रिस मानी ।
तेरे काज घर-बार त्यागि कैं, गलियन फिरति दिवानी ॥

[1]इशारा। [2]वाममार्गोक्त अंट-संट अक्षरों के मंत्र, जिनका सद्यः प्रभाव देखा जाता है। बार-बार बंदौ हर-गिरिजा। साबर मंत्र-जाल जिन्ह सिरजा॥—तुलसी

श्रीनारायणस्वामी सखी-उपासना के संन्यासी थे। इनका अंतरंग नाम 'नवल-सखी' था।

लोक-लाज कुलरीति प्रीति जग, इनहूँ को दियो पानी[1] ।
'नारायन' अब तो हँसि चितवौ, एरे रूप-गुमानी ।।४।।

आसावरी

सखि, मेरे मन की को जानै ।
कासों कहौं, सुनै जो चित दै, हित की बात बखानै ।।
ऐसो को है अंतरजामी, तुरत पीर पहिचानै ।
'नारायन' जो बीत रही है, कब कोई सच मानै ।।५।।

सोरठ

मनमोहन जाकी दृष्टि परत, ताकी गति होत है और-और ।
न सुहात भवन, तन-असन-बसन, बनहीं को धावत दौर-दौर ।।
नहिं धरत धीर, हिय बिरह-पीर, ब्याकुल है भटकत ठौर-ठौर ।
कब अँसुवन भरि 'नारायन' मन, झाँकत[2] डोलत है पौर-पौर ।।६।।*

सोरठ

जाहि लगन लगी घनस्याम की ।
धरत कहूँ पग परत हैं कितहूं, भूलि जाय सुधि धाम की ।।
छबि निहार नहिं रहत सार[3] कछु, घरि पल निसिदिन जाम की ।
जित मुँह उठै तितैहीं धावै, सुरति न छाया-घाम की ।।
अस्तुति - निंदा करौ भलैहीं, मेंड़[4] तजी कुल-गाम की ।
'नारायन' बौरी भई डोलै, रही न काहू काम की ।।७।।

खंमाच

प्रीतम, तू मोहिं प्रान तें प्यारो ।
जो तोहिं देखि हियो सुख पावत, सो बड़भागिनवारो[5] ।।
तू जीवन-धन, सरबस तू ही, तुहीं दृगन को तारो ।

[1] तिलांजलि दे दी, बिलकुल छोड़ दिया। [2] झांकत...पौर —द्वार-द्वार पर देखता हुआ घूमा करता है । [3] मजा, आनंद । [4] मर्यादा । [5] भाग्यवान ।

*इस पद में लगन-बान का क्या ही सजीव चित्र खींचा है !

जो तोको पलभर न निहारू, दीखत जग अँधियारो ॥
मोद बढ़ावन के कारन हम, मानिनि रूपहि धारो ।
'नारायन' हम दोउ एक हैं, फूल[1] सुगंध न न्यारो ॥८॥

काफ़ी

या साँवरे सों मैं प्रीति लगाई ।
कुल-कलंक तें नाहिं डरौंगी, अब तौ करौं अपनी मनभाई ॥
बीच बजार पुकार कहौं मैं, चाहे करो तुम कोटि बुराई ।
लाज-मरजाद[2] मिली औरन को, मृदु मुसकनि[3] मेरे बट[4] आई ॥
बिन देखे मनमोहन को मुख, मोहिं लगत त्रिभुवन दुखदाई ।
'नारायन' तिनको सब फीको, जिन चाखी यह रूप-मिठाई ॥९॥

बेदरदी[5], तोहि दरद न आवै ।
चितवन में चित बस करि मेरो, अब काहे को आँख-चुरावै[6] ॥
कब सों परी द्वार पै तेरे, बिन देखे जियरा घबरावै ।
'नारायन' महबूब साँवरे, घायल करि फिर गैल[7] बतावै ॥१०॥

विहाग

नयनो रे, चितचोर बतावौ ।
तुमही रहत भवन रखवारे, बाँके बीर कहावौ ॥
तुम्हरे बीच[8] गयो मन मेरो, चाहे सौंहैं खावौ ।
अब क्यों रोवत हौ दईमारे, कहुँ तौ थाह लगावौ ॥
घरके भेदी बैठि द्वार पै, दिन में घर लुटवावौ ।
'नारायन' मोहि वस्तु न चहिए, लेनेहार[9] दिखावौ ॥११॥*

[1]फूल ... न्यारो जैसे फूल और सुगंध पृथक-पृथक नहीं है, उसी प्रकार प्यारे, तुम और हम एक ही है। [2]मर्यादा। [3]मुसक्यान। [4]बाँट, हिस्सा। [5]दूसरे के कष्ट का अनुभव न करनेवाला, निर्दय। [6]छिपता फिरता है। [7]सामने से हटा रहा है; दग़ाबाज़ी कर रहा है। [8]तुम्हारे ही भेद में। [9]अर्थात् वही चित-चोर।

* अनुपम भाव है।

लावनी

रूपरसिक मोहन मनोज-मन-हरन सकल गुन-गरबीले ।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले[१] ।।
रतन-जटित सिर मुकुट लटक रहि, सिमट स्याम-लट[२] घुँघरारी ।
बालबिहारी, कन्हैयालाल चतुर तेरी बलिहारी ।।
लोलक[३] मोती कान कपोलन झलक बनी निर्मल प्यारी ।
जोति उज्यारी, हमैं हरबार[४] दरस दै गिरिधारी ।।
बिज्जु-घटासी दंत-छटा मुख देखि सरद-ससि सरमीले ।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ।।
मंद हँसन, मृदु बचन तोतले, बय किसोर भोलीभाली ।
करत चोचले, अधर अमोलक पीक रच रही लाली ।।
फूल गुलाब[५]-चिबुक सुंदरता, रुचिर कंठ छबि बनमाली ।
कर-सरोज में, बुंद मेंहिदी अति अमंद है प्रतिपाली ।।
फूलछरी-सी नरम करम करधनी सब्द हैं तुरसीले[६] ।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ।।
अँगुली झीन जरीपट कछनी, स्यामल गात सुहात भले ।
चाल निराली, चरन कोमल पंकज के पात भले ।।
पग नूपुर-झनकार, परम उत्तम जसुमति के तात[७] भले ।
संग सखन के, निकट जमुन-तट गोबछरान चरात भले ।।
ब्रजजुवतिन के प्रेम-भोग में घर-घर माखन-गटकीले[८] ।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ।।
गावैं बागबिलास,[९] चरित हरि सरद-रैन रसरास करैं ।

[१] रँगीले । [२] अलक । [३] बुलाक । [४] बार-बार । [५] ठोढ़ी गुलाब के फूल के समान है। यह बड़ी ही सुंदर उपमा है। [६] घायल करनेवाले, तीखे। [७] प्यारा; इस शब्द को हिंदी-कवियों ने छोटे-बड़े सभी के साथ प्रयुक्त किया है । [८] खानेवाले। [९] वाक्य-विलास, बतरस ।

मुनिजन मोहैं, कृष्ण कंसादिक-खल-दल नास करैं ॥
गिरिधारी महराज सदा श्रीव्रज-बृंदाबन बास करैं ।
हरि-चरित्र को, स्रवन सुनि-सुनि करि मन अभिलाष करैं ॥
हाथ जोरि कैं करैं बीनती 'नारायन' दिल-दरदाले[1] ।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ॥१२॥*

विहाग

करु मन, नँदनंदन कौ ध्यान ।
यहि अवसर तोहिं फिरि न मिलैगो, मेरो कह्यौ अब मान ॥
घुँघर बारी अलकैं मुख पै, कुंडल झलकत कान ।
'नारायन' अलसाने नैना, झूमत रूप निधान ॥१३॥

भैरव

आजु सखी, प्रातकाल, दृग मीड़त जगे लाल,
रूप के बिसाल सिंधु, गुनन के जहाज ।
कुंडल सों उरझि माल, मुख पै अलकन कौ जाल,
भई मैं निहाल[2] निरखि सोभा की समाज[3] ॥
आलस बस झुकत ग्रीव, कबहूँ अँगड़ाइ लेत,
उपमा[4] सम देत मोहिं, आवत है लाज ।
'नारायन' जसुमति ढिग हौं तो गई बात कहन,
यामें भये री, एक पंथ दोउ काज ॥१४॥

नट

देखु सखी, नव छैलछबीलौ, प्रात समै इततें को आवै ?
कमल समान बड़े दृग जाके, स्याम सलौनो मृदु मुसकावै ॥
जाकी सुंदरता जग बरनत, मुख-शोभा लखि चंद लजावै ।
'नारायन' यह किधौं वही है, जो जसुमति कौ कुँवर कहावै ॥१५॥

[1] दिल का दर्द जाननेवाले। [2] सफल, संतुष्ट। [3] समूह, परम सौंदर्य। [4] तुलना।
*इस लावनी की भाषा बडी ही सुंदर और सजीव है।

ईमन

मोपै कैसी यह मोहिनी डारी, चितचोर छैल गिरिधारी ॥
गृह-कारज में जी न लगत है, खान-पान लगै खारी ।
निपट उदास रहत हौं जब तें, सूरत देखि तिहारी ॥
संग की सखी देती मोहि धीरज, बचन कहति हितकारी ।
एक न लगति कही[1] काहू की, कहति-कहति सब हारी ॥
रही न लाज, सकुच गुरु जन की, तन-मन-सुरति बिसारी ।
'नारायन' मोहि समुझि बावरी, हँसत सकल नर-नारी ॥१६॥

कालिंगड़ा

मूरख, छाँड़ि बृथा अभिमान ।
औसर बीत चल्यो है तेरो, दो दिन कौ महमान ॥
भूप अनेक भये पृथिवी पर, रूप - तेज - बलवान ।
कौन बच्यौ या काल-ब्याल तें, मिटि गये नाम निसान ॥
धवल, धाम, धन, गज, रथ, सेना, नारी चंद्र-समान ।
अंत समय सबहीं कों तजि कैं, जाय बसे समसान ॥
तजि सतसंग भ्रमत बिषयन में, जा बिधि मरकट[2], स्वान ।
छिन भरि बैठि न सुमिरन कीन्हों जासों होय कल्यान[3] ॥
रे मन मूढ़, अनंत जनि भटकै, मेरो कह्यौ अब मान ।
'नारायन' ब्रजराज-कुँवर सों, बेगहि करि पहिचान ॥१७॥

---

[1]उपदेश। [2]बंदर, पशुओं में यह बड़ा कामी माना गया है। [3]श्रेय, मोक्ष।

ललितकिशोरी

छप्पय

प्रथम लखनऊ बसि आवन मों नेह बढ़ायौ ।
तहँ श्रीजुगुल-सुरूप थापि मंदिर बनवायौ ॥
द्वापर कौ सुखरास राम कलियुग में कीनों ।
सोइ भजन-आनंद-भाव सहचरि रँग-भीनों ॥
लाखन पद ललितकिशोरिका नाम प्रगटि बिरचे नये ।
कुल अग्रवाल-पावनकरन कुंदनलाल प्रगट भये ॥

—भारतेंदु हरिश्चंद्र

लखनऊ में साह बिहारीलालजी अग्रवाल नवाब के जौहरी थे । इनके पुत्र साह गोविंदलालजी थे । इनकी दो स्त्रियाँ थीं । पहली स्त्री के साह रघुबरदयालुजी और साह मक्खनलालजी नाम के दो पुत्र हुये । और दूसरी स्त्री के साह कुंदनलालजी और साह फुंदनलालजी हुए ।* इन दोनों भ्राताओं का पारस्परिक प्रेम अति प्रशस्य था । भारतेंदुजी ने तो यहां तक लिखा है, कि :

त्रेता में जो लछमन करी, सो इन कलियुग माहिं किय ।

कौटुंबिक कलह अथवा किसी गर्हित विवाद के कारण ये दोनों भ्राता

* इन भक्त भ्राताओं के संबंध में श्रीगोस्वामी राधाचरण जी लिखते हैं : छाँडि बादशाही बैभव लछमणपुर त्यागयो । श्रीवृंदावन-बास दृढ़ व्रत अति अनुरागयो ॥ 'ललित-निकुंज' बनाय राधिकारमन बिराजे । रास-बिलास-प्रकास लच्छ पद रचना साजे ॥ ब्रजरज मध्य समाधि लिय, जुगलभ्रात निर्भय निपुन । श्रीललितकिशोरी, ललितमाधुरी प्रेममूर्ति बृंदाविपिन । (नवभक्तमाल)

संवत् १९१३ में लखनऊ छोड़ कर वृंदावन चले गये। श्रीगोस्वामी राधाचरणजी के शब्दों में—'वृंदावन उस समय प्रेमी रसिकों का "मीना बाज़ार" था।' साह कुंदनलालजी 'ललितकिसोरी' की छाप से और साह फुंदनलालजी 'ललितमाधुरी' के नाम से भगवल्लीला-संबंधी सरस पदों की रचना करने लगे। पद दस हज़ार से कम न होंगे। संवत् १९१७ में इन्होंने संगमरमर का अति विचित्र मंदिर बनवाना आरंभ किया, और संवत् १९२५ में उसमें श्रीठाकुरजी विराजमान कराये। मंदिर की नक्काशी और संगतराशी बड़ी ही सुंदर है। इस मंदिर का नाम 'ललित-निकुंज' रखा गया। कार्तिक शुक्ला २, संवत् १९३० को ललितकिशोरीजी शरीर सहित श्रीवृंदावन की रज में लीन हो गये। ललितकिशोरीजी ने रास-विलास, अष्टयाम और समय-प्रबंध संबंधी बड़े ही अनूठे पद लिखे हैं। छद्मलीला लिखने में तो आप सब से बढ़े-चढ़े थे। इन्होंने ब्रजभाषा के साथ-ही-साथ कहीं-कहीं पर उर्दू, खड़ी बोली और मारवाड़ी भाषा का भी प्रयोग किया है। इनकी खड़ी बोली की रेखता रास-धारियों में खूब प्रचलित है। इन्होंने प्रेम का चित्रण बड़ा ही सुंदर और सजीव किया है।

ललितकिशोरीजी संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। लखनऊ निवासी होकर भी इन्होंने ब्रजभाषा में पद्य ही नहीं, वरन् विशुद्ध गद्य भी लिख कर कमाल किया है। इनके फुटकर पदों के अतिरिक्त 'वृहत् रसकलिका' और 'लघु रसकलिका' नाम के दो ग्रंथ मथुरा में छपे थे, जो अब अप्राप्य हैं। मिश्रबंधुविनोद में बेचारे ललितकिशोरीजी 'दास' की श्रेणी में रखे गये हैं। इस पर क्या कहें—अपनी-अपनी सूझ ही तो है।

इनके गुरू श्रीराधारमणीय गोस्वामी राधागोविंदजी थे।

अलहैया

मैं तुव पदतर-रेनु, रसीलो।
तेरी सरबरि[1] कौन करि सकै, प्रेममई मूरति गरबीलो॥

[1] बराबरी।

कोटिहुँ प्रान वारने करिकैं, उरिन[1] न तोसों प्रीति-रँगीली ।
अपनो प्रेम-छटा करुना करि, दीजे दान, दयाल छबीली ॥
का मुख करौं बड़ाई राई[2], 'ललितकिसोरी' केलि-हठीली[3] ।
प्रीति दसास सतांस तिहारी, मो मैं नाहि न नेह-नसीली[4] ॥१॥

प्रभाती

कमलमुख खोलो आजु, पियारे ।
बिकसित कमल, कुमोदिनि मुकुलित, अलिगन मत्त गुंजारे ॥
प्राची[5] दिसि रबिथार-आरता लियें ठनी निवछारे ।
'ललितकिसोरी' सुनि यह बानी, कुरकुट[6] बिसद पुकारे ।
रजनीराज[7] बिदा माँगै बलि, निरखौ पलक उघारे ॥२॥

भैरवी

केकी कीर कोकिला कोयल सामुहि करैं जुहार ।
परसन दृगन कंज हित बोलैं भृंगा जै-जैकार ॥
मूँदौ रंध्र[8] बेगि प्राची दिसि, इत अब कहत पुकार ।
'ललितकिसोरी', निरख्यो चाहत, रबि नव कुंज-बिहार ॥३॥

झूलना

दुनिया के परपंचों में हम मजा नहीं कुछ पाया जी ।
भाई-बंद, पिता-माता, पति सब सों चित अकुलाया जी ॥
छाड़-छोड़ घर, गाँव, नाँव, कुल यही पंथ मनभाया जी ।
'ललितकिसोरी' आनँदघन सों अब हठि नेह लगाया जी ॥४॥
क्या करना है संतति-संपति, मिथ्या सब जग-माया है ।
शाल-दुशाले, हीरा-मोती में मन क्यों भरमाया है ॥
माता-पिता, पती, बंधू सब गोरखधंध[9] बनाया है ।

[1]उऋण । [2]श्रेष्ठ । [3]मानिनी । [4]प्रेम में मतवाली । [5]पूर्व दिशा सूर्य-रूपी थाली में आरती लिये खड़ी हुई है । [6]कुक्कुट, मुरगा । [7]चंद्रमा । [8]छेद, झरोखा । [9]जगत-जंजाल ।

'ललितकिसोरी' आनँदघन हरि हिरदै-कमल बसाया है ॥५॥
अष्ट सिद्धि, नव निद्धि हमारी मुट्ठी में हरदम रहतीं ।
नहीं जवाहिर सोना चाँदी त्रिभुवन की संपति चहतीं ॥
भावैं ना दुनिया की बातैं, दिलवर की चरचा महती[1] ।
'ललितकिसोरी' पार लगावै माया की सरिता बहती ॥६॥
तरह-तरह के आसन करके दिलवर-ध्यान लगावै हैं ।
भेदि सुषुम्ना[2] नाड़ी-मारग माथे[3] प्रान चढ़ावै हैं ॥
तुरत खेचरी[4] मुद्रा के बल तन समेत उड़ि जावै हैं ।
'ललितकिसोरी' निरजन बन में जोगी जुगुति[5] जगावै हैं ॥७॥
तजि दीनीं जब दुनिया दौलत, फिर कोइ के घर जाना क्या ।
कंद-मूल फल पाय रहैं अब, खट्टा-मीठा खाना क्या ॥
छिन में साही बकसै हमको, मोती माल खजाना क्या ।
'ललितकिसोरी' रूप हमारा जानै ना तहँ आना क्या ॥८॥
हम मौजी हैं अपने मन के, मन चाहे तहँ जावैं हैं ।
बैठि इकंत ध्यान धरि दिलवर कंद-मूल-फल खावैं हैं ॥
बसैं कंदरा बन में डोलैं, मानुष पास न आवैं हैं ।
'ललितकिसोरी' भजन-अहारी, भीर-भार घबरावैं हैं ॥९॥
छोड़ दिया सब माल-खजाना, हीरा-मोति लुटाया है ।
फेंक फाँककर शाल-दुशाले, जग से चित्त उठाया है ॥
'ललितकिसोरी' छोड़ि कानि कुल, मन-माशूक[6] लुभाया है ।
धीरज धरम सभी छोड़ा, तब मज़ा फ़कीरी पाया है ॥१०॥
जंगल में अब रमते[7] हैं, दिल बस्ती से घबराता है ।

[1]महत्वपूर्ण। [2]इड़ा (चंद्र) और पिंगला (सूर्य) नाम की बाईं और दाहिना स्वर-वाहिनी नाड़ियों के बीच की नाड़ी। योगी जन इसी नाड़ी के द्वारा आत्म-ज्योति के दर्शन पाते हैं। [3]माथे... है—प्राणों को ब्रह्मांड में चढ़ा लेते है। [4]योग-शास्त्रानुसार एक मुद्रा विशेष। [5]योग-युक्ति। [6]प्यारा। [7]बसते।

मानुस-गंध न भाती है, सँग मरकट, मोर सुहाता है ॥
चाक गरेबां करके दम-दम आहें भरना आता है ।
'ललितकिसोरी' इश्क रैन-दिन ये सब खेल खिलाता है ॥११॥
अब बिलंब जिनि करौ लाड़िली, कृपा-दृष्टि टुक हेरो ।
जमुना-पुलिन, गलिन गहबर[1] की बिचरूं साँझ-सबेरो ॥
निसिदिन निरखौं जुगुल-माधुरी,[2] रसिकन तें भटभेरो[3] ।
'ललितकिसोरी' तन-मन आकुल, श्रीबन[4] चहत बसेरो ॥१२॥
जमुना-पुलिन कुंज गहवर की कोकिला ह्वै द्रुम कूक मचाऊं ।
पद-पंकज प्रिय लाल-मधुप ह्वै मधुरे-मधुरे गुंज सुनाऊं ॥
कूकर ह्वै बन-बीथिनि डोलौं, बचे सीथ रसिकन के खाऊं ।*
'ललितकिसोरी' आस यही मम ब्रजरज तजि छिन अनत न जाऊं ॥१३॥
श्री वृंदाबन-वास दीजिये, यही हमारी आसा है ।
जमुना-तीर सुछाय माधुरी, जहँ रसिकों का बासा है ॥
सेवाकुंज[5] मनोहर सुंदर, इकरस बारौमासा है ।
'ललितकिसोरी' का दिल बेकल जुगुल-रूप-रस-प्यासा है ॥१४॥
राधारमन मनोहर सुंदर तिनके सँग नित रहते हैं ।
छके रहत छबि ललित माधुरी, और नहीं कुछ चहते हैं ॥
चितवन हँसन चोट दसनन की निस-दिन हिय पर सहते हैं ।
'ललितकिसोरी' करैं न ओटैं[6] फरी[7] नहीं कर गहते हैं ॥१५॥
श्रीबृंदाबन - रज दरसावै, सोई हितू हमारा है ।
राधामोहन - छबी छकावै, सोई प्रीतम प्यारा है ॥

[1]घना जंगल । [2]छवि । [3]आकस्मिक मिलाप । [4]वृंदावन । [5]वृंदावन में एक कुंज का नाम । श्रीहितहरिवंश जी प्रायः इसी कुंज में भजन किया करते थे । [6]चोटों से बचने के लिए जान-मानकर किनारा नहीं करते । [7]फड़ी; अपने को चोटों से बचाने का डंडा ।

*धन्य; मनोराज्य हो तो ऐसा !

कालिंदी-जलपान करावै, सो उपकारी सारा[१] है ।
'ललितकिसोरी' जुगुल[२] मिलावै, सो अँखियों का तारा है ॥१६॥
बन-बन फिरना बिहतर हमको रतन, भवन नहिं भावै है ।
लता-तरे पड़ रहने में सुख, नाहिंन सेज सुहावै है ॥
सोना, कर[३]-धरि सीस भला अति, तकिया ख्याल न आवै है ।
'ललितकिसोरी' नाम हरी का, जपि-जपि मन सचु पावै है ॥१७॥
पवन-पान[४] करि रहैं महीनों, अली, अन्न नहिं भावैं हैं ।
पानी पियैं न सोवैं निसि-दिन, बैठि समाधि लगावैं हैं ॥
खुल गई पलक कभी छिनभर, तौ कर लै बीन बजावैं हैं ।
जमुना-कूलैं,[५] 'ललितकिसोरी', हरी-नाम-गुन गावैं हैं ॥१८॥

पीलू

लटकि-लटकि मनमोहन-आवनि ।
झूमि-झूमि पग-धरत भूमि पर, गति मातंग लजावनि ॥
गोखुर-रेनु अंग-अँग मंडित, उपमा दृग सकुचावनि ।
नव-घन पै मनु झीन बदरिया, सोभारस - बरसावनि ॥
बिगसनि मुखलौं कांति दामिनी, दसनावलि दमकावनि ।
बीच-बीच घन-घोर माधुरी, मधुरी बेनु-बजावनि ॥
मुक्तमाल उर लसी छबीली, मनु बग-पाँति सुहावनि ।
बिंदु गुलाल गुपाल-कपोलनि, इंद्र-बधू छबि छावनि ॥
रुनन-झुनन, किंकिन-धुनि मानों, हंसनि की चुहचावनि[६] ।
बिलुलित[७] अलक धूरि-धूसर तन, गमन लोटि भुव आवनि ॥
जँघिया लसनि, कनक कछनी पै, पटुका[८] ऐंचि बँधावनि ।
पीतांबर-फहरानि, मुकुट-छबि, नटवर बेस बनावनि ॥
हलनि बुलाक अधर तिरछौंही, बीरी[९] सुरँग रचावनि ।

[१]पूरा । [२]श्रीराधाकृष्ण । [३]हाथ के सहारे सिर रख कर । [४]प्राणायाम सा कर । [५]किनारों पर । [६]शब्दविशेष । [७]बिथुरी हुई । [८]दुपट्टा । [९]पान का बीड़ा

'ललितकिसोरी' फूल-झरनि या मधुर-मधुर बतरावनि[१] ॥१९॥

सारंग

मुरकि-मुरकि[२] चितवनि चित चोरै।
ठुमकि चलनि, हेरा[3] दै बोलनि, पुलकनि नंदकिसोरै॥
सहरावनि[४] गैयानु चौंकनी, थपकनि[५] कर बनमाली।
गुहरावनि[६] लै नाम सबनि कौ, धौरी-धूमरि[७] आली॥
चुचकारनि चट झपटि बिचुकनी[८], हूं हूं रहौ रँगीली।
नियरावनि थोंखनि[९] मगहा में, झुकि बछियानि छबीली॥
फिरकैयां[१०] लै निर्त्त अलापन, बिच-बिच तान रसीली।
चितवनि ठिठुकि उड़कि गैया सों, सींटी भरनि रसीली॥२०॥

झंझोटी

मन, पछितैहो भजन बिन कीने।
धन-दौलत कछु काम न आवै, कमलनयन[११]-गुन चित बिनु दीने॥
देखत कौ यह जगत सँगाती[१२], तात-मात अपने सुख-भीने[१३]।
'ललितकिसोरी' दुंद[१४] मिटै ना, आनँदकंद बिना हरि चीने[१५]॥२१॥

गौरी

मुसाफिर, रैन रही थोरी।
जागु-जागु, सुख नींद त्यागि दै, होति बस्तु[१६] की चोरी॥
मंजिल दूरि, भूरि भवसागर, मान कुरमति मोरी।
'ललितकिसोरी' हाकिम[१७] सों डरु, करै जोर बरजोरी॥२२॥

[१]बातचीत। [२]मुड़-मुड़ कर। [3]गाय को बुलाने की आवाज़। [४]खुजलाना। [५]प्यार से थपथपाना। [६]बुलाना। [७]गौओं के नाम। [८]चौंक कर भागने वाली गाय। [९]थन से मुँह लगा कर दूध पीना। [१०]चक्कर। [११]श्रीकृष्ण। [१२]साथी। [१3]अपने स्वार्थ में सने हुए। [१४]द्वंद्व; सांसारिक झंझट। [१५]पहचाने। [१६]आत्म-ज्ञान। [१७]यमराज।

बिहार

लाभ कहा कंचन-तन पाये !
भजे न मृदुल कमल-दल लोचन, दुख-मोचन हरि हरखि न ध्याये ।।
तन-मन-धन अरपन ना कीन्हें, प्रान-प्रानपति-गुननि न गाये ।
जोवन, धन, कलधौत[1] धाम सब, मिथ्या आयु गँवाय गँवाये ।।
गुरुजन गर्ब, बिमुख-रँग[2] राते, डोलत सुख-संपति[3] बिसराये ।
'ललितकिसोरी'[4] मिटै ताप ना, बिन दृढ़-चिंतामनि उर लाये ।।२३।।

गिरनारी

कोई दिलवर की डगर बता दे, रे ।
लोचन कंज, कुटिल भृकुटी कच, कानन कथा सुनादे, रे ।।
'ललितकिसोरी' मेरी वाकी, चित की साँट[5] मिलादे, रे ।
जाके रंग रँग्यौ सब तन-मन, ताकी झलक दिखादे, रे ।।२४।।

ईमन

दंपति, इतनी बिनय हमारी ।
मद-मंद चलिए इन बीथिनि, बिगसित मल्ली जुही निवारी ।।
निकट[6] रावरे रूप उपासक, नव निकुंज द्रुम चारी ।
याही छिन छबि बसिए याके, हिये-कमल बलिहारी ।।२५।।

ईमन

मोहन, क्यों बैराग लियौ !
नासा मूँदि हाथ माला लै, नीको ध्यान कियौ ।।

[1]सुंदर, सफ़ेद । [2]हरि-विमुख संसारी जीवों के कुसंग में पड़े हुए । [3]आत्मानंद-रूपी धन । [4]ललितकिशोरी...लाये—यह चरण गोस्वामी तुलसी-दासजी के इस पद्य का प्रतिबिंब-सा जान पड़ता है : 'तुलसी चित चिंता न मिटै, बिनु चिंतामनि पहिचाने' । [5]समानता, लगन । [6]निकट...चारी—ये वृक्ष आपके रूप-रस-उपासक हैं । भक्ति-पक्ष में श्री वृंदावन की गुल्म-लताएं और वृक्ष दिव्य रूप माने जाते हैं । ये सभी भक्ति-भावना पूरित कहे गये हैं ।

भलो करो, भिच्छा जोगी बनि, भलो प्रसाद दियौ ।
'ललितकिसोरी' कौन काज यह, कंथा[1] कपट सियौ ॥२६॥

बिलावल

स्याम-रूप में तेज, अधर-रस जलहिं मिलाऊं ।
मुरलि[2] अकास मिलाय, प्रान[3] में प्राननि छाऊं ॥
मुख - मंडित गोधूलि, अली टुक देखन पाऊं ।
पृथिवी - अंस मिलाय, तासु में प्रियतम ध्याऊं ॥२७॥

ईमन

मैं तेरे सँग मुरली स्याम बजाऊं ।
ऐसेई पिय सब छेदनि पै, अँगुरी चपल चलाऊं ॥
पंचम[4] रिषभ[5] निषाद[6] सुरनि लौं, सँग-सँग टीप लगाऊं ।
'ललितकिसोरी' ईमन, काफी, सोरठ गाय सुनाऊं ॥२८॥

खेमटा

रे निरमोही, छबि दरसाय जा ।
कान-चातकी स्याम-बिरह-घन, मुरली मधुर सुनाय जा ॥
'ललितकिसोरी' नैन-चकोरनि, दुति मुख-चंद दिखाय जा ।
भयौ चहत यह प्रान बटोही, रूसे[7] पथिक मनाय जा ॥२९॥

माँझ देश

बलि-बलि, सखी बृंदाबिपिन जुग-चंद दरसन कीजिए ।
ललित लखि अरबिंद-मुख-रस-रूप नैननि पीजिए ॥
कलित कोमल माधवी बर लता झुकि झूमीं जहां ।
कुंज-बिच गुंजैं अली, छबि-पुंज निरवारत तहां ॥

[1]गूदरी; फटे-पुराने कपड़ों की झोली । यह पद योगिनी के छद्म के समय का है । [2]मुरलि... मिलाय—पोली बाँसुरी में अपना आकाश तत्व मिला कर । [3]प्रान... छाऊं—प्यारे के प्राणों में अपने प्राण अर्थात वायु-तत्व मिला दूं । [4]पाँचवां स्वर । [5]दूसरा स्वर । [6]सातवां स्वर । [7]रूठे हुए।

नवनि कुसुमित सुमन चित्रित बिबिधि बेली राजहीं ।
रटत दंपति-नाम पंछी, पत्र-पुष्पनि भ्राजहीं ॥
बिमल जमुना-जल हिलोरैं, पुलिन-मन रमनी[1] बनी ।
चलत मंद-सुगंध-सीतल पवन, सोभा अति घनी ॥
घनघोर घेरी घटा बहु चपला चहूँ दिसि चमकहीं ।
द्रुमन-तर नव नागरी मुखचंद चंचल दमकहीं ॥
तिन मध्य सुंदर जुगुल स्यामा नवल गलबहियां दिये ।
झुकत झूमत मत्त नैना, माधुरी अँग-अँग पिये ॥
नटत[2]-निरतत[3] नवल नागर-नागरी दृग-जोरिकै[4] ।
सैन नाना भाव दोऊ लेत गति अँग मोरिकै ॥
झरत कबरी[5]-सुमन, मानों होत दंपति - वारने[6] ।
तात-ताता[7], थेइ-थेई, घूँघरूं झनकारने ॥
अधर धरि मुरली मनोहर, मधुर मंद बजावहीं ।
मोहिनी मन मिलि मलारहिं[8] झीन[9] सुर सों गावहीं ॥
देत ताल रसाल[10]-बाला, बीन मधुरी धुनि बजैं ।
किंकिनी-कल-घोर सुनि, मन हंस के छौना लजैं ॥
जोरि[11] कर मंडल[12]रच्यौ नवतरुनि सुंदर भामिनी ।
भानुजा[13]-ब्रजचंद निरतैं मध्य, धनि यह जामिनी ॥
चाँदनी मुखचंद दस दिसि ससि-प्रभा मनि उर लसै ।
निरखि रंध्रनि[14]छवी 'ललितकिसोरि' नित नैननि बसै ॥३०॥

दोहा

कदम-कुंज ह्वैहौं कबै, श्री बृंदाबन माहिँ ।

[1]रमणीय । [2]हाव-भाव बताते है । [3]नाचते हैं । [4]आँख से आँख लड़ा कर । [5]बेनी । [6]निछावर होते है । [7]तात...थेई—नृत्य की गति के शब्द-विशेष । [8]वर्षा का राग । [9]मंद-मंद । [10]सुंदरी स्त्रियां । [11]हाथ-से-हाथ मिला कर । [12]चक्राकार मंडली । [13]श्रीराधिका । [14]झरोखों में होकर ।

'ललितकिसोरी' लाड़िले, बिहरैंगे तिहिँ छाहिँ ॥३१॥
सुमन-बाटिका-बिपिन में, ह्वैहौं कब मैं फूल ।
कोमल कर दोउ भावते, धरिहैं बीनि दुकूल[१] ॥३२॥
कब कालीदह[२]-कूल की, ह्वैहौं त्रिबिधि समीर ।
जुगुल-अंग-अँग लागिहौं, उड़िहै नूतन चीर ॥३३॥
मिलिहैं कब अँग छार ह्वै, श्रीबन-बीथिन धूरि ।
परिहैं पद-पंकज जुगुल, मेरी जीवन-मूरि ॥३४॥
कब गहवर की गलिन में, फिरिहौं होइ चकोर ।
जुगुलचंद-मुख निरखिहौं, नागरि - नवलकिसोर ॥३५॥
कब कालिंदी-कूल की, ह्वैहौं तरुवर-डारि[३] ।
'ललितकिसोरी' लाड़िले, झूलैं झूला डारि ॥३६॥
स्यामा[४]-पद दृढ़ गहि सखी, मिलिहैं निहचै स्याम ।
ना मानै, दृग देखिलै, स्यामा-पद बिच स्याम ॥३७॥
ललित हरित अवनी सुखद, ललित लता नव कुंज ।
ललित बिहंगम बोलहीं, ललित मधुर अलिगुंज ॥३८॥
ललित बेलि, कलिका, सुमन, तिनहीं ललित सुबास[५] ।
पिक, कोकिल, सुक ललित सुर[६], गावत जुगुल-बिलास[७] ॥३९॥
ललित मृदुल बहु पुलिन-रज, ललित निकुंज-कुटीर ।
ललित हिलोरनि रवि-सुता, ललित सुत्रिबिधि समीर ॥४०॥

अब हम यहां दस-पाँच पद ललितकिशोरी जी के अनुज ललित माधुरीजी (साह कुंदनलाल) के लिखेंगे। प्रातः स्मरणीय भारतेंदुजी तो

[१]वस्त्र। [२]यमुना का वह घाट, जहां काली नाग नाथा गया था। [३](१) शाखा (२) डाल कर। [४]स्यामा...स्याम—'श्यामा' शब्द के मकार का 'आकार' यदि निकाल दिया जाय, तब भी 'श्याम' रहता है। 'श्यामा' शब्द के अंतर्गत ही श्याम हैं। राधिकाजी की आराधना से श्यामसुंदर मिल सकते हैं, क्योंकि वह उनके प्रेम के आधीन हैं। [५]सुगंध। [६]स्वर। [७]रास-रस।

इनके संबंध में कह गये हैं :

जो लछमन त्रेता करी, सो इन कलियुग माहिं किय।

यह भ्रातृस्नेहवश सदा अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ रहे और उन्हीं के भक्ति-भाव के पूरे अनुगामी हुए। अतएव हम, इनके नाम का भिन्न शीर्षक देकर, इन्हें श्रीललितकिशोरीजी से पृथक् नहीं करना चाहते।

इन्होंने भी अपने भाई की तरह भगवद्‌गुणानुवाद ललित पदों के ही द्वारा किया है। किसी-किसी का कहना है, कि ललितकिशोरीजी के स्वर्गस्थ हो जाने के अनंतर इन्होंने जितने पद बनाये, उन सब में अपना नाम न रख कर ललितकिशोरी की ही छाप दी है। धन्य इस त्याग और भ्रातृ-भक्ति को !

इनकी कविता टकसाली, रँगीली और चुटीली होती थी। इनका कोई अलग संग्रह नहीं है। श्रीललितकिशोरीजी के पदसमुच्चय में कहीं-कहीं पर इनके नाम के पद मिलते हैं।

दोहा

श्रीबृंदावन सहज हीं, ललितमाधुरी रूप।
ललित त्रिभंगी भामिनी, नित्यबिहार अनूप ॥१॥

विहाग

कहौ चंद, दंपति कुसलात[1]।
मम जीवनधन प्रानपियारे, दंपति कौन कुंज बिलसात[2] ॥
तू छिन भले निहारे नख-सिख, लली-लाल सुकुमारे गात।
तो तन-दुति अति बदन बिफुलता[3], कहैं देति छबि निरखत बात ॥
धन्य-धन्य तू, धनि तो जीवन, कछु तौ करि[4] बचनामृत-पात।
'ललितमाधुरी' अरे निरदई, कत[5] अबोल द्रुम-ओटनि जात ॥२॥

[1] 'कुशलात' शब्द केवल पद्य में ही प्रयुक्त हुआ है। [2] केलि करते हैं। [3] प्रफुल्लता। [4] करि...पात—अमृतरूपी बचन बोल। [5] कैसा, क्यों।

बिहाग

हाय ! कहा बिपरीत[1] भई ।
जुगुलचंद-मुखचंद बिलोकन, डसी भुजंगिनि बिन रदई[2] ।।
'ललितमाधुरी' बिरह-बिथित[3] अति, कढ़त न प्रानहुँ कठिन दई[4] ।
मो अभाग के उदै भये कोउ, दंपति[5]-प्रीति की रीति नई ।।३।।

सोरठ

बाँकी[6] अदा पै मैं बलिहारी ।
बाँकी पाग, केस-लट बाँकी, बाँकि मुकुट-छबि प्यारी ।।
बाँकी चाल, बाँकिहीं चितवनि, बाँकि मुरलिका धारी ।
कहँलौं 'ललितमाधुरी' बरनौं, आपुहिं बाँकेबिहारी ।।४।।

जिला

मोहन चोर पकरि कैसे पाऊं ।
देखत हौं दृग भरि-भरि सजनी, परसन[7] को रहि-रहि ललचाऊं ।।
दुरयौ निकुंज-लता बन-बीथिनि, निपट निकट मैं तोहिं बताऊं ।
'ललितमाधुरी' ही[8] में जी[9] सँग, चित चोरै हौं आनि मिलाऊं ।।५।।

---

[1]अनचाही बात । [2]दाँत । [3]व्यथा भरी । [4]दैव । [5]श्रीराधाकृष्ण । [6]टेढ़ी, अनोखी । [7]छूने को । [8]हृदय । [9]प्राणों के साथ ।

दूसरा खंड

बिहारीलाल

छप्पय

रससिँगार-आगार, अलंकारनि-सुअलंकृत ।
धुनि-व्यंजना, अनूप लच्छना-लच्छन-लच्छित ॥
एक-एक पर बहुर महुर जयसिंह नृप दीनी ।
कृष्ण-केलि-रस-सरस बढ़त हिय भाव नवीनी ॥
सोइ दिव्य सु दोहा 'सतसई' भई न ऐसी होय अनु ।
भाषाकवि-नृप-चक्रराट् बिहारीलाल जयदेव जनु ॥

—गोस्वामी राधाचरण

महाकवि बिहारीलाल का जन्म संवत् १६६० के लगभग ग्वालियर के समीप बसुवा गोविंदपुर में हुआ था। यह जाति के माथुर चौबे थे। इनकी बाल्यावस्था अधिकतर बुंदेलखंड में बीती। तरुणावस्था में यह अपनी ससुराल मथुरा चले आये। स्वर्गीय श्रीराधाकृष्णदासजी ने इन्हें कवि-श्रेष्ठ केशवदास का पुत्र माना है। किंतु 'सतसई' में कहीं-कहीं पर एकाध बुंदेलखंडी शब्द के प्रयोग अथवा एक दोहे में "केशव केशव राय" के उल्लेख से यह कदापि सिद्ध नहीं हो सकता, कि यह केशवदास के पुत्र थे। मथुरा से यह तत्कालीन जयपुर-नरेश मिरज़ा महाराज जयसिंह के पास चले गये। वहां पर इन्होंने जयसिंह के आनंदार्थ 'सतसई' का निर्माण किया। जयपुर-नरेश के आदेश से इन्होंने सतसई अवश्य बनायी, किंतु उसकी रचना का एकमात्र ध्येय उनका प्रसन्न करना था, इसमें हमें संदेह है। बिहारीलाल स्वयं लिखते हैं :

हुकुम पाय जयसिंह कौ, हरि-राधिका प्रसाद ।
करी बिहारी, सतसई, भरी अनेक सवाद ॥

बिहारीलालजी एक स्वतंत्र स्वभाव के कवि थे। राजा-महाराजाओं को अपनी कविता से प्रसन्न करना इनका एकमात्र ध्येय नहीं था। इन्होंने कविता बनायी, और वह कविता के लिए बनायी। सतसई के सूक्ष्म परिशीलन-द्वारा यह पता चलता है, कि उसके निर्माण-काल में कवि के जीवन में कितने परिवर्तन हुये। यह जयपुर-नरेश के आश्रय में रहे। कुछ दिनों बाद वहां से इनका जी ऊब गया। राजा-महाराजाओं के अहंकार के आगे इनकी स्वतंत्रता में बाधा पड़ने लगी। विवेक और वैराग्य का उदय हुआ। कलियुगी दानियों की ओर से इनका मन फिर चला। लिखते हैं :

कब कौ टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाय।
तुमहूं लागी जगतगुरु, जगनायक जग-बाय॥
थोरेई गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूं कान्ह भये मनों, आज-कालि के दानि॥

इस समय इन्हें सांसारिक सम्मान से घृणा हो चली थी। दुनियादारी को ख़ूब परख चुके थे। अतः अब केवल भगवत्-संबंधी कविता करने लगे। कहना न होगा कि इनकी यह रचना कितनी भव्य और ऊँची है। निम्न-लिखित सोरठा आपकी भक्ति-भावना का परिचय देता है :

मोहूं दीजै मोष, जो अनेक पतितन दियो।
जो बाँधे हीं तोष, तौ बाँधौ अपने गुननि॥

सतसई के संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। साहित्य में इसका कितना ऊँचा आसन है, इसे भाषा और भाव के जौहरी भली-भाँति जानते हैं। श्रीराधाचरण गोस्वामी ने तो इन्हें "पीयूषवर्षी मेघ" की उपमा दे डाली है, और ऐसा करने में, हमारी राय में, उन्होंने कोई अत्युक्ति नहीं की। सतसई पर बीसों टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। स्वर्गीय पंडित पद्मसिंहजी शर्मा ने 'संजीवनभाष्य' लिख कर, वास्तव में, म्रियमाण ब्रजभाषा-साहित्य में संजीवन-मंत्र फूँक दिया है। कविवर रत्नाकरजी भी सतसई के अमूल्य रत्नों का जौहर साहित्य की हाट में दिखा गये हैं। क्या यह बिहारी-साहित्य के लिये कम सौभाग्य की बात है?

हमने 'ब्रजमाधुरीसार' में उन्हीं कवियों को स्थान दिया है, जिनका ब्रज अथवा ब्रजभाषा से संबंध रहा हो, जो भगवत्-रस-माधुरी के मधुव्रत रहे हों, जो स्वाधीनचेता हों और जिन्होंने केवल शब्दाडंबर से दूर रह कर हृदय के गहरे भावों का यथेष्ट चित्रांकण किया हो। बहुत संभव है कि ये सभी सद्गुण सभी कवियों में एक साथ न मिलें। बिहारी में भी, एक प्रकार से, इनमें से किसी-किसी गुण का अभाव हो सकता है, किंतु अन्य गुणों के बाहुल्य से उसकी पूर्त्ति हो जाती है। यह महाराज जयपुर के आश्रित अवश्य थे, किंतु और कवियों की तरह उनके हाथ बिक नहीं गये थे। यह कोई सांप्रदायिक संत-महात्मा नहीं थे, पर साथ ही हरि-विमुख या केवल अर्थ-लोलुप संसारी-कवि भी नहीं थे। इनका संबंध श्रीहित-कुल से था। ब्रज और ब्रजभाषा के साथ तो इनका अभिन्न संबंध था। सतसई के पद्य-टीकाकार कृष्ण कवि क्या ही अच्छा लिख गए हैं :

ब्रजभाषा बरनी कबिन, बहु बिधि बुद्धि-बिलास।
सब कौ भूषन सतसई, करी बिहारीदास॥

इन सब बातों पर विचार कर के हम प्रस्तुत ग्रंथ में बिहारीलाल, देव, हरिश्चंद्र आदि महाकवियों के सम्मिलित करने का लोभ संवरण नहीं कर सके। सतसई के कुछ रत्नोपम दोहे नीचे लिखे जाते हैं :

दोहा

मेरी भव-बाधा[१] हरौ, राधा नागरि[२] सोय[३]।
जा तन की झाँई[४] परैं, स्याम हरित[५] दुति होय॥१॥
सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यह बानिक[६] मो मन बसौ, सदा 'बिहारी लाल'[७]॥२॥

[१] ऐहिक दुःख, जन्म-मरण का चक्र। [२] चतुर। [३] वे ही। [४] झलक, छाया। [५] हरे रंग की शोभा, फीके अर्थात जिनकी छवि हरण कर ली गयी हो। इस आशय का दोहा महाराज नागरीदासजी का भी है 'जामें रस सोई हरौ, यह जानत सब कोय। स्याम गौर द्वै रंग बिनु, हरौ रंग नहिं होय॥' [६] छटा। [७] बिहारी

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति[1] जोय[2] ।
बसति सुचित अंतर तऊ, प्रतिबिंबित[3] जग होय ॥३॥*
सखि, सोहति गोपाल के, उर गुंजन[4] की माल ।
बाहर लसति[5] मनों पिये, दावानल[6] की ज्वाल ॥४॥
मोर-मुकुट की चंद्रिकनि, यौं राजत नँद-नंद ।
मनु ससि-सेखर[7] के अकस[8], किय सेखर[9] सत चंद ॥५॥
नाचि अचानक हूं उठे, बिन पावस बन मोर ।
जानति हौं नंदित[10] करी, इहि दिसि नंद-किसोर ॥६॥†
जहां-जहां ठाढ़ो लख्यौ, स्याम सुभग सिरमौर ।
उनहूं बिन छिन गहि[11] रहत, दृगनि अजौं वह ठौर ॥७॥
मकराकृत[12] गोपाल के, कुंडल सोहत कान ।
धस्यौ समर[13] हिय-गढ़ मनहुँ, ड्योढ़ी लसत निसान ॥८॥§

(कवि) के प्यारे, श्रीकृष्ण ।

[1]हाल । [2]देखो । [3]संसार भर में प्रकाशित हो रहा है; घट-घट में व्यापक है । [4]घुँघची । [5]झलकती है । [6]वन में लगी हुई आग । एक बार ब्रज के एक वन में, जहां ग्वाल गाएं चरा रहे थे, बड़ी ही प्रचंड आग लग गयी । आर्त ग्वाल और गौओं को देख कर श्रीकृष्ण उस दावानल को देखते-देखते पान कर गये । यहां पर गुंजाओं की लाल माला दावानल की लपट के समान दिखाई देती है । [7]शिवजी । [8]द्वेष, होड़ । [9]सिर । [10]आनंदित । [11]पकड़ लेती है, खींच लेती है । [12]मछली के आकार वाले । [13]स्मर, कामदेव ।

*इस दोहे में दार्शनिक चमत्कार है । ब्रह्म स्वत: प्रकाशरूप होने के कारण, माया से आच्छादित होने पर भी सर्वत्र देदीप्यमान हो रहा है ।

†नीले मेघ के समान श्रीकृष्ण को देख कर मोरों को घन-घटा का भ्रम हो गया है ।

§श्रीकृष्ण का हृदय क़िला है, उसमें कामदेव प्रवेश कर गया है । क़िले के द्वार पर क़िलेदार कामदेव की कुंडल-रूपी ध्वजाएं शोभित हो रही हैं ।

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज-केलि[1]-निकुंज-मग, पग-पग होत प्रयाग[2] ॥९॥*
नितप्रति एकत हीं रहत, बैस बरन मन एक।
चहियतु जुगुलकिसोर लखि, लोचन जुगुल अनेक ॥१०॥
चिरजीवौ जोरी, जुरै, क्यौं न सनेह गँभीर।
को घटि ए बृषभानुजा[3], वै हलधर[4] के बीर[5] ॥११॥†
प्रलय-करन बरसन लगे, जुरि[6] जलधर इक साथ।
सुरपति गर्ब हर्यौ हरषि, गिरिधर गिरि धर हाथ ॥१२॥
सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलौने[7] गात।
मनों नीलमनि-सैल पर, आतप[8] पर्यौ प्रभात ॥१३॥‡
अधर धरत हरि के परत, ओंठ, दीठि[9] पट[10]-जोति[11]।
हरे बाँस की बाँसुरी, इंद्र-धनुष-सी होति ॥१४॥§

[1]रास-रस। [2]तीर्थराज; वह स्थान जहां बड़ा भारी यज्ञ हुआ हो। [3]महाराज वृषभानु की कन्या; वृषभ अर्थात बैल की अनुजा (बहिन)। [4]बलराम; बैल। [5]भाई। [6]इकट्ठे होकर। [7]सुंदर। [8]धूप। [9]दृष्टि। [10]पीतांबर। [11]झलक।

*प्रयाग में गंगा-यमुना सरस्वती का संगम है, तीनों का रंग क्रमशः सफ़ेद काला और लाल है। यहां श्रीराधाकृष्ण के शरीर की झलक ही त्रिवेणी हो जाती है।

†जाति-जाति में ही गहरा प्रेम होता है। यहां श्रीकृष्ण और राधिका दोनों ही राजकुल के हैं। अथवा, श्लेषार्थ से, राधिका जो बैल की बहिन हैं, तो कृष्ण बैल के भाई हैं।

‡प्रातःकालीन धूप का रंग पीला होता है। यहां श्रीकृष्ण का पीतांबर धूप के समान है।

§ वंशी पर इन रंगों की झलक पड़ने से इंद्रधनुष की-सी छटा दिखाई देती है (ओंठ = लाल; पट = पीला; दीठ = श्वेत, श्याम और लाल; वंशी = हरी।)

कहत सबै बैंदी[1] दियें, आँक[2] दसगुनो होत ।
तिय लिलार बैंदी दियें, अगनित बढ़त उदोत[3] ॥१५॥*

पत्रा[4] ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास ।
नित प्रति पून्यौ[5] ही रहति, आनन-ओप[6] उजास ॥१६॥

अजौं तर्‌यौना[7] ही रह्यौ, स्रुति[8] सेवत इक अंग ।
नाक[9] बास बेसर लह्यौ, बसि मुकुतन[10] के संग ॥१७॥†

सोरठा

मगल बिंदु सुरंग[11], मुख ससि केसर आड़[12] गुरु[13] ।
इक नारी[14] लहि संग, रस[15]-मय किय लोचन जगत ॥१८॥‡

दोहा

लिखन बैठि जाकी सबी[16], गहि गहि गरब-गरूर[17] ।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर[18] ॥१९॥§

[1](१) बिंदु, शून्य; (२) बिंदी । [2]अंक । [3]सुंदरता । [4]पंचांग । [5]पूर्णमासी । [6]चमक । [7](१) कर्णफूल; (२) तरा नहीं; मुक्त नहीं हुआ । [8](१) कान; (२) वेद । [9](१) नासिका; (२) स्वर्ग । [10](१) मोतियों के; (२) जीवन-मुक्तों के साथ । [11]लाल । [12]आड़ा टीका । [13]बृहस्पति, जिसका रंग पीला है । [14](१) स्त्री; (२) राशि । [15](१) आनंद; (२) जल । [16]चित्र । [17]घमंड । [18]मूर्ख ।

* इस दोहे से कवि का गणित-संबंधी ज्ञान प्रकट होता है ।

† इस दोहे में श्लेषार्थ से सत्संग का लाभ वर्णन किया गया है । वेदाध्ययन आदि से सत्संग कहीं अधिक श्रेयस्कर है ।

‡ इस श्लिष्ट सोरठे में ज्योतिष-संबंधी चमत्कार है । जब चंद्र, मंगल और बृहस्पति एक ही राशि पर स्थित होते हैं, तब महावृष्टि-योग होता है । यहां एक ही स्त्री में चंद्र जैसा मुख, मंगल जैसा लाल बिंदु और बृहस्पति जैसा पीला टीका देखने से संसार भर रसमय अर्थात् आनंदित हो जाता है ।

§ प्रतिक्षण सुंदरता बढ़ती रहने से कोई भी चित्र यथार्थ नहीं खिंच सका । अथवा सात्विक-भाव (पसीना, कंप आदि) आ जाने से चित्र ठीक-ठीक नहीं उतर

नेह न नैननि कौं कछू, उपजी बड़ी बलाय[१]।
नीर[२] भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय ॥२०॥
या अनुरागी चित्त की, गति[३] समुझै नहि कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम[४]-रँग, त्यों-त्यों उज्जल होय ॥२१॥
जो न जुगुति पिय-मिलन की, धूरि मुकुति[५]-मुख दीन।
जो लहिए सँग सजन[६] तौ, धरक नरक हूं कौन ॥२२॥*
लई सौंह-सी सुनन की, तजि मुरली-धुन आन।
किये रहति रति[७] रात-दिन, कानन[८] लाये कान ॥२३॥
लोभ लगे हरि-रूप के, करी साँट[९] जुरि[१०] जाइ।
हौं इन बेंचो बीच[११] हीं, लोयन[१२] बड़ी बलाइ ॥२४॥†
लाल तिहारे रूप की, कहौ, रीति यह कौन।
जासों लागैं पलक[१३] दृग, लागैं पलक[१४] पलौ[१५] न ॥२५॥

सका। अथवा सौंदर्य में निमग्न हो जाने से, मन हाथ में न रहा और इसी से चित्र खींचते समय बुद्धि नष्ट हो गयी। यह दोहा दार्शनिक दृष्टि से परमात्मा पर तथा शृंगार-दृष्टि से नायिका पर घटता है।

[१]आपत्ति, रोग। [२]जल, आँसू। [३]अवस्था। [४]काला, श्रीकृष्ण का रंग (भक्ति)। [५]मुक्ति। [६]प्यारा। [७]प्रेम, लगन। [८]वन, वृंदावन से तात्पर्य है। [९]सौदा तय करने का (दलालों को) गुप्त बातचीत। [१०]मिल कर। [११]बिना कुछ कहे-सुने ही। [१२]नेत्र। [१३]क्षण मात्र के लिए। [१४]पलक लगता है, नींद आती है। [१५]एक पल को भी।

*यहां प्रेम की पराकाष्ठा वर्णन की गया है। इसी आशय का एक दोहा कवि-वर अहमद का भी है। "कहा करौं बैकुंठ लै, कलपवृच्छ की छाँह। 'अहमद' ढाक सराहिये, जो प्रीतम-गल बाँह ॥"

†नेत्ररूपी दलालों ने श्रीकृष्ण के नेत्रों से मिल कर मुझे बीच ही में बेच डाला; कुछ पूछा तक नहीं!

लाल, सलौने[1] अरु रहे, अति सनेह[2] सों पागि ।
तनक कचाई[3] देत दुख, सूरन[4] लौं मुँह लागि[5] ॥२६॥†
कहा भयो जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ ।
उड़ी जाति कितहूं गुड़ी[6], तऊ उड़ायक[7]-हाथ ॥२७॥‡
हौंही बौरी बिरह-बस, कै बौरो सब गाँव ।
कहा जानिये कहत हैं, ससिहिं सीतकर[8] नाँव ॥२८॥०
कहलाने[9] एकत[10] बसत, अहि मयूर मृग बाघ ।
जगत तपोवन-सौ कियौ, दीरघ दाघ निदाघ[11] ॥२९॥*
दुसह दुराज[12] प्रजानि कौ, क्यों न बढ़ै अति दंद[13] ।
अधिक अँधेरो जग करैं, मिलि मावस[14] रवि-चंद ॥३०॥§

[1](१) सुंदर ; (२) नमक-सहित । [2](१) प्रेम; (२) तेल । [3](१) कच्चापन; (२) कपट । [4]जमीकंद । [5]काटना, खुजलाहट पैदा करना । [6]पतंग । [7]पतंग चढ़ाने वाला । [8]शीतल किरण वाला । [9]घबराये हुए; बुंदेलखंडी बोली में 'कहल' गर्मी को कहते हैं । [10]एकत्र । [11]ग्रीष्म । [12]दो राजाओं की एक साथ हुकूमत । [13]दुःख । [14]अमावस ।

†जैसे तेल और नमक डाल कर भूनने पर भी कुछ कच्चा रह जाने से सूरन मुँह में खुजली पैदा करता है, उसी प्रकार, प्यारे, यद्यपि तुम सुंदर और प्रेमी हो, किंतु तुम्हारा यह ज़रा-सा कपट भी दुःख देता है ।

‡यह दोहा अध्यात्म्यभाव पर भी घटता है । गुड़ी = जीव । उड़ायक = प्रेरक; सूत्रधार परमात्मा ।

०विरहिणी नायिका को चंद्रमा की किरणें दाहक जान पड़ती हैं । उसकी राय में, चंद्रमा का 'शीतकर' नाम न होना चाहिए था ।

*तपोवन में हिंसक जीव भी हिंसा-भाव छोड़ कर परस्पर प्रेम-पूर्वक रहते हैं । यहां, मारे गर्मी के, मोर और साँप, मृग और शेर अहिंसा-व्रत लिये हुए एक साथ बैठे हैं ।

§अमावस की रात में चंद्र और सूर्य एक ही राशि पर स्थित होकर संसार

कहैं यहै सब स्रुति सुमृति[१], यहै सयाने लोग ।
तीन दबावत निसक[२] हीं, पातक राजा रोग ॥३१॥
सबै हँसत करतारि[३] दै, नागरता[४] के नाँव ।
गयौ गरब गुन कौ सबै, बसे गँवारे गाँव ॥३२॥
जो चाहौ चटक[५] न घटै, मैलो होय न मित्त[६] ।
रज-राजस[७] न छुवाइए, नेह[८]-चीकने चित्त ॥३३॥†
नल की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ ।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होइ ॥३४॥
मीत, न नीत[९]-गलीत[१०] ह्वै, जो धन धरिए जोरि ।
खाये खरचे जो बचै, तो जोरिए करोरि[११] ॥३५॥
इहिं आसा अटक्यौ रहै, अलि गुलाब के मूल ।
ऐहैं बहुरि बसंत रितु[१२], इन डारनि वै फूल[१३] ॥३६॥
कनक[१४] कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय ।
वा खायें बौरात है, या पायें बौराय ॥३७॥
को छूट्यौ इहिं जाल परि, कत कुरंग अकुलात ।

भर मे घोर अंधकार छा देते है । इसी प्रकार एक साथ दो राजाओं का द्वैध-शासन प्रजा मे अंधेर मचा देता है ।

[१]स्मृति, धर्मशास्त्र-संबंधी पुस्तकें । [२]निःशक्त, कमज़ोर । [३]ताली पीट कर । [४]शिष्टता, चतुराई । [५]चमक, गहरा प्रेम । [६]मित्र । [७]शासन । [८]प्रेम; तेल । [९]नीति; 'मीत-गलीत' के अनुप्रास के लिए 'नीत' कर दिया गया है । [१०]गलित, दुर्दशा-ग्रस्त । [११]करोड । [१२]ऋतु । [१३]वे रसीले फूल, जिनका पहले (भ्रमर) पराग पान कर चुका है । [१४]कनक सोने को भी कहते है और धतूरे को भी । धतूरे के खाने से पागल बनना पड़ता है, पर सुवर्ण के पाने से ही मदांध हो जाना पड़ता है । धन का नशा सब से बुरा है ।

†किसी चीज़ पर यदि तेल लगाया गया है और उसे चिकना रखना है तो उस पर धूल न पड़ने दो । इसी प्रकार प्रेमपात्र के चित्त पर किसी प्रकार की

ज्यों-ज्यों सुरभि भज्यौ चहत, त्यौं-त्यौं उरझति जात ॥३८॥*
कर लै सूँघि सराहि कैं, रहे सबै गहि मौन ।
गंधी, गंध गुलाब के, गँवई गाहक कौन ॥३९॥
वै न यहां नागर बड़े, जिन आदर तो आब[1] ।
फूल्यौ[2]-अनफूल्यौ भयौ, गँवई गाँव गुलाब ॥४०॥
जदपि पुराने बक तऊ, सरबर निपट कुचाल ।
नये भये तौ कह भयौ, ये मनहरन मराल ॥४१॥
को कहि सके बड़ेन सों, लखै बड़ी हू भूल ।
दई[3] दई गुलाब कों, इन डारन[4] में फूल[5] ॥४२॥
बहकि[6] बड़ाई आपनी, कत राचति[7] मति भूल ।
बिनु मधु मधुकर के हियें, गड़ै[8] न गुड़हर फूल[9] ॥४३॥
पट[10]-पाखैं भखु[11] काँकरें,[12] सपर परेई[13] संग ।
सुखी परेवा[14] पुहुमि में, एकै तुहीं बिहंग ॥४४॥
दिस दस आदर पायकैं, करिलै आपु बखान[15] ।
जौ लौं काग सराध[16]-पख, तौ लौं तो सनमान ॥४५॥ †
मरन प्यास पिंजरा पर्‌यौ, सुवा[17] समय के फेर ।

हुकूमत न करो, अन्यथा उसके चित्त में गाँठ पड़ जायगी ।

[1]इज्ज़त । [2]फूल्यौ... भयौ = फूलना, न फूलना बराबर ही हुआ । [3]दैव ने । [4]इन काटेदार डालों में । [5]रसीले सुगंधित फूल । [6]भूल कर । [7]मस्त हो रही है । [8]अच्छा लगे । [9]जपा का फूल । [10]पंख ही जिसके वस्त्र हैं । [11]भोजन । [12]कंकड़ । [13]कबूतरी । [14]कबूतर । [15]बड़ाई का वर्णन । [16]पितृ-पक्ष । [17]तोता ।

*यह बद्ध जीवों पर भी घटता है । जाल, जगत-जंजाल है, और कुरंग, जीव ।

†पितृपक्ष में कौओं की ख़ूब बनती है, क्योंकि उन पंद्रह दिनों में उन्हें नित्य भर पेट श्राद्ध का बलि-भोजन मिलता ।

आदर दै-दै बोलियत[1], बायस[2] बलि[3] की बेर ॥४६॥ §
जो सिर धरि महिमा मही, लहियत राजा राव ।
प्रगटत जड़ता आपनी, मुकुट पहिरियत पाव ॥४७॥
चले जाहु ह्यां को करत, हाथिन कौ ब्यौपार ।
नहिं जानत, या पुर बसत, धोबी और कुम्हार ॥४८॥
विषम बृषादित[4] की तृषा, जियौ मतीरनि[5] सोधि ।
अमित अपार अगाध जल, मारौ मूढ़[6] पयोधि ॥४९॥
गिरि तें ऊँचे रसिक मन, बूड़े जहां हजार ।
वहै सदा पसु-नरन[7] कों, प्रेम-पयोधि पगार[8] ॥५०॥
चटक न छाँडत घटत हूँ, सज्जन-नेह गँभीर ।
फीकौ परै न, बरु[9] फटै, रँग्यौ चोल[10]-रँग चीर[11] ॥५१॥
तंत्री - नाद कवित्त - रस, सरस राग रति-रंग[12] ।
अनबूड़े[13] बूड़े[14], तरे, जे बूड़े[15] सब अंग ॥५२॥
कालि दसहरा[16] बीति है, धरि मूरख जिय लाज ।
दुर्‌यौ फिरत कत द्रुमन में, नीलकंठ, बिन काज ॥५३॥
समै-समै सुंदर सबै, रूप - कुरूप न कोय ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होय ॥५४॥*

[1]बुलाये जाते हैं। [2]कौवा। [3]श्राद्ध का भोजन। [4]गरमी का वह समय, जब सूर्य वृष-राशिस्थ होते हैं। [5]तरबूज़। [6]बेमतलब का। [7]अरसिक, अज्ञानी। [8]उथला। [9]चाहे। [10]मँजीठ। [11]कपड़ा। [12]प्रेम। [13]जो डूबे नहीं हैं, जिन्हें तल्लीनता प्राप्त नहीं हुई है। [14](संसार-सागर में) डूब गये। [15]बूड़े... अंग—जो सराबोर (तल्लीन) हो गये। [16]विजय-दशमी।

§सत्पात्र का तिरस्कार करने से अपनी ही अयोग्यता प्रकट होती है: 'कहा विष्णु कौ घटि गयो, जो भृगु मारी लात।'

*इस दोहे में दार्शनिक चमत्कार है। कोई भी वस्तु वस्तुतः न अच्छी है न बुरी; उसकी अच्छाई और बुराई भोक्ता पर निर्भर है। इसे 'वस्तु-तत्व' कहते हैं।

सोरठा

हौं समुझ्यौ निरधार[1], यह जग काँचौ[2] काँच-सौ ।
एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियतु जहां ॥५५॥†

दोहा

जगत जनायौ[3] जेहि सकल, सो हरि जान्यौ नाहि ।
ज्यौं आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाहिं ॥५६॥‡
जप माला छापा तिलक, सरै[4] न एकौ काम ।
मन-काँचै[5] नाचै बृथा, साँचै राँचै[6] राम ॥५७॥§
तौ लगि या मन-सदन में, हरि आवैं किहिं बाट ।
बिकट जरे जौ लगि निपट, खुलैं न कपट-कपाट ॥५८॥
यह बिरियां नहि और की, तू करिया[7] वह सोधि[8] ।
पाहन-नाव चढ़ाय जिन, कीन्हें पार पयोधि[9] ॥५६॥*
भजन[10] कह्यौ तासो[11] भज्यौ[12], भज्यौ न एकौ बार ।
दूर भजन जासों[13] कह्यौ, सो तूँ भज्यौ गँवार ॥६०॥
दूरि भजत[14] प्रभु पीठि दै, गुन बिस्तारन[15]-काल ।

[1]निश्चय-पूर्वक । [2]कच्चा, नश्वर । [3]ज्ञान दिया । [4]काम नहीं आते । [5]कपटी । [6]प्रसन्न । [7]केवट, मल्लाह । [8]खोज ले । [9]समुद्र । [10](१) भजन करना । (२) भागना । [11]परमेश्वर के नाम से । [12](१) भजन किया, (२) भागा । [13]संसारी विषय-वासनाओं से । [14]भागते हैं । [15]दिखावा करने समय अभिमान-पूर्वक साधन-बल बतलाने के समय ।

†इस सोरठे में भी दार्शनिक चमत्कार है । इसमें अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया जितना 'नानात्व' दिखायी देता है, सब परमात्मा का ही प्रतिबिंब-स्वरूप है ।

‡यह दोहा भी दार्शनिक सिद्धांत से शून्य नहीं है ।

§यदि कपट के साथ माला जपी जाय या तिलक लगाया जाय, तो अंत समय पर यह दंभ काम न आयेगा, क्योंकि राम तो सच्चे के साथी हैं; किंतु यदि निष्कपट भाव से माला और तिलक धारण किये जाँय तो कोई बुराई

*यहां मल्लाह का आशय श्रीरामचंद्रजी से है, जिन्होंने बंदरों का सेना

प्रगटत निरगुन[१] निकट हीं, चंग[२] - रंग गोपाल ॥६१॥*
पतवारी[३] माला पकरि, और न आन उपाव ।
तरि[४] संसार-पयोधि को, हरि-नामै करि नाव ॥६२॥†
मन, मोहन सों मोह करि, तूं घनश्याम निहारि ।
कुंजबिहारी सों बिहरि, गिरिधारी उर धारि ॥६३॥
नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि ।
मनों तज्यौ तारन-बिरद, बारक[५] बारन[६] तारि ॥६४॥
दीरघ साँस[७] न लेहि दुख, सुख साईं[८] नहि भूल ।

पत्थर के पुल पर से समुद्र-पार कर दी थी । वही कृपाल रामचंद्र जी अपनी कृपा से जीव जीवन-नौका खेकर संसार-सागर से उसे किनारे लगा देंगे ।

[१]गुणहीन, अहंकार शून्य । [२]पतंग के समान । [३]करिया । [४]पार करना । [५]एक बार । [६]गजेंद्र । [७]आह ! [८]स्वामी, ईश्वर ।

*पतंग चढ़ाते समय ज्यों-ज्यों डोरी बढ़ाओगे, त्यों-त्यों पतंग दूर ही होती जायगी । यदि उसे अपने पास खींचना है, तो डोरी खींच लो । इसी प्रकार, जिन लोगों को अपने गुणों का अभिमान है, उनसे भगवान सदा दूर रहते हैं । वह उन्हीं के पास आने को तैयार रहते है, जिनकी यह चाहना है, कि हम लोग न विद्वान् हैं, न कुलीन; केवल आपके दास है। निराकारवादी इस दोहे का यह अर्थ लगाते हैं, कि परमात्मा सगुण-उपासना करने वालों से दूर भागता है, वह निर्गुण उपासकों के ही आगे प्रत्यक्ष प्रगट होता है । हमारी समझ में यह अर्थ उपयुक्त नहीं है । यहां 'सगुण और निर्गुण' पद ब्रह्म-वाची नहीं है । भक्तवर बिहारी ने भक्त की निरहंकारिता और भगवान् की दयालुता दरसाने ही की चेष्टा की है ।

†इस दोहे मे भक्त अपने मन को समझा रहा है। कहता है, यदि तू मोही ही है तो मोहन से मोह लगा, यदि सौंदर्य ही देखना चाहता है तो घनश्याम [illegible]ओर टक लगा कर देखा कर, जो इधर-उधर भटकना ही है, तो कुंजबिहारी कृष्ण के साथ बिहार क्यों नहीं करता ? अरे, अपने को बड़ा भारी बली ही

दई-दई[१] क्यों करत है, दई दई[२] सु[३] कबूल ॥६५॥
ब्रज बासिन कौ उचित धन, जो धन रुचि तन कोइ ।
सु चित न आयौ[४] सुचितई[५], कहौ कहां तें होइ ॥६६॥
कीजै चित सोई तिरौं[६], जिहि पतितन के साथ ।
मेरे गुन-औगुन गननि[७], गिनौ न गोपीनाथ ॥६७॥
थोरेई[८] गुन रीझते, बिसराई वह बानि[९] ।
तुमहूँ कान्ह भये मनों, आज-कालि[१०] के दानि ॥६८॥*
कबकौ टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाय ।
तुमहू लागी जगतगुरु, जगनायक जग-बाय[११] ॥६९॥*
कोऊ कोरिक[१२] संग्रहौ, कोऊ लाख हजार ।
मो संपति जदुपति सदा, बिपति बिदारनहार[१३] ॥७०॥
ज्यौं ह्वैहौं त्यों होहुगो, हौं हरि अपनी चाल[१४] ।
हठ न करौ अति कठिन है, मो तारिबो गुपाल[१५] ॥७१॥
मोहिं-तुम्हैं बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज ।
अपने-अपने बिरद[१६] की, दुहुन निबाहन लाज ॥७२॥

समझता है तो चल, गिरिधारी नंदनंदन को अपने हृदय में धारण करले ।

कोई-कोई रसिक इस भक्ति-पूर्ण दोहे को शृंगार रस पर भी घटाते हैं ।

[१]हाय राम, हाय राम! [२]जो ईश्वर ने दिया है । [३]वही। [४]मन में नहीं बसा । [५]निर्मलता, शांति । उचित धन से अभिप्राय इष्टदेव से है । [६]संसार से तर जाऊं, मुक्त हो जाऊं । [७]समूहों को । [८]ज़रा से ही । [९]स्वभाव । [१०]कलियुगी, स्वार्थी । [११]दुनियावी हवा; स्वार्थभाव । [१२]करोड़ों । [१३]नाश करनेवाले । [१४]करनी । [१५]गोपाल, श्रीकृष्ण । [१६]बाना; भक्त का पापों का बढ़ाना और परमेश्वर का पापों का नाश करना । महात्मा सूरदास कहते हैं :

'आजु हौं एक-एक करि टरिहौं । कै हमहीं कै तुमहीं माधव, अपुन भरोसे लरिहौं ॥'

*उपर्युक्त दोनों दोहों में कलियुगी स्वार्थी दानियों की निंदा की गयी है ।

करौ कुबत[1] जग, कुटिलता[2], तजौं न दीनदयाल ।
दुखी होहुगे सरल चित, बसत त्रिभंगीलाल[3] ॥७३॥

सोरठा

मोहूं दीजे मोष[4], जो अनेक पतितनि दियौ ।
जो बाँधे हीं तोष[5], तौ बाँधौ अपने गुननि[6] ॥७४॥

दोहा

हरि, कीजत[7] तुमसों यहै, बिनती बार हजार ।
जेहि तेहि भाँति डरो[8] रहौं, परो रहौं दरबार ॥७५॥
तौ बलियै[9] भलियै बनी, नागर नंदकिसोर ।
जो तुम नीके[10] कै लखौ, मो करनी की ओर ॥७६॥*
जात-जात[11] बित[12] होत है, ज्यौं जिय में संतोष ।
होत-होत[13] त्यों होय तौ, होय घरी[14] में मोष[15] ॥७७॥

संभव है, महाकवि बिहारी का किसी राजा-रईस ने अनादर किया हो, और उसी को लक्ष्य करके ये दोहे बनाये गये हों ।

[1]बुरी बात, निंदा । [2]टेढ़ापन, बुराई । [3]बाँकेबिहारी । जैसे के लिए तैसे की ज़रूरत है । त्रिभंगीलाल के भक्त भी कुटिल होने चाहिएं, सीधे-सरल नहीं ! [4]मोक्ष । [5]संतोष, प्रसन्नता । [6]गुणों से, रस्सियों से । [7]करता हूं । [8]पड़ा रहूं (बुंदेलखंडी) । [9]बलिहारी है । [10]बारीकी में, इंसाफ करके । [11]नष्ट होते-होते । [12]धन । [13]आते-आते । [14]एक घड़ी में । [15]मोक्ष । सारांश यह है, कि लोभ ही बंधन है, और संतोष ही मोक्ष ।

*मेरी ओर, हे नंद-नंदन भला है, यदि न्याय-दृष्टि से न देखो, क्योंकि ऐसा करने में मेरी बात बनने की नहीं । एक जन्म तो है ही क्या, करोड़ों जन्म तक भी तरने का नहीं ।

19

देव

छप्पय

ब्रज-साहित्य-सिँगार, सुरस रचना में नागर ।
उक्त अनूठी, भव्य काव्य-गरिमा-गुन-आगर ॥
कृष्ण-केलि-रस-मधुर-माधुरी-मत्त रँगीलौ ।
प्रेम-भाव कौ रूप, रसिक-परबस, गरबीलौ ॥
श्रीहित-कुल-आश्रित, अनुभवी, रह्यौ इटाये प्रेममय ।
जेहि ग्रंथ-कदंब रचे सुभग, कवि-चूड़ामनि देव जय ॥
—वियोगी हरि

महाकवि देवदत्त, उपनाम देव, इटावा के रहने वाले थे । इनका जन्म सं० १७३० में हुआ था । इन्होंने १६ वर्ष की अवस्था से ही कविता लिखना आरंभ कर दिया था, जैसा 'भावविलास' नामक एक ग्रंथ से पता चलता है :

सुभ सत्रह सौ छियालिस, चढ़त सोरहीं वर्ष ।
कढ़ी देव-मुख देवता, भाव-विलास सहर्ष ॥

'सुखसागर-तरंग' की भूमिका में श्रद्धेय मिश्रबंधुओं के पूज्य पिता पंडित बालदत्तजी मिश्र ने इनके संबंध में लिखा है :

"इनके गुरु स्वामी हितहरिवंसजी थे । श्रीस्वामी हितहरिवंसजी की अष्टछाप (?) अर्थात् ब्रज के प्रसिद्ध आठ कवियों में गणना है और इनके पद बहुत अनूठे व सूरदास जी के पदों से समानता करते हैं । इन महाराज के १२ शिष्य थे और इन बारह में से देवजी मुख्य थे ।" यह तो स्पष्ट ही है कि स्वामी हितहरिवंशजी महाराज का जन्म सोलहवीं

शताब्दी में हुआ था, फिर देवजी उनके शिष्य कैसे हो सकते हैं! हां, यह हितकुलावतंशी अवश्य थे, किंतु इनके गुरु का क्या नाम था, इसका ठीक-ठीक पता नहीं। इन्होंने सब से पहले १६ वर्ष के आरंभ में 'भाव-विलास' बना कर औरंगज़ेब के बड़े पुत्र काव्य-रसिक आज़मशाह को सुनाया। इसके बाद 'अष्टयाम' की रचना की। ये दोनो ग्रंथ शृंगाररस में अनूठे हैं। देवजी, भवानीदत्त वैश्य, कुशलसिंह (फफूँद-इटावा-निवासी) राजा उद्योतसिंह, भोगीलाल पिहानीवाले, अकबरअलीखाँ आदि के आश्रय में रहे; पर इनके मन का, भोगीलाल के अतिरिक्त, कोई भी आश्रयदाता न मिला। भारत के प्रांत-प्रांत में घूमने से इन्हें बड़ा अनुभव प्राप्त हो गया। इसी अनुभव के फलस्वरूप इन्होंने 'जाति-विलास' जैसे उत्कृष्ट ग्रंथ की रचना की। आश्रयदाताओं के प्रति असंतुष्ट रहने के कारण अंत में इन्हें कुछ विरक्ति-सी हो गयी और यह शृंगार रस से शांत रस में उतर आये। इन्होंने शांत रस में भी कमाल कर दिखाया 'देवमाया-प्रपंच नाटक', 'वैराग्य-शतक', 'तत्त्वदर्शन-पच्चीसी', 'आत्मदर्शन-पच्चीसी', 'जगद्दर्शन-पच्चीसी', 'ब्रह्मदर्शन-पच्चीसी' एवं 'नीतिशतक' आदि शांतरस प्रधान ग्रंथों को लिख कर यह सिद्ध कर दिया, कि विशुद्ध शृंगार के उपासक शांत रस को भी किस सफलता के साथ अंकित कर सकते हैं। किसी के मत से इनके ७२ और किसी के मत से इनके ५२ ग्रंथों का उल्लेख पाया जाता है। अब तक इनके निम्नलिखित २७ ग्रंथों का पता चला है :

१. भाव-विलास; २. भवानी-विलास; ३. कुशल-विलास; ४. जाति-विलास; ५. रस-विलास; ६. राधिका-विलास; ७. पावस-विलास; ८. वृत्त-विलास; ९. अष्टयाम; १०. सुंदरी-सिंदूर; (संग्रह) ११. सुजान-विनोद; १२. प्रेम-तरंग; १३. राग-रत्नाकर; १४. देव-चरित्र; १५. प्रेम-चंद्रिका; १६. काव्य-रसायन; १७. सुखसागर-तरंग (संग्रह) १८. देवमाया-प्रपंच (नाटक) १९. ब्रह्मदर्शन-पच्चीसी; २०. आत्मदर्शन-पच्चीसी; २१. तत्त्वदर्शन-पच्चीसी; २२. जगद्दर्शन-पच्चीसी; २३. नीति-शतक;

२४. नखशिख; २५. रसानंद-लहरी; २६. प्रेमदीपिका; २७. सुमिल-विनोद।

देव की कविता शुद्ध ब्रजभाषा में है, पर कहीं-कहीं इन्होंने शब्दों का तोड़-मरोड़ बुरी तरह से किया है। इनकी कविता में ओज, प्रसाद और माधुर्य खूब पाया जाता है। उक्तियां तो बड़ी ही अनूठी हैं। महाकवि बिहारीलाल के बाद भाव-व्यक्तीकरण में इन्हीं का स्थान है। स्वर्गीय पं० बालदत्तजी मिश्र तो इनको सर्वश्रेष्ठ कवि मानते थे। इस संबंध का उन्होंने यह कवित्त भी 'सुखसागर-तरंग' के आदि में लिखा है :

सूर सूर, तुलसी सुधाकर, नक्षत्र केशव,
सेष कविराजन कों जुगुनू जनाय कैं।
दोऊ परिपूरन भगति दरसायौ अब,
काव्यरीति मोसन सुनहु चित लाय कैं॥
देव नभमंडल समान हैं कवीन-मध्य,
जामें भानु सितभानु तारागन आय कैं।
उदय होत, अथवत, चारों ओर भ्रमत पै,
जाकौ ओरछोर नहिं परत लखाय कैं॥

मिश्रजी ने इस कथन की पुष्टि भी यथाशक्ति खूब की है। आपने देव के आगे तुलसी सूर को भी निस्तेज-सा दिखाया है। कबीर को कोई कवि ही नहीं माना! 'हिंदी-नवरत्न' और 'मिश्रबंधु-विनोद' के सुबुध रचयिताओं की भी कुछ ऐसी ही राय है। हमारी तुच्छ सम्मति में देव की इस प्रशंसा में अत्युक्ति है। माना, कि इनकी कविता बड़ी ही सरस, भाव-पूर्ण, ओजस्विनी और अनोखी है, पर सूर और तुलसी को तो जाने दीजिये, वह केशव और बिहारी की रचना से भी आगे नहीं बढ़ सकती। कुछ दिनों से हिंदी-साहित्य-संसार में इस विषय पर बड़ी हलचल मची है। कोई देव को सातवें अर्श पर ले जाता है, तो कोई उन्हें बिहारी के मुक़ाबले में धड़ाम से फ़र्श पर गिरा देता है। देव-बिहारी, केशव-देव, दास-देव आदि तुलनात्मक आलोचनाओं से वृथा पक्षपात के कारण एक प्रकार से साहित्य-हत्या ही हुई है। साहित्यिक महारथियों को इस पर निष्पक्ष

रीति से विचार करना चाहिए। देवजी ने अपनी प्रखर प्रतिभा के प्रताप से पूर्ववर्ती सुकवियों के कई भाव ज्यों-के-त्यों उठा कर अपनी रचनाओं में रख दिये हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता, कि उनके ग्रंथ बिलकुल निर्दोष हैं, या देव के आगे कोई कवि 'न भूतो न भविष्यति' ही हम कह सकते हैं। तुलना का काम बड़ा कठिन काम है। सहसा किसी को इतना नीचा गिरा देना न्यायसंगत नहीं है। ऐसी एकपक्षीय आलोचनाओं से भ्रम और द्वेष के प्रचार के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं।

इसमें संदेह नहीं, कि देवजी ब्रजभाषा साहित्य के इने-गिने महा-कवियों में से थे। पर प्रश्न यह उठता है कि इनकी कविता का प्रचार अधिक क्यों नहीं हुआ। एक बात तो यह है कि इनके पद्य प्रायः जटिल से हैं और दूसरे, गूढ़ोक्तियों के कारण वे दुर्बोध से हो गये हैं। शृंगार का बाहुल्य भी एक कारण हो सकता है। किन्तु प्रचाराधिक्य के अभाव से यह नहीं कहा जा सकता कि इनकी कविता उत्तमता की दृष्टि से हीन है। लोक-प्रियता ही सत्कविता की एकमात्र कसौटी नहीं है। प्रायः देखा गया है कि रद्दी पुस्तकों का खूब प्रचार है। तो क्या इस प्रचार से उनका महत्त्व बढ़ जायगा? कदापि नहीं। देवजी की कविता लोक-प्रिय नहीं, पंडित-प्रिय तो अवश्य है। वास्तव में, देव-जैसे महाकवियों के होने से हमारे प्राचीन ब्रज-भाषा-साहित्य का मस्तक सदा ऊँचा रहेगा। इन्हीं सर्वव्यापिनी दृष्टि वाले कवि-रत्नों के प्रकाश से साहित्य-संसार सदा जगमगाता रहेगा।

अभी तक इनके चार-पाँच ग्रंथ ही मुद्रित हुए हैं। महाकवि देव के कतिपय ग्रंथों से कुछ उत्तम पद्य यहां उद्धृत किये जाते हैं :

सवैया

पायन नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिन में धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पटपीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥

माथे किरीट[१], बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुखचंद-जुन्हाई ।
जै जग-मंदिर-दीपक सुंदर, श्री ब्रजदूलह[२] देव-सहाई ॥१॥

कवित्त

सूनो कै परम-पदु[३], ऊनो[४] कै अनंत मदु,
दूनो कै नदीस नदु इंदिरा[५] फुरै परी ।
महिमा मुनीसन को, संपति दिगीसन की,
ईसन[६] की सिद्धि ब्रज-बीथी बिथुरै[७] परी ॥
भादौं की अँधेरी अधराति, मथुरा के पथ,
आई मनोरथ, देव देवकी दुरै परी ।
पारावार पूरन, अपार, परब्रह्म रासि,
जसुदा के कोरे[८] एक बारक कुरै[९] परी ॥२॥*

धाये फिरौ ब्रज में, बधाये नित नंदजू के,
गोपिन सधाये, नाचौ गोपन की भीर[१०] में ।
देव मतिमूढ़ै तुम्हैं ढूँढ़ै, कहां पावै, चढ़े
पारथ[११] के रथ, पैठे[१२] जमुना के नीर में ॥
आँकुस ह्वै दौरि हरनाकुस कौ फारयौ उर,
साथी न पुकारयौ, हते हाथी हिय तीर में ।
बिदुर[१३] की भाजी, बेर भीलनी[१४] के खाय,
बिप्र चाउर[१५] चबाय, दुरे द्रौपदी के चीर में ॥३॥

[१]मुकुट। [२]ब्रज के श्रृंगार, श्रीकृष्ण। [३]मोक्ष। [४]कम करके। [५]लक्ष्मी। [६]ऐश्वर्यशाली। [७]बिखेर दी गई। [८]गोद में। [९]डाल दी, भर दी; 'कुरैना' बुंदेलखंडी शब्द है। [१०]मंडली। [११]पार्थ, अर्जुन। [१२]प्रवेश कर गये। [१३]दासी के गर्भ से उत्पन्न धृतराष्ट्र के भाई। [१४]शबरी। [१५]सुदामा के चावल।

*इस कवित्त में श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव का क्या ही सुंदर चित्र है।

'देव' नभ-मंदिर में बैठारयौ पुहुमि-पीठ[१],
सिगरे सलिल अंहवाये उमहत[२] हौं।
सकल महीतल के मूल, फल, फूल, दल,
सहित सुगंधन चढ़ावन चहत हौं॥
अगिनि अनंत धूप, दीपक अखंड[३] जोति,
जल, थल, अन्न दै प्रसन्नता लहत हौं।
ढारत[४] समीर चौंर, कामना न मेरे और,
आठौ जाम, राम, तुम्हैं पूजत रहत हौं॥४॥*

नाक,[५] भू, पताल, नाक-सूची[६] तें निकसि आये,
चौदहो भुवन भूखे, भुनगा[७] को भयो हेत।
चींटी-अंड-भंड[८] में समान्यौ, ब्रह्मंड सब,
सपत[९] समुद्र बारि बुंद में हिलोरैं लेत॥
मिलि गयौ मूल थूल[१०], सूच्छम समूल कुल,
पंचभूतगन अनुकन में कियौ निकेत।
आप ही ते आपही सुमति सिखराई[११], 'देव',
नखसिख[१२]राई में सुमेरु देखराई देत॥५॥†

तुहीं पंचत्व, तुहीं तत्व रज, तम तुहीं,
थावर[१३] औ जंगम जितेक[१४] भयौ भव में।
तेरे ये बिलास[१५] लौटि, तोहीं में समान्यौ, कछू,
जान्यौ न परत पहिचान्यौ जब जब में॥

[१]पृथिवी-रूपी आसन। [२]प्रसन्न होता हूं। [३]अखंड ज्योति से दीपार्चना की जाती है। [४]झलता है। [५]स्वर्ग। [६]सुई का छेद। [७]छोटा-सा कीड़ा। [८]पात्र। [९]सप्त, सात। [१०]स्थूल। [११]सिखा दी। [१२]नख का अग्र भाग अथवा राई के दाने; नख-शिख अर्थात पूरा अंग। [१३]स्थावर, जड़। [१४]जितना। [१५]विभूति।

*क्या ही सुंदर विश्वव्यापिनी पूजा है!

†आश्चर्य का कुछ ठिकाना! यह सब आत्मा की ही करामात है।

देख्यौ नहीं जात, तुहीं देखियतु जहां-तहां,
दूसरो न देख्यौ 'देव' तुहीं देख्यौ अब में।
सब की अमरमूरि[1], मारि सब धूरि कहै,
दूरि सबही तें, भरि पूरि रह्यौ सब में ॥६॥
मूढ़ ह्वै रह्यौ है, गूढ़ गति क्यों न ढूँढत है,
गूढ़चर[2] इंद्रिय अगूढ़ चोर मारि दै।
बाहर हू भीतर निकारि अंधकार सब,
ग्यान की अगिनि सों अयान[3]-बन बारि[4] दै॥
नेह भरे भाजन में कोमल अमल जोति,
ताकौ हू प्रकाश चहुँ पुंजन पसारि दै।
आवै उमड़ा-सो मोह-मेह-घुमड़ा-सो 'देव',
माया कौ मड़ा[5]-सो अँखियन तें उघारि[6] दै ॥७॥
अग[7], नग[8], नाग, नर, किन्नर, असुर, सुर,
प्रेत, पसु, पच्छी, कोटि-कोटिन कढ्यौ फिरै।
माया-गुन[9] तत्व उपजत, बिनसत सत्व,
काल की कला कौ ख्याल खाल[10] में मढ्यौ फिरै॥
आपहीं भखत, भख[11], आपही अलख[12]-लख,
'देव' कहूं मूढ़, कहूं पंडित पढ्यौ फिरै।
आपही हथ्यार, आप मारत, मरत आप,
आपहीं कहार, आप पालकी चढ्यौ फिरै ॥८॥
तेरो घर घेरे आठो जाम रहैं आठो सिद्धि,
नवों निधि तेरे बिधि लिखिए ललाट हैं।

[1]संजीवनी बूटो। [2]गुप्तचर। [3]अज्ञान, अविद्या। [4]जला दे। [5]माडा। [6]छाँट डाल। [7]जड़। [8]पहाड। [9]मायिक त्रिगुण; सत्व, रज और तम। [10]पांचभौतिक शरीर। [11]भक्ष्य। [12]अलक्ष्य; अदृश्य-दृश्य—अव्यक्त-व्यक्त। इसे "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन" का ही सरस भाष्य कहना चाहिए।

'देव' सुख-साज महराजनि कौ राज तुहीं,
सुमति सु सो ये तेरी कीरति के भाट हैं ॥
तेरे ही अधीन अधिकार तीन लोक कौ सु,
दीन भयौ क्यों फिरै मलीन घाट[1]-बाट है ।
तो में जो उठत बोलि[2], ताहि क्यों न मिलै डोलि[3],
खोलिए हिये में दिये कपट-कपाट हैं ॥९॥*

हौं ही ब्रज, बृंदाबन मोहीं में बसत सदा,
जमुना-तरंग स्यामरंग अवलीन की ।
चहूं ओर सुंदर, सघन बन देखियतु,
कुंजनि में सुनियतु सु गुंजनि अलीन[4] की ॥
बंसीबट-तट नटनागर नटतु[5] मो में,
रास के विलास की मधुर-धुनि बीन की ।
भरि रहो भनक[6], बनक ताल-तानन की,
तनक-तनक तामें झनक[7] चुरीन[8] की ॥१०॥†

सवैया

को तप कै सुरराज भयौ, जमराज कौ बंधन कौन खुलायौ ?
मेरु मही में सही करि कैं, गथ[9] ढेर कुबेर कौ कौने तुलायौ ?
पाप न पुन्य, न नर्क न सर्ग[10], मरो सु मरो, फिरि कौन बुलायौ ?
झूठ ही बेद-पुरानन बाँचि, लबारन लोग भले कैं भुलायौ[11] ॥११॥
मूढ़ कहैं मरि कैं फिरि पाइए, ह्यां जु लुटाइए भौन भरे कौ ।

[1]जहां-तहां । [2]शब्द; स्वयंभूत शब्द, जिसे "सोऽहं" कहते हैं । [3]प्रयत्न करके । [4]भ्रमरों की । [5]नाचता है । [6]आवाज़ । [7]झनकार । [8](गोपियों की) चूड़ियों की । [9]धनसपति । [10]स्वर्ग । [11]भ्रम में डाल दिया ।

*इसमें अद्वैतवाद के अनुसार जीव-ब्रह्मैक्य का निरूपण किया गया है ।

†अध्यात्मदृष्टि से, इस कवित्त में, रास-विलास का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया गया है ।

सो खल खोय खिस्यात खरे, अवतार[1] सुन्यौ कहुँ छार परे कौ ॥
जीवत तौ ब्रत-भूख सुखौत[2], समीर महा सुर-रूख[3] हरे कौ।
ऐसे असाधु असाधुन की बुधि, साधन देत सराध[4] मरे कौ ॥१२॥
हैं उपजे रज-बीज[5] ही तें, बिनसेहूं सबै छिति छार[6] कै छांड़े।
एक-से देखु, कछू न बिसेखु, ज्यौं, एकै उन्हारि[7] कुँभार के भांड़े[8] ॥
तापर आपुन ऊँच ह्वै, औरन नीच कै पाय पुजावत चांड़े।
बेदन[9] मूँदि करी इन दूँदि[10], सु सूद अपावन, पावन, पांड़े[11] ॥१३॥*
साहेब अंध, सुसाहेब मूक, सभा बहिरी, रँग[12] रीझ कौ माच्यौ।
भूल्यौ तहां भटक्यौ भट औघट, बूड़िबे[13] का कोउ कर्म न बाच्यौ ॥
भेष न सूझ्यौ कह्यौ समुझ्यो न, बतायौ सुन्यौ न कहा रुचि राच्यौ।
'देव' तहां, निबरै नट की, बिगरी मति कौ सिगरी निसि नाच्यौ ॥१४॥†
हाय दई! यहिं काल के ख्याल[14] में, फूल-से फूलि सबै कुँभिलाने।
या जग बीच बचे नहिं मीच पै, जे उपजे ते मही में मिलाने ॥
देव-अदेव, बली-बलहीन, चले गये मोह की हौस हिलाने।
रूप-कुरूप, गुनी-निगुनी, जे जहां उपजे ते तहां हीं बिलाने ॥१५॥§
'देव' जिये जब पूछौ तो पीर को, पार कहूं लहि आवत नाहीं।

[1] अवतार...कौ—कहीं जले हुए मुरदे का भी पुनर्जन्म होता है? यह उक्ति चार्वाक के इस कथन से मिलती है कि "भस्मीभूतस्य देहस्य पुनर्जन्म न विद्यते।" [2] सुखा रहा है। [3] वृक्ष। [4] श्राद्ध। [5] स्त्री-पुरुष का संयोग। [6] भस्म होकर। [7] प्रकार। [8] मिट्टी के बर्तन। [9] बेदन मूँदि—वेदों का अंट-संट अर्थ लगा कर। [10] द्वंद; अंधेर। [11] ब्राह्मण। [12] रँग...माच्यौ—चापलूसी का बाज़ार गर्म है। [13] बूड़िबे...बाच्यौ—नरक जाने का कोई भी कर्म नहीं छूटा। [14] लीला।

*यह कवित्त कबीरदासजी के 'पांडे छूत कहांते आई' आदि पदों से मिलता है।

†कुपात्र अर्थात् अनधिकारियों के लिये देवजी की ज्ञान-चर्चा किस काम की? भैंस के आगे बीन बजावै, भैंस खड़ी पगुराइ?

§देव ने इस प्रकार 'जगद्दर्शन' किया है।

सो सब झूठ मते मत के बरु, मौन सोऊ सहि आवत नाहीं ॥
है नद-संग तरगंनि में मन फेन भयौ, गहि आवत नाहीं ।
चाहे कह्यौ बहुतेरो कछू, पै कहा कहिए, कहि आवत नाहीं ॥१६॥*
'देव' सबै सुखदायक संपति, संपति कौ सुख दंपति जोरी[1] ।
दंपति दीपति प्रेम-प्रतीति, प्रतीति की रीति सनेह-निचोरी ॥
प्रीति तहां गुन-रीति बिचार, बिचार की बानी सुधारस बोरी ।
बानी कौ सार बखान्यौ सिंगार, सिंगार कौ सार किसोर[2]-किसोरी ॥१७।

कवित्त

फटिक[3] सिलानि सों सुधार्‍यो सुधा[4]-मंदिर,
उदधि दधि कौ-सो अधिकाई उमँगै अमंद[5] ।
बाहेर तें भीतर लौं भीति[6] न दिखैए 'देव',
दूध कैसो फेनु फैलो आँगन फरस बंद ॥
तारा-सी तरुनि तामें ठाढ़ी झिलमिल होति,
मोतिन की जोति मिली मल्लिका कौ मकरंद ।
आरसी से अंबर में आभा-सी उज्यारी लागै,
प्यारी राधिका कौ प्रतिबिंब सो लगत चंद ॥१८॥†
पामरनि पामरे[7] परे हैं पुर पौरि लग,
धाम-धाम धूपनि कौ धूम धुनियतु[8] है ।

[1]जोड़ी । [2]श्रीकृष्ण और राधिका । देवजी ने किशोर-किशोरी अथवा नायक-नायिका को पुरुष और प्रकृति के रूप में माना है : 'माया देवी नायिका, नायक पूरुष आप । सबै दंपतिन में प्रगट, 'देव' करै तिहि जाप ।' (प्रेम-चंद्रिका) [3]स्फटिक; बिल्लौर पत्थर । [4]अमृत, इसका रंग सफ़ेद माना गया है । [5]धवल । [6]दीवार । [7]पाँवड़े । [8]छाया है ।

*जगत और ब्रह्म की अनिर्वचनीयता-संबंधी यह मूक भाव गुसाईं तुलसीदासजी के 'केसव कहि न जाइ का कहिये' आदि पद से मिलता है ।

†क्या इससे भी उत्तम कहीं ग्रीष्म रात्रि का दृश्य देखने में आयेगा?

अतर, अगर[1], चारु चोवारस, घनसार[2],
दीपक हजारन अंध्यार लुनियतु[3] हैं ॥
मधुर मृदंग, राग रंगन तरंगन में,
अंग-अंग गोपिन के गुन गुनियतु हैं ।
'देव' सुखसाज, महाराज ब्रजराज आज,
राधाजू के सदन सिधारे सुनियतु हैं ॥१९॥

सवैया

वा चकई कौ भयौ चित-चीतो[4], चितौत चहूंदिसि चाय[5] सों नाची ।
ह्वै गई छीन छपाकर[6] की छबि, जामिनि जोन्ह मनौं जम-जाँची[7] ॥
बोलत बैरी बिहंगम, 'देव' सु, बैरिन[8] के घर संपति साँची ।
लोहू पियौ जु बियोगिनी कौ, सु कियौ मुख लाल पिशाचिनि प्राची ॥२०॥*

कवित्त

गुरुजन-जावन[9] मिल्यौ न, भयौ दृढ़ दधि,
मथ्यौ न बिवेक-रई[10] 'देव' जो बनायगो ।
माखन-मुकुति कहां छाँड्यौ न भुगुति[11] जहां,
नेह बिनु सिगरो सवाद खेह[12] नायगो[13] ॥
बिलखत बच्यौ, मूल कच्यौ, सच्यौ लोभ-भाँड़े,
तच्यो[14] क्रोध-आँच, पच्यौ मदन सिरायगो[15] ।
पायौ न सिरावन[16] सलिल छिमा[17]-छीटेन सों,

[1]चंदन। [2]कपूर। [3]दूर करते हैं। [4]मन चाहा। [5]चाह, आनंद। [6]चंद्रमा। [7]नाश हो गई। [8]शत्रु; यहां सौत से आशय है। [9]जामन; कोई भी खट्टी-चीज़, जिससे दूध जमाया जाता है। [10]मँथानी। [11]भुक्ति, भोग-विलास। [12]धूल में। [13]पड़ गया। [14]जलाया गया। [15]बीत गया। [16]ठंडा करने वाला; शांत। [17]क्षमा।

* रक्ताभा का क्या ही प्रतिभापूर्ण वर्णन है! भारतेंदुजी ने अपने 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में इस सवैया को उद्धृत किया है।

दूध-सो जनम बिन जाने उफनायगो ॥२१॥*

एकै अभिलाख लाख-लाख भाँति लेखियति,
देखियत दूसरो न, देव, चराचर में ।
जासों मनु राँचै, तासों तनु-मनु राँचै[1],
रुचि भरिकै उघरि जाँचै, साँचै करि कर में ॥
पाँचन[2] के आगे आँच लगे ते न लौटि जाय,
साँच देइ प्यारे की सती-लौं बैठि सर[3] में ।
प्रेम सों कहत कोऊ, ठाकुर, न ऐंठौ सुनि,
बैठो[4] गड़ि गहरे, तो पैठो प्रेम-घर में ॥२२॥

जिन जान्यौ बेद, ते तौ बादि कै बिदित होहु,
जिन जान्यौ लोक, तेऊ लीक[5] पै लरि मरौ ।
जिन जान्यौ तप, तीनौ तापनि तें तपि-तपि,
पंचागिनि साधि ते समाधिन धरि मरौ ॥
जिन जान्यौ जोग, तेऊ जोगी जुग-जुग जियौ,
जिन जानी जोति, तेऊ जोति[6] लै जरि मरौ ।
हौं तौ, 'देव' नंद के कुँवर, तेरी चेरी भई,
मेरो उपहास क्यों न कोटिन करि मरौ ॥२३॥

सवैया

गाँठि हू तें गिरि जात गये, यह पैए न फेरि जुपै जग जोवै[7] ।
ठौर-ही-ठौर रहैं ठग ठाढ़ेई, पीर जिन्हैं न हँसै किन रोवै ॥
दीजिए ताहि जो आपन[8]-सो करै, 'देव' कलंकनि पंकनि धोवै ।

[1]मिल जाय, लगन लग जाय । [2]पंचभूतों के; पंचों के । [3]सरा; चिता । [4]बैठो... गहरे—बड़े-से-बड़े कष्ट सहने को तैयार हो जाओ । ख़बरदार ! 'यह प्रेम को पंथ करार महा, तरवार की धार पै धावनो है ।' [5]रीति, पद्धति । [6]आत्म-ज्योति, जो योग द्वारा दिखाई देती है । [7]देखे, तलाश करे । [8]अपने मन का ।

*बहुत ही सुंदर रूपक है ।

बुद्धि-बधू कों बनाय कैं सौंपु तूं, मानिक-सो मन धोखे न खोवै ॥२४॥

कवित्त

'देव' घनस्याम-रस बरस्यौ अखंड धार,
पूरन अपार प्रेम-पूर[1] न सहि पर्‌यौ ।
बिषै-बंधु बूड़े, मद-मोह-सुत दबे देखि,
अहंकार-मीत मरि, मुरझि[2] महि पर्‌यौ ॥
आसा, त्रिसना-सी, बहू-बेटी लै निकसि भाजी,
माया-मेहरी[3] पै देहरी पै न रहि पर्‌यौ ।
गयौ, नहिं हेरो, लयौ बन में बसेरो नेह,
नदी के किनारे मन मंदिर ढहि[4] पर्‌यौ ॥२५॥*

औचक[5] अगाध सिंधु स्याही कौ उमँगि आयौ,
तामें तीनों लोक बूड़ि गये एक संग में ।
कारे-कारे कागद लिखे ज्यों कारे आखर[6],
सु न्यारे करि बाँचै कौन, नाचै चित भंग में ॥
आँखिन में तिमिर, अमावस की रैनि अरु,
जंबूरस[7] बूँदि जमुना-जल-तरंग में ।
यों ही मन मेरो मेरे काम कौ न रह्यौ 'देव'
स्याम रंग ह्वै करि समान्यौ स्याम रंग में ॥२६॥†

सवैया

प्रेम-पयोधि परो गहिरे, अभिमान कौ फेन रह्यौ गहि, रे मन ।

[1]बाढ़। [2]मूर्च्छा खाकर। [3]दासी। [4]भर्रा कर गिर पड़ा। [5]अचानक। [6]अक्षर। [7]जामुन का काला रस।

*क्या फिर भी लोग नेह-नदी के किनारे अपना मन-मंदिर बनायेंगे ?

†पर बिहारी का मन श्याम-रंग में डूब जाने पर भी श्याम नहीं हुआ, वरन् और भी उज्वल हो गया : 'या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय । ज्यों-ज्यों डूबै स्याम-रँग, त्यों-त्यों उज्जल होय ॥'

कोप-तरंगनि सों बहि रे, पछिताय पुकारत क्यों, बहिरे[1] मन ।।
'देवजू' लाज-जहाज तें कूदि, रह्यौ मुख मूँदि, अजौं रहि[2], रे मन ।
जोरत, तोरत प्रीति तुहीं, अब तेरी अनीति तुहीं सहि, रे मन ।।२७।।

कवित्त

तेरो कह्यौ करि-करि, जीव रह्यौ जरि-जरि[3],
हारी पाँय परि-परि, तऊ तैं न की सँभार ।
ललन[4] बिलोकि, 'देव' पलन लगाये, तब
यौं कल[5] न दीनी तैं छलन उछलन[6] हार ।।
ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हौं बँधाई,
आपु बिधि बूड़्यौ माँझ बाधा-सिंधु निराधार ।
एरे मन मेरे, तैं घनेरे दुख दीन्हें, अब
ए कैबार[7] दैकैं तोहि मूँदि मारौं एकैबार[8] ।।२८।।
ऐसो जो हौं जानतो, कि जैहै तू बिषै के संग,
एरे मन मेरे, हाथ-पाँव तेरे तोरतो[9] ।
आजुलौं हौं कत[10] नरनाहन की नाहीं सुनि,
नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो[11] ।।
चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक-चितावनीन[12] मारि मुँह मोरतो[13] ।
भारी प्रेम-पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि,
राधावर-बिरुद[14] के बारिधि में बोरतो[15] ।।२९।

[1](१) अरे, बह जा (२) बहरा, न सुनने वाला । [2]ठहर जा । [3](सांसारिक त्रिविध ताप में) जल-जल कर । [4]प्यारा । [5]चैन । [6]चंचल । [7]किवाड़; पलक रूपी किवाड़ । [8]एक ही बार । [9]तोड़ डालता । [10]क्यों [11]ताकता फिरता । [12]उपदेश । [13]मोड़ देता, उधर न जाने देता । [14]यश । [15]डुबो देता । बस मनसाराम की इसी तरह अक़्ल ठिकाने लगेगी ।

सवैया

धार में धाय धँसी निरधार[१] ह्वै, जाय फँसी उकसी न अँधेरी ।
री ! अँगराय[२] गिरी गहिरी, गहि फेरे फिरी न घिरी नहिं घेरी ॥
'देव' कछू अपुनो बस ना, रस लालच लाल चितै भई चेरी ।
बेगिहीं बूड़ि गई पँखियां[३] अँखियां, मधु की मखियां भई मेरी ॥३०॥
कालिय काल महाबिष-ज्वाल, जहां जल ज्वाल जरै रजनी दिनु ।
ऊरध[४] के अध[५] के उबरे नहिं, जाकी बयारि[६] बहै तरु ज्यों बिनु ॥
ता फनि[७] की फन-फाँसिन में फँसि, जाय फँस्यौ, उकस्यौ[८] न अजौं छिनु ।
हा ब्रजनाथ ! सनाथ करौ, हम होती हैं नाथ अनाथ तुम्हैं बिनु ॥३१॥*
'देव' मैं सीस बसायौ सनेह[९] कै, भाल मृगम्मद[१०]-बिंदु कै राख्यौ ।
कंचुकी में चुपर्‌यौ करि चोवा[११], लगाय लियौ उर सों अभिलाख्यौ ॥
लै मखतूल गुहे गहने, रस मूरतिवंत सिंगार[१२] कै चाख्यौ ।
साँवरे लाल कौ साँवरे रूप मैं, नैननि कौ कजरा करि राख्यौ ॥३२॥
रैन भोई दिनु, इंदु दिनेस, जुन्हाई हैं घाम घनो बिषघाई ।
फूलनि सेज, सुगंध दुकूलनि, सूल उठै तनु, तूल[१३] ज्यों ताई[१४] ॥
बाहर भीतर भ्वै हरै ऊन, रह्यो परै 'देव' सु पूँछन आई ।
हौं ही भुलानी कि भूले सबै, कहैं ग्रीषम सों सरदागम[१५] माई ॥३३॥†

[१]निराधार । [२]उन्मत्त होकर, अँगड़ाई लेकर । [३]पंख । [४]ऊपर । [५]नीचे । [६]हवा, लपट । [७]साँप । [८]निकाला । [९]प्रेम, तैल । [१०]मृगमद, कस्तूरी । [११]कई सुगंधित वस्तुओं का लेप । [१२]श्रृंगार रस, जिसका रंग श्याम माना गया है । [१३]रुई । [१४]आग । [१५]शरद ऋतु का आरंभ ।

*कैसा स्वाभाविक और करुणोत्पादक सुंदर वर्णन है !

†बिहारी भी इसी प्रकार विरहिणी के मुख से भ्रम-भरी बात कहला रहे हैं : 'हौं ही बौरी बिरह-बस, कै बौरो सब गाम । कहा जानि ए कहत हैं, ससिहिं सीत कर नाम ॥'

कवित्त

बरुनी, बघंबर[1] में गूदरी पलक दोऊ,
कोए[2] राते[3] बसन भगोहैं[4] भेष रखियां ।
बूड़ी जल ही में, दिन जामिनि हूं जागैं, भौंहैं,
धूम सिर छायौ बिरहानल बिलखियां ॥
अँसुवा फटिक-माल, लाल[5] डोरी-सेल्ही[6] पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेलीं संग सखियां ।
दीजिए दरस 'देव' कीजिए सँजोगिनि, ए
जोगिनि ह्वै बैठी हैं बियोगिनि की अखियां ॥३४॥

कंत बिन बासर बसंत लागे अंतक[7] से,
तीर ऐसे त्रिबिध समीर लागे लहकन[8] ।
सान[9] धरे सार-से चंदन घनसार[10] लागे,
खेद लागे खरे, मृगमेद[11] लागे महकन ॥
फाँसी-से फुलेल लागे, गाँसी-से गुलाब अरु,
गाज[12] अरगजा लागे, चोवा लागे चहकन ।
अंग-अंग आगि ऐसे केसरि के नीर लागे,
चीर लागे जरन, अबीर लागे दहकन ॥३५॥

सवैया

सुनि कै धुनि चातक मोरन की, चहुँ ओरन कोकिल कूकनि सों ।
अनुराग भरे हरि बागन में, सखि, रागनि राग अचूकनि सों ॥
कवि 'देव' घटा उनई[13] जुनई, बन भूमि भई दल दूकनि सों ।

[1]बाघंबर; बाघ का चमड़ा, जिसे योगी आसन के काम में लाते हैं । [2]आँख के दोनों कोने । [3]लाल । [4]भँगवा रंग । [5]लाल डोरे जैसी रेखाओं का जाल । [6]योगियों का वस्त्र-विशेष । [7]काल; मृत्यु । [8]ज़ोर से चलने लगे । [9]सान...सार-से—खूब पैने भालों से । [10]कपूर । [11]कस्तूरी । [12]बिजली । [13]उठी; घिर आयी ।

रँगराती, हरी हहराती लता, झुकि जाती समीर के झूकनि[1] सों ॥३६॥

कवित्त

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिनि, कलंकिनि कुनारी हौं ।
कैसो नरलोक, परलोक वर लोकनि में,
लीन्हीं में अलीक[2], लोक-लीकनि ते न्यारी हौं ॥
तन जाउ, मन जाउ, 'देव' गुरु जन जाउ,
प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौं ।
बृंदावन वारी बनवारी की मुकुट वारी,
पीत पटवारी वहि मूरति पै वारी[3] हौं ॥३७॥

---

[1]झोंकों से । [2]अमर्यादा । [3]अपने को बलि या निछावर करती हूं ।

हरिश्चंद्र

छप्पय

बनिक - बंस - अवतंस, धैर्य - धीरज - वपुधारी ।
चौंसटकला - प्रबीन, प्रेम - मारग - प्रतिपारी ॥
बिद्या-बिनय बिसिष्ट, सिष्ट समुदाय सभा-जित ।
कविताकलकमनीय-कृष्णलीला जग प्लावित ॥
कई लच्छ बानी भगतमाल · उत्तरारध - करन ।
आदि - अंत सोभित भये, हरिश्चंद्र प्रातःस्मरन ॥

—गोस्वामी राधाचरण

अग्रवाल वैश्य राय बालकृष्ण का वंश भारतवर्ष के इतिहास में प्रख्यात है। इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचंद इसी वंश में हुए हैं। अमीचंद के फ़तहचंद, फ़तहचंद के हर्षचंद्र और हर्षचंद्र के पुत्र गोपालचंद्र थे। इनका उपनाम 'गिरिधरदास' था। बाबू हरिश्चंद्र इन्हीं के सुपुत्र थे। गिरिधरदासजी परम वैष्णव सदाचारी एवं सत्कवि थे। इन्होंने छोटे-बड़े सब चालीस ग्रंथ लिखे। इनकी कविता ब्रजभाषा में पुराने ढंग की होती थी। भक्ति और शृंगार के अतिरिक्त गिरिधरदासजी ने 'विदुरनीति' आदि नीति-विषय के कुछ ग्रंथ लिखे।

भाद्रपद-शुक्ला ७, संवत् १९०७ को काशीपुरी में हरिश्चंद्र का जन्म हुआ। ९ वर्ष की अल्पावस्था में ही इनके पिता इन्हें छोड़ गोलोक सिधार गये। बालक हरिश्चंद्र ने बचपन में ही अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय देकर पिता से यह कहला दिया था, कि 'हरिश्चंद्र! तू मेरे नाम को बढ़ायेगा।' सबसे पहले हरिश्चंद्रजी ने यह दोहा बना कर अपने पिताजी को सुनाया था :

लै ब्यौंड़ा ठाड़े भये, श्रीअनिरुद्ध सुजान ।
बानासुर की सेन कों, हनन लगे भगवान ॥

पिता के स्वर्गस्थ हो जाने पर यह स्वतंत्र विचार के हो गये। पढ़ने के लिए कालिज भेजे गये, पर वहां इनका जी न लगा। कुछ दिनों राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद से अँग्रेज़ी पढ़ी और इसी नाते उन्हें गुरु मानने लगे। पहले तो गुरु-चेला की ख़ूब बनी, पर पीछे अनबन हो गयी। राजा साहब 'दक़ियानूसी' थे, तो बाबू साहब 'उदार'। अंत तक यह मत-विरोध बढ़ता ही गया और बाबू साहब ने अपनी प्रखर प्रतिभा के द्वारा राजा साहब को जनता की दृष्टि में नीचे गिरा दिया।

बाबू साहब का प्रेम हिंदी के प्रति बचपन से ही था। यह रुचि दिनों-दिन बढ़ने लगी। और सन् १८६८ में यह मातृभाषा-प्रेम 'कवि वचन-सुधा' मासिक पत्र के रूप में साकार दिखाई देने लगा। इसमें चंद्र, देव, जायसी, कबीर आदि कवियों की कविता क्रमशः प्रकाशित होने लगी बाद को गद्यात्मक लेख भी निकलने लगे। यह पत्र मासिक से पाक्षिक, और फिर साप्ताहिक हो गया। अब इसमें राजनीतिक, सामाजिक आदि विषयों का भी समावेश हो गया। 'कवि वचन-सुधा' का सिद्धांत-वाक्य यह था :

खल जनन सों सज्जन दुखी मति होहिं, हरिपद मति रहै ।
अपधर्म छूटैं, स्वत्व निज भारत गहै, कर-दुख बहै ॥
बुध तजहिं मत्सर; नारि नर सम होहिं, जग आनँद लहैं ।
तजि ग्राम्य-कविता, सुकवि जन की अमृतबानी सब कहैं ॥

अच्छे-अच्छे लेखक इसमें लेख दिया करते थे, जिनमें पं० राधाचरण गोस्वामी, लाला श्रीनिवासदास, पं० बिहारीलाल चौबे, बाबू तोताराम वर्मा, पं० दामोदर शास्त्री आदि लेखक उल्लेखनीय हैं। यह पत्र बाबू हरिश्चंद्रजी के अंत समय तक अर्थात् सं० १९४२ तक, बराबर जारी रहा। सन् १८७४ में 'बाल-बोधिनी' पत्रिका निकली। बाबू साहब ने हिंदी को इस समय ऐसा सुंदर रूप दे दिया था, कि जैसा कुछ चाहिए।

आपका संपादन भी अपूर्व था। पत्रिकाओं के साथ ही आप की मनोवृत्ति नाटकों की ओर झुकी। सच पूछिए, तो हिंदी-नाटकों के आप ही जन्म-दाता हैं। कर्पूरमंजरी, सत्य हरिश्चंद्र और चंद्रावली नाटक इसी समय रचे गये। ये नाटक हिंदी-साहित्य के अनमोल रत्न हैं।

रसिक हरिश्चंद्र ने विद्वानों, कवियों, मित्रों और अनाथों का बड़ा ही उपकार किया। इतनी बड़ी संपत्ति, अपनी उदारता के कारण, थोड़े ही दिनों में पानी की तरह बहा दी। हरिश्चंद्र ने सभी भोग भोगे, अनेक दान किये, मान-सत्कार किये और जो धन से किया जा सकता है, सब किया। किसी वस्तु के देते समय उन्हें संकोच या दुःख नहीं हुआ। अंत तक अपने वचन निबाहे।

दृढ़ता और सत्यता के तो आप साक्षात् रूप ही थे। निस्पृह ऐसे कि अपने हिस्से की समस्त संपत्ति दान कर दी। अंत में फक्कड़- से हो गये, या बादशाहों के भी बादशाह हो गये। धन्य !

जो गुन नृप हरिचंद में, जग हित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचंद में, लखहु प्रतच्छ सुजान॥

बाबू हरिश्चंद्र वल्लभकुल के अनन्य वैष्णव थे। आपका यह पद प्रसिद्ध है।

हम तो मोल लिये या घर के।
दास-दास श्रीबल्लभ-कुल के, चाकर राधवर के॥
माता श्रीराधिका, पिता हरि, बंधु दास गुनकर के।
'हरीचंद' तुम्हरे ही कहावत, नहिं बिधि के, नहि हर के॥

यह सब होते हुए भी आप अन्य संप्रदायों को द्वेष-दृष्टि से नहीं देखते थे। आप कोरे पुरानी लकीर के फ़क़ीर नहीं थे। आपने वर्तमान प्रचलित कुरीतियों का प्रबल युक्तियों से खंडन किया। वर्ण-व्यवस्था मानते हुए भी आप छुआछूत के विषय में लिखते हैं :

अपरस सोला छूत रचि, भोजन-प्रीति छुड़ाय।
किये तीन-तेरह सबै, चौका चौका लाय॥

यह सत्य को ही धर्म का सच्चा रूप मानते थे। इन्होंने अपनी आचरण संबंधी बुरी-से-बुरी बात भी कभी नहीं छिपाई। एक स्थल पर कहते हैं :

जगत-जाल में नित बँध्यौ, पर्‌यौ नारि के फंद।
मिथ्या अभिमानी, पतित, झूँठो 'कवि हरिचंद' ॥

समाज-सुधार पर आपने कई पुस्तकें लिखीं। 'प्रेम-योगिनी'; 'अँग्रेज़-स्तोत्र'; 'जैन-कुतूहल'; 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' आदि पुस्तकों में सामाजिक कुरीतियों का ख़ूब ही भंडाफोड़ किया। लोग इनके स्वतंत्र विचारों पर चिढ़ से गये और कहने लगे—'दो-चार कवित्त बनाय लिहिन-बस होय गवा बबुआ बिधाता!' पर यह आलोचकों की वाक्य-वाणावली की रत्ती भर भी परवाह नहीं करते थे। यह इनकी दृढ़ता ही थी, कि अनेक विघ्न-बाधाएं आने पर भी यह कभी अपने सिद्धांतों से विचलित नहीं हुए।

बाबू हरिश्चंद्र ने लोकोपकार-संबंधी कई प्रशंसनीय कार्य किये। सन् १८६८ में काशी में "होमियोपैथिक दातव्य-चिकित्सालय" अनाथों के लिए स्थापित कराया। संवत् १९२७ में, "कविता-वर्द्धिनी" सभा को जन्म दिया। इस सभा में कई नवीन कवि उत्पन्न हुए। उर्दू कवियों के लिए आपने सन् १८६६ में, मुशाइरा स्थापित किया, जिसमें सबके साथ आप भी उर्दू में समस्या-पूर्ति करते थे। उर्दू-कविता में आपका उपनाम 'रसा' था।

संवत् १९३० में, इन्होंने "तदीय-समाज" की स्थापना की। इसके ९ नियम थे। इसके सभासद् भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध धार्मिक पुरुषरत्न थे। इस सभा में बिना टिकट के कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता था। टिकट पर यह दोहा अंकित रहता था—

श्रीव्रजराज समाज को, तुम सुंदर सिरताज।
दीजै टिकट निवाज करि, नाथ हाथ हित-काज ॥

इसी समाज में आपने 'वीर वैष्णव' की पदवी धारण की थी।

इसमें आपने वैष्णव-धर्मानुसार १६ प्रतिज्ञाएं की थीं, जिनका आमरण पालन किया।

यह तो हम कह ही चुके हैं, कि यह गुणियों का अत्यंत आदर करते थे। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी को केवल एक दोहे पर १००) दे दिये थे। वह दोहा यह है :

राजघाट पर बँधत पुल, जहँ कुलीन कौ ढेर।
आज गये कल देखिकैं, आजहिं लौटे फेर॥

निर्धन हो जाने पर भी इनकी दान-वीरता में कमी नहीं हुई। स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजी ने लिखा है, कि आश्चर्य तो यह है, कि न तो मरने के समय बाबू हरिश्चंद्र अपने पास कुछ छोड़ मरे और न कुछ उचित ऋण देने बिना बाक़ी रह गया।

बाबू हरिश्चंद्र को लिखने का बड़ा व्यसन था। डाक्टर राजेंद्रलाल मित्र ने इनका लेखन-चमत्कार देख कर इन्हें 'राइटिंग मैशीन' (लेखन-यंत्र) की उपाधि दे रखी थी। कविता शक्ति भी विलक्षण थी। बात-की-बात में समस्यापूर्ति कर दिया करते थे। महाराणा उदयपुर के दर्बार में, बैठे-बैठे यह समस्या-पूर्त्ति वहीं तुरंत कर दी थी :

राधा-स्याम सेवें, सदा बृंदाबन-बास करैं,
रहैं निहचिंत पद आस गुरुवर के।
चाहैं धन-धाम, न आराम सों है काम,'हरिचंद जू'
भरोसे रहैं नंदराय घर के॥
एरे नीच धनी! हमें तेज तू दिखावै कहा,
गज परवाहा नाहिं होयँ कवौं खर के।
होइ लै रसाल! तू भलेई जग-जीव-काज,
आसी ना तिहारे ये निवासी कल्पतरु के॥

इसी प्रकार इन्होंने कई बार आन-की-आन में समस्यापूर्त्ति की थी। 'अंधेर-नगरी' एक ही दिन में लिखी गयी थी। इनके सभी छंद सरस होते थे, पर सवैया तो बेजोड़ होता था। इन्होंने छोटे-बड़े कुल मिला कर

१७५ ग्रंथ लिखे, जिनमें बहुत से संग्रहीत और संपादित भी हैं। नाटक, इतिहास, भक्तिरस, चरितावली और काव्यामृत-प्रवाह आदि पाँच भागों में ये सब ग्रंथ विभक्त हैं। नाटकों में 'सत्य हरिश्चंद्र' और 'चंद्रावली'; धर्मसंबंधी ग्रंथों में 'तदीयसर्वस्व'; काव्य में 'प्रेम-फुलवारी'; ऐतिहासिक में 'काश्मीर-कुसुम' और देश-दशा में 'भारत-दुर्दशा' बड़े ही उत्कृष्ट ग्रंथ हैं। संग्रहीत ग्रंथों में 'सुंदरी-तिलक' अपूर्व है। कविता की भाषा यह ब्रजभाषा मानते थे। इन्होंने खड़ी बोली में भी कुछ कविता लिखी थीं, पर उसमें सफल नहीं हुए और सिद्धांतरूप से लिख दिया कि खड़ी बोली में मधुर कविता हो ही नहीं सकती। हिंदी के अतिरिक्त यह संस्कृत और उर्दू, मारवाड़ी, गुजराती, बंगला, पंजाबी, मराठी, बनारसी आदि प्रांतीय भाषाओं में भी कविता कर लिया करते थे। आपकी असीम और अप्रतिम हिंदी-साहित्य-सेवा देख कर देश ने आपको 'भारतेंदु' की पदवी से सन् १८८० में विभूषित कर दिया।

बाबू हरिश्चंद्र ने अपनी अनुपम प्रतिभा के द्वारा काव्य में चार और नवीन रस माने—वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनंद। तर्करत्न महोदय ने भी एक स्थल पर इन रसों को प्रमाण-स्वरूप मान कर लिखा है: 'हरिश्चन्द्रास्तु वात्सल्यसख्यभक्त्यानंदाख्याधिकं रसचतुष्टयं मन्यते।'

यह तो हम कह ही चुके हैं, कि यह साक्षात् 'प्रेममूर्ति' थे। प्रेम इनका इष्ट देव था। वियोग-शृंगार पर इनकी रचनाएं अनूठी हैं। 'चंद्रावली' नाटिका इनके आंतरिक सिद्धांतों की प्रतिमूर्ति है। वास्तव में, यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है।

एक स्थान पर इन्होंने प्रेमियों की उन्मत्तता का चित्र नीचे के सवैया में क्या ही सुंदर खीच दिया है:

हम हूं सब जानतीं लोक की चालनि, क्यों इतनी बतरावती हौ ?
हित जामें हमारो बनै सो करौ, सखियां तुम मेरी कहावती हौ ॥
'हरिचंद जू' यामें न लाभ कछू, हमें बातनि क्यों बहरावती हौ ?

सजनी, मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन कों का समुझावती हौ ?

अंतर की पीर अंतर ही जानता है, मर्मवाले संसार में विरले ही हैं, इसे लक्ष्य में रख कर भारतेंदु जी एक क्या ही मार्के का पद लिख गये हैं :

मन की कासों पीर सुनाऊं ?
बकनो वृथा और पत खोनी, सबै चबाई गाऊं ॥
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै, धरिहै उलटो नाऊं ।
यह तौ जो जानै सोइ जानै, क्योंकरि प्रगट जनाऊं ॥
रोम-रोम प्रति नैन स्रवन मन, केहिँ धुनि रूप लखाऊं ।
बिना सुजान-सिरोमनि री, किहिँ, हियरो काढ़ि दिखाऊ ॥
मरमिन सखिन बियोग दुखिन क्यों, कहि निज दसा रोआऊं ।
'हरीचद' पिय मिलैं तो पग परि, गहि पटुका समझाऊं ॥

बस, अब कुछ नहीं लिखा जा सकता । हरिश्चंद्र ने अपना कलेजा निकाल कर सामने रख दिया है । जो आँख वाले हों, वह देख लें कि 'चंद्रावली' में हरिश्चंद्र क्या लिख गये हैं ।

भक्ति-सुधा-सागर में डूब जाने पर भी इन्होंने समाज-सुधार, देशभक्ति आदि विषयों पर उत्तमोत्तम रचनाएं की हैं । 'भारत-दुर्दशा' नाटक करुणा की साक्षात् मूर्ति ही है । उसे पढ़ कर कलेजा काँप उठता है, आँसुओं की झड़ी लग जाती है । इसका कारण यह है कि भारत-भारती ने वैसा मर्मस्पर्शी हृदय वाला राष्ट्रभाषा-भक्त पुत्र फिर नहीं जना ।

प्रेमघनजी की 'आनंदकादंबिनी'; प्रतापनारायण का 'ब्राह्मण'; बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप'; राधाचरण गोस्वामी का 'भारतेंदु'; आदि पत्र-पत्रिकाओं ने जो अपने खूनेजिगर से राष्ट्रभाषा हिंदी की सेवा की, उस सबका श्रेय भारतेंदु जी को ही है ।

लाला श्रीनिवासदास आपकी प्रेरणा से हिंदी लिखने लगे । पं० राधाचरण गोस्वामी ने आपको कविता में अपना उस्ताद मान लिया । पं० प्रतापनारायण मिश्र तो आप पर ऐसे लट्टू हो गये कि कुछ पूछिए

जय बृंदाबनचंद्र, चंद्रबदनी-मनरंजन ॥
जय गोपति[1], गोपति, गोपपति, गोपीपति, गोकुल-सरन ।
जय कष्ट-हरन, करुनाभरन[2], जय श्रीगोबर्धन-धरन ॥११॥*

प्रेम-फुलबारी

अहो हरि, बस अब बहुत भई ।
अपनी दिसि बिलोकि करुनानिधि, कीजै नाहिं नई[3] ॥
जो हमरे दोषन कों देखौ, तौ न निबाह हमारो ।
करि कैं सुरत अजामिल, गज की हमरे करम[4] बिसारौ ॥
अब नहिं सही जाति कोऊ बिधि, धीर सकत नहिं धारी ।
'हरीचंद' कों बेगि धाइकैं, भुज भरि लेहु उबारी ॥१२॥

पियारे, याकौ नाँव नियाव[5] ?
जो तोहिं भजै ताहि नहिं भजनो, कीनो भलो बनाव ॥
बिनु कछु कियें जानि अपुनो जन, दूनो दुख तेहिं देनो ।
भली नई यह रीति चलाई, उलटो अवगुण लेनो ॥
'हरीचंद' यह भलो निबेर्यो[6], ह्वै कें अंतरजामी ।
चोरनि[7] छाँड़ि-छाँड़िकै, डाँटौ उलटो धन[8] कौ स्वामी ॥१३॥

प्यारे, अब तौ सही न जात ।
कहा करैं कछु बनि नहिं आवत, निसिदिन जिय पछितात ॥
जैसें छोटे पिंजरा में कोउ, पछी परि तड़िपात ।
त्यौंही प्रान परे यह मेरे, छूटन को अकुलात ॥

[1](१) गौओं के स्वामी (२) इंद्रियों के स्वामी, हृषीकेश । [2]करुना ही जिनका भूषण है, अत्यंत करुणाशील । [3]बात यह कि, शरणागत को, बिना भक्ति-दान दिये, सामने से हटा देना । [4]पाप-कर्म । [5]न्याय इंसाफ़ । [6]निर्णय किया । [7]यहां, चोरों से तात्पर्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि से है । [8]धन...स्वामी—इंद्रियों और मन का स्वामी, जीवात्मा ।

*यह छप्पय 'श्रीनाथ-स्तुति' से लिया गया है ।

कछु न उपाव चलत अति व्याकुल, मुरि[1]-मुरि पछरा खात ।
'हरीचंद' खींचौ[2] अब कोउ बिधि, छाँड़ि पाँच[3] औ सात ॥१४॥

भरोसो रीझन हीं लखि भारी ।
हमहूं कों बिस्वास होत है, मोहन 'पतित-उधारी' ॥
जो ऐसो सुभाव नहिं होतो, क्यों अहीर-कुल भायौ[4] ।
तजिकैं कौस्तुभ[5]-सो मनि गर क्यों, गुंजा हार धरायौ ॥
कीट-मुकुट सिर छाँड़ि पखौआ[6] मोरन कौ क्यों धार्‌यौ ।
फेंट कसी टेंटिन[7] पै, मेवन कौ क्यों स्वाद बिसार्‌यौ ॥
ऐसी उलटी रीझि देखिकैं, उपजति है जिय आस ।
जग-निंदित 'हरिचंदहुँ' कों, अपनावहिंगे करि दास ॥१५॥

सँभारहु[8] अपने कों गिरिधारी ।
मोर-मुकुट सिर-पाग पेंच कसि, राखहु अलक सँवारी ॥
हिय हलकति[9] बनमाल उठावहु, मुरली धरहु उतारी ।
चक्रादिकन सान दै राखौ, कंकन-फँसन निवारी[10] ॥
नूपुर लेहु चढ़ाइ किंकनी, खींचहु करहु तयारी ।
पियरो पट परिकर कटि कसिकैं, बाँधौ हो बनवारी ॥
हम नाहीं उनमें जिनकों तुम, सहजहिं दीनों तारी ।
बानो जुगवौ[11] नीकैं अब की, 'हरीचंद' की बारी ॥१६॥*

प्राननाथ, तुमसों मिलिबे की कहु-कहु जुगति न कीनीं ।

[1]मुड़-मुड़ कर, ऐंठ-ऐंठ कर पछाड़ खाते हैं । [2]अपने समीप बुला लो । [3]मीन-मेख; संकल्प-विकल्प । [4]पसंद आया । [5]एक मणि, जिसे विष्णु भगवान् सदा वक्षस्थल पर धारण किये रहते हैं । यह मणि शंखासुर से प्राप्त हुआ था । [6]पंख । [7]करील का कड़ुवा फल । यह ब्रजप्रांत में बहुत कसरत से होता है । [8]होशियार हो जाओ । [9]लटकती हुई । [10]हटा कर, उतार कर । [11]देखो, याद करो ।

*इस पद में माधुर्य और ओज दोनों ही पर्याप्त मात्रा में हैं ।

पचिहारी[1] कछु काम न आई, उलटि सबै बिधि दीनीं ॥
हेरि चुकी बहु दूतिन कौ मुख, थाह सबनि की लीनीं ।
तब अब सोच बिचारि निकारी, जुगति अचूक नवीनीं ॥
तन परिहरि, मन दै तुव पद में, लोक-त्रिगुनता छीनीं ।
'हरीचंद' निधरक बिहरौंगी, अधर-सुधारस-भीनीं[2] ॥१७॥

पियारे, क्यों तुम आवत याद ?
छूटत सकल काज जग के, सब मिटत भोग के स्वाद ॥
जबलौं तुम्हरी याद रहै नहिं, तबलौं हम सब लायक ।
तुम्हरी याद होतहीं चित में, चुभत लगन के सायक ॥
तुम जग के सब कामन के अरि, हम यह निहचै[3] जानैं ।
'हरीचंद' तौ क्यों[4] सब तुम्हरे प्रेमहिं जग में सानैं ॥१८॥

रहैं क्यों एक म्यान असि[5] दोय ।
जिन नैनन में हरि-रस छायौ, तिहिं क्यों भावै कोय ॥
जा तन-मन में रमि रहे मोहन, तहां ग्यान[6] क्यों आवै ।
चाहौ जितनी बात प्रबोधौ, ह्यां को, जो पतियावै ॥
अमृत खाइ अब देखि इनारुन[7], को मूरख जो भूलै ।
'हरीचंद' ब्रज[8] कौ कदली-बन, काटौ तौ फिरि फूलै ॥१९॥

फेरहूं मिलि जैयो इक बार ।
इन प्राननि कौ नाहिं भरोसो, ये हैं, चलन-तयार ॥

[1]श्रम करके थक गई। [2]छकी हुई। [3]निश्चयपूर्वक। [4]क्यों...सानें— समझ में नहीं आता, लोग परमार्थ और व्यवहार को क्यों एक साथ सान रहे हैं। कहीं एक म्यान में दो तलवारें रह सकती हैं? [5]तलवार। [6]नीरस तार्किक ज्ञानवाद। [7]इंद्रायण का फल, जो बहुत ही कड़ुवा होता है। [8]ब्रज...फूलै— जैसे केले का पेड़, चाहे जितने बार काटते जाओ, बार-बार फूलता-फलता रहता है, वैसे ही हे उद्धव, तुम चाहे जितनी बार ज्ञान-रूपी खड्ग से प्रेम को काटो, वह बराबर अंकुरित और प्रफुल्लित होता रहेगा।

जो प्रतच्छ इत आइ न बिहरौ, प्यारे नंदकुमार ।
तौ दूरहि सों बदन दिखावौ, करौं लाल मनुहार[1] ॥
नहिं रहि जाइ चाति जिय मेरे, यह निज चित्त बिचार ॥
'हरीचंद' न्यौतेहुँ[2], के मिस, ब्रज आवौ बिना अचार[3] ॥२०॥

भई सखि, ये अँखियां बिगरैल ।
बिगरि परीं, मानति नहिं, देखें बिना साँवरो छैल ॥
भई मतवारि, धरति पग डगमग, नहिं सूझति कुल-गैल[4] ।
तजिकैं लाज, साज गुरुजन की, हरि की भईं रखैल[5] ॥
निज चबाव सुनि औरहुँ हरखति, करति न कछु मन मैल[6] ।
'हरीचंद' सब संग छाँड़िकैं, करहिं रूप की सैल[7] ॥२१॥

पुरानी परी लाल, पहिचान ।
अब हमको काहे कों चीन्हौ, प्यारे भये सयान[8] ॥
नई प्रीति, नये चाहनवारे, तुमहू नये सुजान ।
'हरीचंद' पै जायँ कहां हम, लालन[9], करहु बखान ॥२२॥

सखी, ये अति उरझौहैं[10] नैन ।
उरझि परत सुरझ्यौ नहिं जानत, सोचत-समुझत है न ॥
कोऊ नहिं बरजै, जो इनको, बने मत्त जिमि गैन[11] ।
'हरीचंद' इन बैरिन पाछैं, भये लैन[12]-के-दैन ॥२३॥

मरम[13] की पीर न जानै कोय ।
कासों कहौं, कौन पुनि मानै, बैठि रहीं घर रोय ॥
कोऊ जरनि[14] न जाननिवारो, बे[15]-महरम सब लोय[16] ।
अपुनी कहत, सुनत नहिं मेरी, केहि समझाऊं सोय ॥

[1] नम्रतापूर्वक विनय। [2] निमंत्रण होने के। [3] डर। [4] वंश-मर्यादा। [5] खरीदी हुई; गुलाम। [6] उदास। [7] सैर। [8] अवस्था में बड़े, प्रौढ़ चतुर। [9] प्यारे। [10] लगन रूपी जाल में उलझ जाने वाले। [11] गयंद, हाथी। [12] लेने का देना, आफ़त। [13] अंतर, हृदय। [14] जलन; प्रेम की आग। [15] भेद न जानने वाले। [16] लोग।

लोक-लाज, कुल की मरजादा, बैठि रही सब खोय ।
'हरीचंद' ऐसेहिं निबहैगी, होनी होय सो होय ॥२४॥*

रहे यह देखन कों दृग दोय ।
गये न प्रान अबौ अँखियां ये जीवति निरलज हाय ॥
सोई कुंज हरे-हरे देखियत, सोई सुक, पिक, कीर ।
सोई सेज परी सूनी है, बिना मिले बल-बीर ॥
वही झरोखा, वही अटारी, वही गली, वही साँझ ।
वहै नाहिं जो बेनु बजावत, ऐहै गलियन माँझ ॥
ब्रज हूं वही, गौएं हैं, वही गोप अरु ग्वाल ।
बिडरे[1] सब अनाथ-से डोलत, ब्याकुल बिना गुपाल ॥
नंद-भवन सूनो देखत, क्यों गयौ नहीं हिय फाट ।
'हरीचंद' उठि बेगहिं आवौ, फेरहु ब्रज की बाट[2] ॥२५॥

बिहरिहैं जग[3] सिर पै दै पाँव ।
एक तुम्हारे है पियप्यारे, छाँड़ि और सब गाँव[4] ॥
निंदा करौ, बताओ बिगरी, धरौ[5] सबै मिलि नाँव ।
'हरीचंद' नहि कबहूं चूकिहैं, हम यह अबकौ दाँव[6] ॥२६॥‡

न जानों, गोविंद कासों रीझै ।
जपसों-तपसों, ग्यान-ध्यान सों, कासों रिसिकर खीजै ॥
बेद-पुरान भेद नहिं पायौ, कह्यौ आन[7]-की-आन ।
कह जप-तप कीनों गनिका ने, गीध कियौ कह दान ॥

[1]तीन-तेरह, तितर-बितर । [2]मार्ग । [3]जग...पाँव—संसारी दुष्टों को नीचा दिखा कर । [4]स्थान, लोक । [5]धरौ...नाँव—बदनाम करो । [6]सुअवसर । [7]कुछ-का-कुछ, परस्पर-विरोधी सिद्धांतों का प्रतिपादन ।

*यह पद भावोत्कृष्टता और तन्मयता का एक बढ़िया उदाहरण है ।

‡हरिश्चंद्र, तुम्हें सभी जा है, क्योंकि : 'करि गुलाब सों आचमन, लीजत जाको नाम ।'

नेमी ग्यानी दूर होत हैं, नहिं पावत कहुँ ठाम ।
ढीठ लोक-बेदहुँ तें निंदित, धुसि-धुसि करत कलाम ॥
कहुँ उलटी, कहुँ सीधी चालैं, कहुँ दोउन तें न्यारी ।
'हरीचंद' काहू नहिं जान्यौ, मन[1] की रीति निकारी ॥२७॥

लाल के रंग रँगी तू प्यारी ।
याही तें तन धारत मिस कै, सदा कसूँभी[2] सारी ॥
लाल अधर, कर पद सब तेरे, लाल तिलक सिर धारी ।
नैननहूं में डोरन के मिस झलकत लालबिहारी ॥
तन में रही नहीं सुधि तनकौ[3], नख-सिख तू गिरधारी ।
'हरीचंद' जग-बिदित भई यह, प्रेम-प्रतीत तिहारी ॥२८॥*

टरौ इन अँखियनि सों अब नाहिँ ।
निवसौ सदा सोहागिन राधा, पुतरी-सी दृग माहिँ ॥
नील निचोल,[4] तरकुली[5] कानिनि, सिर सिँदूर मुख पान ।
काजर नैन, सहजही भोरी,[6] मन-मोहिनि मुसकान ॥
सदा राज राजौ बृंदाबन, सुबस[7] बसौ ब्रज-देस ।
बरसौ प्रेम-अमृत प्रेमिन पै, नितहिं स्यामघन-भेस ॥
देखि यहै अब दूजो देखन, परै न जबलौं प्रान ।
'हरीचंद' निबहौ स्वासा[8] लगि, यहै प्रेम की बान ॥२९॥

राधे, तुव सुहाग की छाया, जग में भयौ सुहाग ।
तेरो ही अनुराग-छटा हरि, सृष्टि करन अनुराग ॥
सत चित तुव कृत सों बिलगाने,[9] लीला प्रिय जन भाग ।
पुनि 'हरिचंद' अनंद होत लहि, तुव पद-पदुम-पराग॥३०॥

[1]मन...निकारी—मनमानी घरजानी करने लगे—'परम स्वतंत्र न सिर पैकोई । भावै तुमहि करो जो-सोई ॥' [2]लाल रंग। [3]ज़रा भी। [4]वस्त्र। [5]तरौना। [6]भोली-भाली। [7]सुखपूर्वक। [8]प्राण रहते। [9]पृथक रूप हो गये : यथा, 'एकोऽहं बहुस्यामि'।

*क्या ही सुंदर भावपूर्ण पद है !

प्रीति की रीति हीं अति न्यारी[1] ।
लोक-बेद सब सों कछु उलटी,[2] केवल प्रेमिन प्यारी ॥
का जानै, समुझै को याको, बिरलो जाननहारी ।
'हरीचंद' अनुभव हीं लखिए, जामें गिरवरधारी ॥३१॥

रे मन, करु नित-नित यह ध्यान ।
सुंदर रूप गौर स्यामल छबि, जो नहिं होति बखान ॥
मुकुट सीस चंद्रिका बनी, कनफूल[3] सुकुंडल कान ।
कटि काछिनि सारी पग नूपुर, बिछिया अनवट[4] पान ॥
कर कंकन, चूरी दोउ भुज पै, बाजू सोभा देत ।
केसर खौर, बिंदु सेंदुर को देखत मन हरि लेत ॥
मुख पै अलक, पीठ पै बेनी, नागिनि-सी लहरात ।
चटकीले पट निपट मनोहर, नील-पीत फहरात ॥
मधुर-मधुर अधरन बंसी धुनि, तैसीहीं मुसकानि ।
दोउ नैनन रसभीनी चितवनि, परम दया की खानि ॥
ऐसो अद्भुत भेष बिलोकत, चकित होत सब आय ।
'हरीचंद' बिनु जुगुल कृपा यह, लख्यौ कौन पैं जाय ॥३२॥

प्रेम-प्रलाप

नखरा राह[5]-राह को नीको ।
इत तौ प्रान जात हैं तुम बिनु, तुम न लखत दुख जीको ॥
धावहु बेगि नाथ करुना करि, करहु मान मनि फीको ।
'हरीचंद' अठलानिपने[6] को, दियौ तुमहिं बिधि टीको ॥३३॥*

नाथ, तुम अपनी ओर निहारौ ।
हमरी ओर न देखहु प्यारे, निज गुन-गननि बिचारौ ॥

[1]निराली । [2]अलग हो । [3]कानों में पहनने का पुष्पाकृति आभूषण । [4]अनौटा, पैरों में पहनने का आभूषण । [5]जहां तक उचित हो । [6]घमंड, गुमान ।

* वाह ! व्यंग्य हो तो ऐसा !

जो लखते अबलौं जन-औगुन, अपने गुन बिसराई ।
तौ तरते किमि अजामेल-से पापी, देहु बताई ॥
अबलौं तौ कबहूँ नहिं देखे, जन के औगुन प्यारे ।
तौ अब नाथ, नई[1] क्यों ठानत, भाखेहु बार हमारे ॥
तुव गुन छिमा दया सों, मेरे, अघ नहिं बड़े कन्हाई ।
तासों तारि देहु नँदनंदन, 'हरीचंद' को धाई ॥३४॥

अहो ! इन झूठन मोहिं भुलायो ।
कबहुँ जगत के कबहुँ स्वर्ग के, स्वादनि मोहिं ललचायो ॥
भले होइ किन लोह हेम की, पुन्य-पाप दोउ बेरी ।
लोभमूल परमारथ स्वारथ नामहि में कछु फेरी ॥
इनमें भूलि कृपानिधि तुम्हरे चरन-कमल बिसराये ।
तुम बिनु भटकत फिर्‌यौ जगत नाहक जनम गँवाये ॥
हाय-हाय करि मोह छाँड़ि कैं, कबहुँ न धीरज धार्‌यौ ।
या जग जगती जोर अगिनि में, आयुसु-दिन सब जार्‌यौ ॥
करहु कृपा करुनानिधि केसव, जग को जाल छुड़ाई ।
दीन-हीन 'हरिचंद' दास को बेगि लेहु अपनाई ॥३५॥

हमहू कबहू सुख सों रहते ।
छाँड़ि जाल सब, निसिदिन मुख सों केवल कृष्णहिं कहते ॥
सदा मगन लीला-अनुभव में, दृग दोउ अविचल बहते ।
'हरीचंद' घनस्याम-बिरह इक, जग-दुख तृन-सम दहते ॥३६॥

करुनाकर करुना करि, बेगहिं सुधि लीजिए ।
सहि न सकत जगत-दाव[2] तुरत दया कीजिए ॥
हमरे अवगुनहिं नाथ, सपनेहुँ जिनि देखौ ।
अपुनी दिसि प्राणनाथ, प्यारे, अवरेखौ ॥
हम तौ सब भाँति हीन, कुटिल क्रूर कामी ।

[1] नई...ठानत—नई रीति क्यों निकाल रहे हो ? [2] दावानल ।

करत रहत धनजन[1] के चरन की गुलामी ॥
महा-पाप-पुष्ट दुष्ट धरमहिं नहिं जाने ।
साधन नहिं करत, एक तुमहिं सरन[2] माने ॥
जैसे हैं तैसे तुव, तुमहीं गति प्यारे ।
कोऊ बिधि राखि लेहु, हमतौ अब हारे ॥
द्रुपदसुता, अजामेल, गज की सुधि कीजै ।
दीन जानि 'हरीचंद' बाहँ पकरि लीजै ॥३७॥

तुम बिनु प्यारे, कहुँ सुख नाहीं ।
भटक्यौ बहुत स्वाद-रस-लंपट, ठौर-ठौर जग माहीं ॥
प्रथम चाव करि बहुत पियारे, जाइ जहां ललचाने ।
तहँ तें फिरि ऐसो जिय उचटत[3] आवत उलटि ठिकाने ॥
जित देखौं तित स्वारथही की, निरस पुरानी बातैं ।
अतिहिं मलिन व्यवहार देखिकैं, घिन आवत है तातैं ॥
हीरा जेहिं समुझत सो निकरत, काँचो काँच पियारे ।
'या[4] ब्यवहार नफा पाछें पछितानौ कहत पुकारे ॥
सुंदर, चतुर, रसिक अरु नेही, जानि प्रेम जित कीनों ।
तित स्वारथ अरु कारो चित हम, भलैं सबहिं लखि लीनों ॥
सब गुन होयँ जु पै, तुम नाहीं—तो बिनु लौन रसोई ।
ताही सों "जहाज[5]-पच्छी" सम, गयौ अहो! मन होई ॥
अपने और पराये सबहीं, जदपि नेह अति लावैं ।

[1]धनवान। [2]शरण्य, शरण में आने योग्य। [3]हट जाता है। [4]या... पछिताना—इस व्यवहार में पीछे पछताना ही नफ़ा है! [5]जहाज ...होई—जैसे जहाज़ पर का पंछी इधर-उधर उड़ कर जहाज़ पर ही आ बैठता है, उसी प्रकार, यह जीव संसारी झंझटों में फँसा हुआ बारबार परमात्मा ही की शरण में आता है। सूरदासजी भी कहते हैं: 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पुनि जहाज पै आवै।'

पै तिन सों संतोष होत नहिं, बहु अचरज जिय आवैं ॥
जानत भलैं तुम्हारे बिनु सब, बादहिं[1] बीतत साँस ।
'हरीचंद' नहिं छुटति तऊ यह, कठिन मोह की फाँस ॥३८॥

जो पै श्री बल्लभ-सुतहिं[2] न जान्यौं ।
कहा भयौ साधन अनेक मैं परिकैं, बृथा भुलान्यौ ॥
बादि[3] रसिकता अरु चतुराई, जो यह जीउ[4] न आन्यौ ।
मर्‍यौ बृथा बिषया-रस लंपट, कठिन करम मैं सान्यौ ॥
सोइ पुनीत प्रीत जेहिं इनसों, बृथा बेद मथि छान्यौ ।
'हरीचंद' श्रीबिट्ठल बिनु सब, जगत झूठ करि मान्यौ ॥३९॥

प्यारे, मोहि परखिए नाहीं ।
हम न परिच्छा-जोग तुम्हारे, समुझहु यह मनमाहीं ॥
पापहि सों उपज्यौ पापहि में, बिगरो जनम सिरान्यो ।
तब सनमुख सों न्याय-तुला पै कैसेकैं ठहरान्यो ॥
दयानिधान, भक्त-बत्सल, करुनामय, भवभयहारी ।
देखि दुखी 'हरिचंदहिं' कर गहि, बेगहिं लेहु उबारी ॥४०॥

बेणु-गीत

सोरठ

धनि ये मुनि बृंदावन-बासी ।
दरसन-हेतु बिहंगम[5] ह्वै रहे, मूरति मधुर-उपासी ॥
नव कोमल दल पल्लव द्रुम पै, मिलि बैठत हैं आई ।
नैननि मूंदि त्यागि कोलाहल, सुनहिं बेनु-धुनि माई[6] ॥
प्राननाथ के मुख की बानी, करहिं अमृत-रस-पान ।

[1]व्यर्थ ही । [2]श्रीवल्लभाचार्य जी के सुपुत्र श्रीगोसाईं विट्ठलनाथजी । [3]व्यर्थ । [4]मन में । [5]गोपी वेणुगान में चतुरता कहती है, कि ब्रज के पशु-पक्षी आदि सब ऋषि-मुनि थे: निकुंज-बिहार देखने के लिए ही उन्होंने यह रूप धारण किया था । [6]'माई' शब्द सखी के संबोधन में आया है ।

'हरीचंद' हमकों सोउ दुरलभ, यह बिधि की गति आन ॥४१॥

सोरठ

सखी, यह अति अचरज की बात ।
गोप सखा अरु गोगन लै जब, राम[1]-कृष्ण बन जात ॥
बेनु बजावत मधुरे सुर सों, सुनिकैं ता धुनि कान ।
भूलि जात जग में सब की गति, सुनत अपूरब तान ॥
बृच्छन कों रोमांच होत है, यह अचरज अति जान ।
थावर[2] होइ जात हैं जंगम, जंगम थावर मान ॥
गोबंधन[3] कंधन पै धारें, फेंटा[4] छुकि रह्यौ माथ ।
मत्त भृंगजुत है बनमाला, फूलछरी पुनि हाथ ॥
बेनु बजावत गीतन गावत, आवत बालक संग ।
'हरीचंद' ऐसी छबि निरखत, बाढ़त अंग अनंग ॥४२॥

होली

धनाश्री

मनमोहन चतुर सुजान, छबीले हो प्यारे ।
तुम बिनु अति ब्याकुल रहैं, सब ब्रज के जीवन-प्रान ॥
तुम्हरे हित नंदलाड़िले हो, छोड़ि सकल धन-धाम ।
बन-बन में ब्याकुल फिरैं, हो सुंदर ब्रज की बाम ॥
नेनिक बाँस की बाँसुरी हो, लेत जबै तुम हाथ ।
ब्याकुल धावैं देवबधू तजि, अपने पति कौ साथ ॥
सुर-नर-मुनि मन-मोहिनी, हो मोहन तुम्हरी तान ।
जमुनाजू बहिबो तजैं, थकि टरत न देव बिमान ॥
जड़ चैतन होइ जात हैं, हो चेतन जड़ होइ जात ।

[1] श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलभद्रजी। [2] जड़; गोसाईं तुलसीदासजी कहते हैं: 'जो न जनम जग होत भरत को। अचर सचर, चर अचर करत को॥' [3] गाय बाँधने की रस्सी। [4] साफा।

इन सब की यह दसा तौ, अबलन की कह बात ॥
उठि धावैं ब्रजनागरी हो, सुनि मुरली की टेर ।
लाज-संक मानैं नहीं हो, रहत स्याम को घेर ॥
मगन भई सब रूप में हो, गोकुल गाँव बिसारि ।
'हरीचंद' जन वारने[1] हो, धन्य धन्य - ब्रजनारि ॥४३॥

हम चाकर राधा रानी के ।
ठाकुर श्रीनँद-नंदन के, वृषभानु-लली ठकुरानी के ॥
निरभय रहत, बदत नहिं काहू, डर नहिं डरत भवानी के ।
'हरीचंद' नित रहत दिवाने, सूरत अजब निवानी[2] के ॥४४॥

सिंदुर

भौंरा रे, रस के लोभी, तेरो का परमान[3] ?
तू रस-मस्त फिरत फूलन पर, करि अपने सुख-गान ॥
इत सों उत डोलत बौरानो, किये मधुर मधु-पान ।
'हरीचंद' तेरे फंद न भूलूं, बात परी पहिचान ॥४५॥

लावनी

पिय प्राननाथ ! मनमोहन ! सुंदर प्यारे ।
छिनहूं मत मेरे होहु हगन सों न्यारे ॥
घनस्याम, गोप - गोपीपति, गोकुलराई ।
बृंदाबन-रच्छक, ब्रज-सरबस, बलभाई ।
प्रानहुँ ते प्यारे ! प्रियतम, मीत कन्हाई ॥

[1]निछावर हैं । [2]अनुपम सुंदर। बाबू हरिश्चंद्रजी का 'निबानी' नाम की एक खत्रानी पर प्रेम था । कुछ लोगो ने इनके पदों में 'निवानी' शब्द उसी खत्रानी पर घटाया है । पर यह बात नहीं है । जैसे आनंदघनजी ने 'सुजान' शब्द का श्रीकृष्ण के साथ प्रयोग किया है, उसी प्रकार बाबू साहब ने 'निवानी' शब्द को, खत्रानी के अर्थ में प्रयुक्त न करके, श्रीकृष्ण की दिव्य-सुंदरता पर ही जटित किया है। [3]प्रमाण, विश्वास ।

श्रीराधा - नायक, जसुदा - नंद - दुलारे ।
छिनहूं मत मेरे होहु द्दगन सों न्यारे ॥
तुव दरसन बिनु तन-रोम-रोम दुख पागै[1] ।
तुव सुमिरन बिनु यह जीवन बिष-सम लागै ॥
मम दुख - जीवन के तुम हौ इक रखवारे ।
छिनहूं मत मेरे होहु द्दगन सों न्यारे ॥
तुमहीं मम जीवन के अवलंब कन्हाई ।
तुम बिनु सब के सुख-साज परम दुखदाई ॥
तुव देखे हीं सुख होत, न और उपाई ।
तुम्हरे बिनु सब जग सूनो[2] परत लखाई ॥
हे जीवनधन, मेरे नैनों के तारे ।
छिनहूं मत मेरे होहु द्दगन सों न्यारे ॥
तुम्हरे बिनु इक छिन कोटि-कलप सम भारी ।
तुम्हरे बिनु सरगहुँ महानरक दुखकारी ॥
तुम्हरे सँग बनहूं घर सों बढ़ि, बनवारी ।
हमरे तौ सब कछु तुमही हौ गिरिधारी ॥
'हरिचंद' हमारौ राखौ मान दुलारे ।
छिनहूं मत मेरे होहु द्दगन सों न्यारे ॥४६॥

चंद्रावली

पद

सखी, ये नैना बहुत बुरे ।
तब सों भये पराये हरि सों, जब सों जाइ जुरे[3] ॥
मोहन के रस-बस ह्वै डोलत, तलफत तनिक दुरे ।
मेरी सीख प्रीति सब छाँड़ी, ऐसे ये निगुरे[4] ॥

[1] लीन हो जाता है, सन जाता है। [2] नीरस, फीका। [3] जुड़े, लगे। [4] बिना गुरु के, बिना धर्म-कर्म के, मनमुखी।

जग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहिं, हठ सों तनिक मुरे ।
अमृत भरे देखत कमलन से, विष के बुते छुरे ॥४७॥

जो पै ऐसहिं करन रही ।
तो फिर क्यों अपने मुख सों तुम, रस की बात कही ।
हम जानी ऐसेहि बीतैगी, जैसी बीति रही ॥
सो उलटी कीनीं बिधिनाने, कछू नाहिं निबही ।
हमैं बिसारि अनत रहे मोहन, औरै चाल गही ॥
'हरीचंद' कहे-को-कहे ह्वै गयो, कछु नहिं जात कही ॥४८॥

आउ, मेरे मोहन प्यारे झूठे ।
अपनी हारि प्रतिग्या कपटी, उलटे हमसों रूठे ॥
मति परसौ तन रँगे और के, रंग[1] अधर तुव जूठे ।
ताहू पै तनिकौ नहिं लाजत, निरलज अहो अनूठे ॥४९॥

जोगिन प्रेम की आई ।
बड़े-बड़े नैन छुए कानानलौं, चितवनि मद-अलसाई ॥
पूरी प्रीति - रीति - रससानी, प्रेमीजन-मन भाई ।
नेह-नगर में अलख[2] जगावति, गावति बिरह-बधाई ॥५०॥

जोगिन-मुख पर लट लटकाई ।
कारी घूँघरवारी प्यारी, देखत सब मनभाई ॥
छूटे केस गेरुआ बागो[3], सोभा दुगुन बढ़ाई ।
साँचे ढरी प्रेम की मूरति, अँखियां निरखि सिराई ॥५१॥

प्रेम-माधुरी

सवैया

ब्रजबासी बियोगिन के घर में, जग छाँड़िकै क्यों जनमाई हमैं ।

[1]रंग...जूठे—तुम्हारे अधरों का रस कदाचित् किसी अन्य स्त्री ने पान कर जूठा कर दिया है ! [2]अलक्ष्य, अव्यक्त परमात्मा; योगियों का, भिक्षा माँगते समय का शब्द विशेष । [3]कुरता ।

मिलिबो बड़ी दूर रह्यो 'हरिचंद', दई इक नाम[1]-धराई हमैं ।।
जग के सिगरे सुख सों ठगिकैं, सहिबे कों यही है जिवाई हमैं ।
केहिं बैर सों हाय दई बिधिना, दुख देखिबे ही कों बनाई हमैं।।५२।।
रोकहिं जो, तौ अमंगल होय, औ प्रेम नसै, जो कहैं 'पिय जाइए' ।
जो कहैं 'जाहु न'—तौ प्रभुता[2], जो कछू न कहैं, तौ सनेह नसाइए ।।
जो 'हरिचंद', कहैं 'तुम्हरे बिन, जीहैं न'—तौ यह क्यों पतियाइए[3] ।
तासों पयान-समै तुम तें हम, का कहैं प्यारे, हमें समुझाइए।।५३।।*
ब्याकुल ही तड़पौं बिनु प्रीतम, कोऊ तौ नैकु दया उर लावौ ।
प्यासी तजौं तनु रूप-सुधा बिनु, पानिय[4] पी-कौ पपीहै पिआवौ ।।
जीय में हौंस कहूं रहि जाय न, हा ! 'हरिचंद' कोऊ उठि धावौ ।
आवै-न-आवै पियारो, अरे ! कोउ हाल तौ जाइकैं मेरो सुनावौ ।।५४।।
दीनदयाल कहाइकैं धाइकैं[5], दीनंनि सों क्यों सनेह बढ़ायौ ।
त्यों 'हरिचंद जू' बेदनि में करुनानिधि नाम कहौ क्यों गनायौ ।।
ऐसी रुखाई न चाहिए तापै, कृपा करिकै जेहि कौं अपनायौ ।
ऐसी ही जो पै सुभाव रह्यौ, तो 'गरीब-नेवाज' क्यों नाम धरायौ ।।५५।।
यह संग में लागियैं डोलैं सदा, बिन देखैं न धीरज आनती हैं ।
छिनहू जो बियोग परै 'हरिचंद' तौ चाल[6] प्रलै की सु ठानती हैं ।।
बरुनी में फिरैं न झपैं[7], उझपैं[8], पल में न समाइबो जानती हैं ।
पियप्यारे, तिहारे निहारे बिना, अँखियां दुखियां नहिं मानती हैं ।।५६।।
ब्यापक ब्रह्म सबै थल पूरन[9], हैं, हमहू पहिचानती हैं ।
पै बिना नँदलाल बिहाल सदा, 'हरिचंद' न ग्यानहिं ठानती हैं ।।

[1]बदनामी । [2]अभिमान, प्रेमगर्व । [3]विश्वास करेंगे । [4]पानी, रूप-माधुरी का रस । [5]दीनों पर कष्ट पड़ने के समय उनकी रक्षा करने के लिये दौड़-दौड़ कर । [6]चाल...ठानती हैं—प्रलय-काल के मेघों के समान आँसुओं की वर्षा करने लगती हैं । [7]बंद होती हैं, नींद आती है । [8]खुल-खुल पड़ती हैं । [9]व्याप्त ।

* इस सवैये का भाव सचमुच ही अनूठा है ।

तुम ऊधौ ! यहै कहियौ उनसों, हम और कछू नहिं जानती हैं ।
पिय-प्यारे, तिहारे, निहारे बिना, अँखियां दुखियां नहिं मानती हैं ॥५७॥
सब आस तो छूटी पिया-मिलिबे की, न जाने मनोरथ कौन सजैं ।
'हरिचंदजू' दुःख अनेक सहैं, पै अड़े हैं टरैं न कहूं कों भजैं[1] ॥
सब सों निरसंक[2] ह्वै बैठि रहैं, सो निरादर हू सों कछू न लजैं ।
नहिं जानि परै, कछु या तन कों, केहि मोह तें पापी न प्रान तजैं ॥५८॥
हाय ! दसा यह कासों कहों, कोउ नाहिं सुनै जो करै हू निहोरन[3] ।
कोउ बचावनहारो नहीं 'हरिचंदजू', यों तो हितू हैं करोरन ॥
सो सुधि[4] कै गिरिधारन की, अब धाइकैं दूरि करौ इन चोरन ।
प्यारे, तिहारे निवास की ठौर कों, बोरत हैं अँसुवा बर-जोरन ॥५९॥
केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं, अटके कित कौन बिचार लयौ ।
नहिं जानि परै 'हरिचंद' कछू, बिधिने हमसों हठ कौन ठयौ ॥
निसि आजहुँ की गई हाय ! बिहाय[5], बिना पिय कैसे न जीव गयौ ।
हतभागिनी आँखिन सों नित के, दुख देखिबे कों फिरि भोर भयौ ॥६०॥
जानत ही नहिं हों जग में, किहिको सबरे मिलि भाखत हैं सुख ।
चौंकत चैन को नाम सुनैं, सपनेहुँ न जानत भोगन कौ रुख[6] ॥
ऐसेन सों 'हरिचंदजू' दूरहिं, बैठनो, का लखनो न भलो मुख ।
मो दुखिया के न पास रहौ, उड़िकैं न लगै तुमहू कों कहूं दुख ॥६१॥*
वह सुंदर रूप बिलोकि सखी, मन हाथ तें मेरे भग्यौ सो भग्यौ ॥
चित माधुरी मूरति देखत हीं, 'हरिचंदजू' जाय पग्यौ सो पग्यौ ।
मोहिं औरन सों कछु काम नहीं, अब तौ जो कलंक लग्यौ सो लग्यौ ॥
रँग दूसरो और चढ़ैगो नहीं, अलि, साँवरो रंग[7] रँग्यौ सो रँग्यौ ॥६२॥

[1]भागते हैं । [2]निडर; संस्कृत के संधि-नियम के अनुसार 'निरसंक' शब्द अशुद्ध है । [3]सिफ़ारिश । [4] सुधि...गिरिधारन—मूसलाधार पानी से ब्रज बचाने के लिए गोवर्द्धन पर्वत उठा लेने की याद । [5]बीत गई । [6]रुचि । [7]श्रीकृष्ण-प्रेम ।

*वाह ! दुःख भी एक छूत का रोग बना दिया गया !

धिक देह औ गेह सबै सजनी, जिहि के बस नेह कौ टूटनो है।
उन प्रानपियारे बिना इहि जीवहि, राखि कहा सुख लूटनो है॥
'हरिचंदजू' बात ठनी-सो ठनी, नित के कलकानि[1] तें छूटनो है।
तजि और उपाव अनेक अरी! अब तौ हमकों विष घूँटनो[2] है॥६३॥

कवित्त

बाज्यौ करै बंसी-धुनि बाजि-बाजि स्रवननि,
जोराजोरी[3] मुख-छबि चितहिं चुराये लेति।
हँसनि हँसावनि जगत सों तिहारी मुरि,
मुरनि[4] पियारी मन सब सों मुराये[5] लेति॥
'हरीचंद' बोलनि, चलनि, बतरानि, पीत—
पट-फहरानि मिलि धीरज मिटाये लेति।
जुलफैं तिहारी लाज-कुलफन[6] तोरैं, प्रान—
प्यारे, नैन-सैन प्रान संग ही लगाये लेति॥६४॥
बोल्यौ करै नूपुर स्रौननि के निकट सदा,
पदतल माहिं मन मेरे बिहर्‌यौ करै।
बाज्यौ करै बंसी-धुनि पूरि रोम-रोम, मुख
मन मुसुकानि मंद मनहिं हर्‌यौ करै॥
'हरीचंद' चलनि, मुरनि, बतरानि चित,
छाई रहे छबि जुग दृगनि भर्‌यौ करै।
प्रानहू तें प्यारो रहै प्यारो तू सदाई, प्यारे
पीत-पट सदा हीय बीच फहर्‌यौ करै॥६५॥
घेरि - घेरि घन आय छाय रहे चहुँ ओर,
कौन हेत प्राननाथ, सुरति बिसारी है।
दामिनी-दमक जैसी जुगुनू-चमक तैसी,

[1]कलह, प्रपंच। [2]पीना है। [3]ज़बरदस्ती। [4]मोड़। [5]हटाये लेती है।
[6]लज्जा-रूपी तालों को।

नभ में बिसाल बग-पंगति सँवारी है ॥
ऐसे समैं 'हरिचंद' धीर न धरत नैकु,
बिरह - बिथा तें होति ब्याकुल पियारी है ।
प्रीतम पियारे नंदलाल बिनु हाय ! यह,
सावन[1] की रात किधौं द्रौपदी की सारी है ॥६६॥
फूली-सी, भ्रमी-सी चौंकी, जकी-सी, थकी-सी गोपी,
दुखी-सी रहति कछु नाहीं सुधि गेह की ।
मोही-सी, लुभाई, कछु मोदक[2]-सो खायें सदा,
बिसरी-सी रहै नैकु खबर न गेह की ॥
रिसभरी रहै, कबौं फूली न समाती अंग,
हँसि-हँसि कहै बात अधिक उमेह[3] की ।
पूछे तें खिसानी[4] होय, उत्तर न आवै ताहिं,
जानी हम जानी है निसानी या सनेह की ॥६७॥*
आइकैं जगत-बीच काहू सों न करै बैर,
कोऊ कछू काम करै इच्छा जौन जोई की ।
ब्राह्मन की, छत्रिन की, बैसनि[5] की, सूद्रनि की,
अंत्यज[6] मलेच्छ[7] की, न ग्वाल की न भोई की ॥
भले की, बुरे की, 'हरिचंद'-से पतितहू की,

[1]सावन...सारा है—प्यारे के विरह में सावन मास की रात इतनी लंबी जान पड़ती है, जितनी कि द्रौपदी की साड़ी । यह प्रसिद्ध ही है, कि जब दुःशासन, अनीति से, भरी सभा में द्रौपदी की साड़ी खींचने लगा, तब भगवान् की कृपा से वह इतनो बढ़ गई कि, उस दुष्ट को उसका ओर-छोर तक न मिला । [2]मन-ही-मन प्रसन्न । [3]उमंग । [4]क्रोधित । [5]वैश्यों की । [6]डोम, चांडाल आदि जातियां । [7]आचार-विचार से पतित ।

*प्रेमासक्ति के जितने कुछ लक्षण होने चाहिएं, वे सब-के-सब इस कवित्त में भरे हुए हैं ।

थोरे की, बहुत की, न एक की न दोई की।
चाहे जो चुनिंदा[1] भयौ जगबीच मेरे मन,
तौ न तू कबहूं निंदा करु कोई की ॥६८॥*
थाकी गति अंगन की, मति परि गई मंद,
सूखि झाँझरी-सी ह्वै कैं देह लागी पियरान[2]।
बावरी-सी बुद्धि भई, हँसी काहू छीनि लई,
सुख के समाज जित-तित लागे दूर जान॥
'हरीचंद' रावरे बिरह जग दुखमयो,
भयो कछु और होनहार लागे दिखरान।
नैन कुम्हिलान लागे, बैनहूँ अथान[3] लागे,
आवौ प्राननाथ, अब प्रान लागे मुरझान ॥६९॥†
सुंदर सचिक्कन सुढार स्याम सोहै महा,
कोटि लावन्य-धाम लटक निज अंग की।
कोमल चरन कौंल[4] नटवर ढोर[5] मोर,
पोर-पोर छोरै छबि कोटिन अनंग की॥
बंक गति लंक तें[6] सुअंक लौं तिरीछे ठाढ़े,
मृदु कर कीन्हें मुद्रा बेनु के प्रसंग की।
कुंडल स्रवन सीस चंद्रिका नमन[7], जै जै,
राधिकारमनलाल, ललित त्रिभंग[8] की ॥७०॥

[1]सर्व-श्रेष्ठ। [2]पीली पड़ने लगी। सुकवि 'प्रीतम' भी कहते हैं: 'रंग पीले पड़ गये जिनके लिए। वह हरी आये न दो दिन के लिए।।' [3]अस्त होने लगे, बंद होने लगे। [4]कमल। [5]अदा, छटा। [6]कटि से। [7]झुकाव। [8]तीन टेढ़ से खड़े हुए; एक पैर को दूसरे पैर पर रखे, कमर झुकाये तथा मुरली बजाते हुए बाँके बिहारी श्रीकृष्ण।

*'पर-निंदा-सम अघ न गरीसा'—तुलसी।

†चौथा चरण तो बड़े ही मार्के का है।

पूरन सुकृत - फल श्रीभट[1] गुपालजू के,
भक्त महिपाल जू के संकट - समनजू ।
दौरे गजराज - काज लाज राखी द्रौपदी की,
धारयौ गिरिराज[2] देव - मद के दमनजू ॥
निज दासी दीन - दुख - हरन चरन चारु,
सुख के करन सदा संपदा - भमनजू[3] ।
मुरली - लकुटवारे, चंद्रिका - मुकुटवारे,
दुरित[4] हमारे दरौ[5] राधिका - रमनजू ॥७१॥

दोहा

प्रगट प्रेम-पद्धति कही, लही कृपा-अनुसार ।
आनँदघन उनयौ सदा, अद्‌भुत रस-आगार ॥७२॥
प्रेम[6]-परावधि ब्रजबधू, सुनि बंसी-धुनि मंद[7] ।
तजति भई सब सकुच[8] तब, भजति भई ब्रजचंद ॥७३॥
आरज-पथ[9] भूलीं भले, बिबस परीं तिहि फंद ।
ब्रज-मोहन मन-मोहिनी, पूरन प्रेम अमंद[10] ॥७४॥
श्रीपद[11]-अंकित ब्रज-मही, छबि न कही कछु जाइ ।
क्यों न रमाहू कौ हियो, या सुख को ललचाइ ॥७५॥

[1]श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी; यह श्रीचैतन्य महाप्रभु के परम कृपापात्र शिष्य थे। नाभाकृत भक्तमाल मे इनके विषय मे प्रसिद्ध है : 'सर्वस्व राधारमनभट्ट गोपाल उजागर' इत्यादि । लिखा है, कि श्रीराधारमणजी का स्वतः प्राकट्य इन्हीं भट्टजी के भक्ति-बल द्वारा हुआ था । आज भी यह 'श्री-विग्रह' राधारमण गोस्वामियों के मस्तक पर विराजमान है । [2]गोवर्द्धन पर्वत । [3]भवन । [4]दुख । [5]नाश करो । [6]प्रेम...ब्रजबधू—ब्रज-गोपिकाएं प्रेम की परात्पर अवधि हैं । नारदीय भक्तिसूत्रों में पराभक्ति के उदाहरण मे 'यथा ब्रज गोपिकानाम्' लिखा है । 'गोपी प्रेम की धुजा' आदि पदों द्वारा भी यह सिद्ध है । [7]मधुर । [8] शील, लज्जा । [9]आर्योचित कुल-मर्यादा, पातिव्रत धर्म । [10]दिव्य । [11]श्रीराधाकृष्ण के चरण ।

एक कृपा-बल पाइए, मति-गति-रति भरिपूरि।
निकट होति पाछे परै, श्रीपद-पंकज - धूरि ॥७६॥
परम-प्रेम-गति को लहै, मन-बुधि थकी बिचारि ।
या रस-बस मोहन रसिक, चहत अपुनपौ हारि ॥७७॥
अतुल रूप-गुन-माधुरी, परम अपूरब साज ।
गोपी औ गोपाल कौ, अति रसमओ[1] समाज ॥७८॥
परम प्रेम-गुन-रूप-रस, ब्रज-संपदा अपार ।
जय जय जय श्रीगोपिका, जय जय नंद-कुमार ॥७९॥

---

[1] रसपूर्ण; परमानंदमय।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

छप्पय

ब्रजभाषा-लालित्य-मधुप,——साहित्य-गुनाकर ।
कृष्ण-प्रेम-रस-लीन मीन कविवर रतनाकर ॥
'समालोचनादर्श' 'हरीचँद' 'गंगावतरन' ।
रचि, सतसैया-मथन कियौ रसिकनि रस-वितरन ॥
ब्रज-रस-प्रवाह पूरन कियौ 'उद्धव-सतक' प्रकासिकैं ।
कविदेव-सरिस रचना रची, बानी बिमल बिलासिकैं ॥

—वियोगी हरि

ब्रज-साहित्य के अनन्य उपासक कविवर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म संवत् १९२३ में, भादों सुदी ५ ऋषि-पंचमी के दिन, काशी में हुआ था। कविता का उपनाम इनका 'रत्नाकर' था और इसी नाम से ये अधिक प्रसिद्ध भी थे। इनके पिता का नाम पुरुषोत्तमदास था। ये दिल्ली-वाल अग्रवाल वैश्य थे। इनके पूर्व पुरुष सफीदों (सर्पदमन), ज़िला पानीपत, के रहने वाले थे। पानीपत के दूसरे युद्ध के बाद वे मुग़ल बादशाह अकबर के दरबार में आए और मुग़ल साम्राज्य की अभिवृद्धि के दिनों में भिन्न-भिन्न उच्च पद पर काम करते रहे। मुग़ल राज्य के पतन हो जाने पर रत्नाकर जी के परदादा लाला तुलाराम जहाँदारशाह के साथ काशी चले आए और वहीं बस गए।

रत्नाकरजी के पिता पुरुषोत्तमदासजी फ़ारसी के उद्भट विद्वान थे, पर हिंदी कविता पर भी उनकी अनन्य श्रद्धा थी। उन्हीं के प्रभाव से रत्नाकरजी में कविता-प्रेम उदय हुआ। उनके मकान पर अच्छे-अच्छे कवियों का सदा जमघट लगा रहता था; बाहर से आए कवि सदा उन्हीं

के पास ठहरते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र भी उनके मित्र और संबंधी होने के कारण प्रायः उनके स्थान पर जाया करते थे। बालक रत्नाकर इस साहित्य-गोष्ठी में प्रायः बैठते और कभी-कभी कुछ बोल उठते थे। इसी प्रकार एक दिन आपकी किसी उक्ति से प्रसन्न होकर भारतेंदुजी ने कहा: 'यह लड़का कभी अच्छा कवि होगा।' भारतेंदुजी की यह भविष्यवाणी सत्य हुई। रत्नाकरजी पर उक्त साहित्यिक सत्संग का इतना प्रभाव पड़ा कि पहिले वे उर्दू में और फिर हिंदी में कविता करने लगे।

रत्नाकरजी बड़े ही अध्ययनशील थे। इनकी सारी शिक्षा काशी ही में हुई। सन् १८६१ में द्वितीय भाषा फ़ारसी लेकर इन्होंने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की और एम० ए० भी फ़ारसी लेकर वे पढ़ रहे थे पर कुछ कारणवश परीक्षा न दे सके।

सन् १६०० में रत्नाकरजी की नियुक्ति आवागढ़ स्टेट में हुई। वहां का जलवायु इनके स्वास्थ्य के अनुकूल न था। अतः दो वर्ष योग्यतापूर्वक काम करके नौकरी छोड़ ये काशी लौट आए। कुछ समय अनंतर सन् १६०२ में अनन्य हिंदी प्रेमी अयोध्यानरेश महामहोपाध्याय महाराजा सर प्रतापनारायणसिंह बहादुर के० सी० आई० ई० ने रत्नाकरजी को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया और थोड़े ही दिनों बाद इनकी कार्य-कुशलता से प्रसन्न होकर इन्हें चीफ़ सेक्रेटरी के पद पर आसीन किया। सन् १६०६ के अंत में अयोध्यानरेश के स्वर्गवास हो जाने पर श्रीमती महारानी जगदंबा देवी अवधेश्वरी ने रत्नाकरजी को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी नियत किया। मृत्यु पर्यंत वे इसी पद पर सुशोभित रहे। कठिन अभियोग आदि कई विकट परिस्थितियों में राज्य को इन्होंने बड़ी सहायता पहुँचाई थी।

रत्नाकरजी प्राचीनता के उपासक थे। अँगरेज़ी शिक्षा में पले रहने पर भी भारतीय संस्कृति के वे पूर्ण समर्थक थे। स्वभाव आपका सरल और हृदय कोमल था। वे इतने हँसमुख और मिष्टभाषी थे कि उनकी मंडली में बैठकर हँसी रोकना कठिन काम था। इनकी स्मरणशक्ति बड़ी तीव्र थी। व्यायाम के ये इतने प्रेमी थे कि ६५ वर्ष की अवस्था में भी ४५ वर्ष से

अधिक के नहीं जँचते थे। वैद्यक में भी इनकी बड़ी रुचि थी।

काशी में जिस समय नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हो रही थी उस स्थापना में प्रबल उत्साही रत्नाकरजी का भी हाथ था और 'सरस्वती' के प्रारंभिक प्रकाशन के अवसर पर संपादकों में इनका भी नाम आया था। इसी समय के आस-पास इन्होंने निम्नलिखित काव्यग्रंथ रचे थे: 'हिंडोला'; 'हरिश्चंद्र समालोचनादर्श'; 'साहित्य-रत्नाकर'; 'घनाक्षरी नियम-रत्नाकर'; 'कलकाशी' और 'अष्टक रत्नाकर'। तदुपरांत राज-काज की अनेक झंझटों में पड़े रहने के कारण रत्नाकरजी ने साहित्यिक क्षेत्र से एक दीर्घ अवकाश ग्रहण किया। अपने जीवन के पिछले दस वर्षों में जब से महारानी जगदंबादेवी अवधेश्वरी के आग्रह से वे पुनः कविता-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए तब से उनकी लेखनी नवीन स्फूर्त्ति के साथ बराबर चलती रही। सच बात तो यह है कि इन्हीं पिछले दस वर्षों में रत्नाकरजी हिंदी-साहित्य-जगत में यथार्थ रूप से प्रकट हुए थे। विक्रम संवत् १९७८ को मेष संक्रांति के पर्व पर महारानी अयोध्या के साथ रत्नाकरजी भी हरिद्वार गए थे। वहीं 'गंगा सप्तमी' की कथा पूछने पर रत्नाकरजी ने वाल्मीकि रामायण में से गंगा-अवतरण की कथा श्रीमतीजी को सुनाई। वह वर्णन महारानी साहिबा को बड़ा रोचक प्रतीत हुआ और उन्होंने गंगावतरण काव्य-भाषा में रचने के लिए रत्नाकरजी से आग्रह किया। कविता-अभ्यास बहुत दिनों से छूटा होने के कारण रत्नाकरजी को अपनी शक्ति पर कुछ संदेह हुआ पर अवधेश्वरी की प्रेरणा और प्रोत्साहनवश उन्होंने भगवती वीणापाणि का स्मरण किया। रत्नाकरजी की सोई हुई प्रतिभा विलक्षण आवेग के साथ जागृत हुई और सरस्वती ने उनकी साध हृदय से निकाल कर इस भाँति पूरी की :

सुमिरत सारदा हुलसि हँसि हंस चढ़ी,
बिधि सौं कहति पुनि सोई धुनि ध्याऊं मैं।
ताल-तुक-हीन अंग-भंग छबि-छीन भई,
कबिता बिचारी ताहि रुचि-रस प्याऊं मैं॥

नंददास, देव, घनआनँद, बिहारी सम,
सुकवि बनावन की तुम्हैं सुधि आऊं मैं।
सुनि 'रतनाकर' की रचना रसीली नैंकु,
ढीली परी बीनहिं सुरीली करि ल्याऊं मैं॥

इस गर्वोक्ति के बाद रत्नाकरजी ने 'गंगावतरण' काव्य की रचना प्रारंभ कर दी जो संवत् १९८१ में प्रकाशित हुआ। यह काव्य जब अधूरा ही था तभी इसकी रचना से प्रसन्न होकर अयोध्या की महारानी ने रत्नाकरजी को एक हज़ार रुपये का पारितोषिक प्रदान किया। रत्नाकरजी कविता कविता के लिए करते थे, राजा-रानियों को प्रसन्न करने के लिए नहीं। अतः उन्होंने कविता का पारितोषिक स्वयं लेना उचित न समझा और महारानी की आज्ञा शिरोधार्य कर उक्त पारितोषिक के रुपये काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को यह कह कर दे दिये कि इसके ब्याज से प्रति तीसरे वर्ष ब्रजभाषा के सर्वोत्तम काव्य-ग्रंथ पर दो सौ रुपये पारितोषिक दिए जायँ। उक्त-गंगावतरण' काव्य पर प्रयाग की हिंदुस्तानी एकेडमी ने भी सन् १९२९ में पाँच-सौ रुपये का पुरस्कार प्रदान किया था।

रत्नाकरजी के इस नूतन साहित्य-प्रवेश से ब्रजभाषा का कुछ नया शृंगार हो चला था। पचीसों कविसम्मेलनों के वे सभापति हुए। कानपुर के प्रथम अखिल भारतीय हिंदी कवि-सम्मेलन का सभापति-पद उन्होंने सुशोभित किया। उस समय दिया हुआ इनका भाषण हिंदी-साहित्य की एक सुंदर कृति है। इनकी साहित्य-सेवा से मुग्ध होकर हिंदी-जनता ने इन्हें संवत् १९७९ में हिंदी-साहित्य सम्मेलन, कलकत्ता के अधिवेशन का सभापति चुन कर इनका सम्मान किया।

रत्नाकरजी केवल कवि ही न थे प्रत्युत वे एक अच्छे भाष्यकार, भाषा तत्वविद् एवं पुरातत्वांवेषी भी थे। प्राकृत का अच्छा अभ्यास होने के कारण शिलालेखों के पढ़ने तथा प्राचीन शोध का कार्य करने में आपको विशेष रुचि थी। बिहारी की सतसई पर आपने 'बिहारी-रत्नाकर' नामक एक अत्यंत विद्वत्तापूर्ण शुद्ध टीका की है। इसके अतिरिक्त चंद्रशेखर के

'हमीर हठ', कृपाराम की 'हितकारिणी' और दूल्ह कवि के 'कंठाभरण' का आपने संपादन किया है। 'साहित्य-सुधा-निधि' नामक मासिक पत्र के आप संपादक भी रहे हैं।

रत्नाकरजी की अंतिम रचना 'उद्धवशतक' नामक मुक्तक-काव्य है जो संवत् १९८९ में समाप्त हुआ। पिछले कुछ वर्षों से वे 'सूरसागर' का संपादन कार्य अत्यंत शोध-पूर्वक कर रहे थे और इसके लिए उन्होंने कई हज़ार रुपये ख़र्च भी किये थे। 'सूरसागर' का लगभग तृतीयांश वे समाप्त कर चुके थे; शेष भाग अन्य विद्वानों के संरक्षण में काशी नागरी प्रचारिणी सभा पूरा करा रही है।

हृदय-व्याधि से पीड़ित होने के कारण रत्नाकरजी संवत् १९८९ में हरिद्वार चले गये थे। वहीं अयोध्या-हाउस, विष्णुघाट पर आषाढ़ और ७, सं० १९८९ को आपका देहावसान हो गया।

वास्तव में, रत्नाकरजी के निधन के साथ ही भारतेंदु काल की अंतिम आभा लुप्त हो गई। ब्रजभाषा के पुराने कवियों की भाँति ही रत्नाकरजी को भी राजसी ठाट-बाट नसीब था। कविता पढ़ने का ढंग भी आपका बड़ा ही ओजस्वी और सुरीला था। इस नीरस युग में भी इनकी कविता घनआनँद और पद्माकर का स्मरण दिला देती थी। ब्रजभाषा की सरसता तथा विशुद्धता पर आपने विशेष ध्यान दिया। सानुप्रास वर्णों का अधिक प्रयोग करने पर भी रत्नाकरजी की भाषा में एक प्रौढ़ता है, निखरापन है जिससे विदित होता है कि वे ब्रजभाषा को विविध विषयों के अनुकूल एक परिमार्जित काव्य-भाषा का पद देना चाहते थे। छायावाद की दुर्बोध कविताओं से रत्नाकरजी बहुत घबड़ाते थे। ब्रजभाषा के प्राचीन कवियों में भाषा की जो किंचित् उच्छृंखलता मिलती है वह रत्नाकरजी में नहीं थी; लघु-दीर्घ वर्ण करने की स्वतंत्रता रत्नाकरजी ने बहुत कम ली है। ओज और प्रसाद गुण इनकी कविता में विशेष हैं। गंगावतरण-काव्य में प्रकृति-चित्रण बड़ा ही सुंदर हुआ है। भावों की मौलिकता चाहे अधिक न मिले पर शैली की मौलिकता रत्नाकरजी की कविता में काफ़ी है। शृंगार रस

की भव्यता की ओर रत्नाकरजी अधिक आकृष्ट हुए; 'उद्धव-शतक' में उसी भावना का दिव्य चित्र है। इनकी कविता में जो ओज, जो लालित्य और जो प्रवाह अंतर्हित है उसका कुछ उदाहरण दिया जाता है :

उद्धवशतक

आए भुज-बंध[1] दिए ऊधव-सखा के कंध
डग-मग पाय मग धरत धराए हैं।
कहै 'रतनाकर' न बूझैं कछू बोलत औ
खोलत न नैन हूं अचैन चित छाए हैं॥
पाइ बहे कंज में सुगंध राधिका को मंजु
ध्याए कदली-बन मतंग[2] लौं मताए हैं।
कान्ह गए जमुना नहान पै नए सिर सौं
नीकैं तहां नेह की नदी मैं न्हाइ आए हैं॥१॥

नंद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की
लाड़-भरे लालन की लालच लगावती।
कहै 'रतनाकर'-सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी
मंजु मृगनैननि के गुन-गन गावती॥
जमुना-कछारनि[3] की रंग-रस-रारनि की
बिपिन-बिहारनि की हौंस[4] हुमसावती[5]।
सुधि ब्रज-बासिन दिवैया सुख-रासिन की
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती॥२॥

रूप-रस पीवत अघात ना हुते जो तब
सोई अब आंसु ह्वै उबरि गिरिबौ करैं।
कहै 'रतनाकर' जुड़ात हुते देखैं जिन्हैं
याद किएं तिनकौं अँवां[6] सौं घिरिबौ करैं॥

[1] गलबांही। [2] मस्त हाथी। [3] नदी के किनारों की तर और हरी-भरी भूमि। [4] अभिलाषा। [5] उत्तेजित करती हुई। [6] अँवां... करैं—मिट्टी का बर्तन जैसे पकाया

दिननि के फेर सौं भयौ है हेर-फेर ऐसौ
जाकौं हेरि-फेरि हेरिबौई हिरिबौ करैं।
फिरते हुते जु जिन कुंजनि मैं आठौं जाम
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबौ करैं॥३॥

मोर के पखौवनि[1] कौ मुकुट छबीलौ छोरि
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा।
कहै 'रतनाकर' त्यौं माखन-सनेही बिनु
षट-रस ब्यंजन चबाइ करिहैं कहा॥
गोपी ग्वाल बालनि कौं झोंकि बिरहानल मैं
हरि सुर-बृंद की बलाइ करिहैं कहा।
प्यारौ नाम गोबिंद गुपाल कौ बिहाइ हाय
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा॥४॥

सील-सनी सुरुचि सु-बात चलैं पूरब[2] की,
औरै ओप[3] उमगी दगनि मिदुराने[4] तैं।
कहै 'रतनाकर' अचानक चमक उठी,
उर घनस्याम कैं अधीर अकुलाने तैं॥
आसा छंद दुरदिन दीस्यौ सुर-पुर माँहि
ब्रज मैं सुदिन बारि बूँद हरियाने तैं।
नीर कौ प्रवाह कान्ह-नैननि कैं तीर बह्यौ,
धीर बह्यौ ऊधौ-उर-अचल रसाने[5] तैं॥५॥

प्रेमनेम निफल निवारि उर-अंतर तैं,
ब्रह्म-ज्ञान आनँद निधान भरि लैहैं हम।
कहै 'रतनाकर' सुधाकर[6]-मुखीनि-ध्यान

जाता है। उसी भाँति अब जलन हो रही है।

[1]पच्छ, पंख। [2]पुरानी बात, जब कि श्रीकृष्ण नंद-यशोदा के यहाँ थे। [3]चमक। [4]खुले-मुँदे नेत्र। [5]भींगे हुए। [6]सुधाकर... ध्यान—गोपियों की पवित्र स्मृति।

आँसुनि सौं धोइ जोति जोइ जरि[1] लैहैं हम ॥
आवो एक बार धरि गोकुल - गली की धूरि,
तब इहिं नीति की प्रतीत धरि लैहैं हम ।
मन सौं, करेजे सौं, स्रवन-सिर आँखिनि सौं,
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम ॥६॥
लै कै उपदेश-औ-सँदेस-पन ऊधौ चले,
सुजस - कमाइबैं उछाह - उदगार में ।
कहै 'रतनाकर' निहार कान्ह कातर पै,
आतुर भए यौं रह्यौ मन न सँभार में ॥
ज्ञान-गठरी की गाँठि छरकि न जान्यौ कब,
हरैं[2]-हरैं पूँजी सब सरकि कछार में ।
डार मैं तमालनि की कछु बिरमानी[3] अरु,
कछु अरुझानी है करीरनि के झार में ॥७॥
भेजे मन-भावन[4] के ऊधव के आवन की,
सुधि ब्रज-गावनि में पावन जबै लगीं ।
कहै 'रतनाकर' गुवालिनि की झौरि-झौरि[5],
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं ॥
उझकि-उझकि[6] पद-कंजनि कै पंजनि पै,
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं ।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यो है कहा कहन सबै लगीं ॥८॥
दीन दसा देखि ब्रज-बालनि की ऊधव कौ
गरिगौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से ।
कहै 'रतनाकर' न आए मुख बैन, नैन

[1]जरि लैहैं—ज्योति जला लेंगे । [2]धीरे-धीरे । [3]फैल गई । [4]श्रीकृष्ण । [5]झुंड के झुंड । [6]उचक-उचक कर ।

नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने[1]-से ॥
सूखे-से स्रमे-से सकबके[2]-से सके-से थके
भूले-से भ्रमे-से भभरे-से भकुवाने[3]-से ।
हौले-से हले-से हूल-हूले-से हिये मैं हाय
हारे-से हरे-से रहे हेरत हिराने-से ॥९॥

सच्च-तत्व मैं जो सच्चिदानंद की सत्ता सो तौ
हम तुम उनमैं समान ही समोई है ।
कहै 'रतनाकर' विभूत पंच-भूत हू की
एक-ही-सी सकल प्रभूतनि[4] मैं पोई है ॥
माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै
काँच-फलकनि[5] ज्यौं अनेक एक सोई है ।
देखौ भ्रम-पटल उघारि ज्ञान-आँखिनि सौं
कान्ह सब ही मैं कान्हही मैं सब कोई है ॥१०॥

सुनि सुनि ऊधव की अकह[6] कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं[7] थिरानी हैं ।
कहै 'रतनाकर' रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं ॥
कोऊ सेद-सानी[8], कोऊ भरि दृग-पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं ।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
[illegible]

[1] ललचाये । [2] बौरहे । [3] खिसियाए या घबड़ाए हुए । [4] सब प्राणियों मे । [5] दर्पण । [6] अकथनीय । [7] स्थान ही पर । [8] सात्त्विक भाव उदय होने से पसीना आगया ।

कहै 'रतनाकर' बदन-बिनु कैसें चाखि,
माखन, बजाइ बेनु गोधन गवाइहै ॥
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवन बिनाहीं हाय
भोरे ब्रजबासिनि की बिपति बराइहै[1] ।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अनूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारें काम आइहै ॥१८॥

जोग को रमावै औ समाधि को जगावै इहां
दुख-सुख-साधनि सौं निपट निबेरी[2] हैं ।
कहै 'रतनाकर' न जानैं क्यौं इतै धौं आइ
साँसनि[3] की सासना की बासना बखेरी हैं ॥
हम जमराज की धरावतिं जमा न कछू
सुर-पति-संपति की चाहतिं न ढेरी हैं ।
चेरी हैं न ऊधौ ! काहू ब्रह्म के बबा की हम
सूधौ कहे देतिं एक कान्ह की कमेरी[4] हैं ॥१९॥

वाही मुख मंजुल की चहतिं मरीचैं[5] सदा
हमकौं तिहारी ब्रह्म-ज्योति करिबौ कहा ।
कहै 'रतनाकर' सुधाकर-उपासनि कौं
भानु की प्रभानि कौं जुहारि जरिबौ कहा ॥
भागि रहीं बिरचे बिरंचि के सँजोग सबै
ताके सोग[6] सारन कौं जोग चरिबौ कहा ।
जब ब्रजचंद को चकोर चित चारु भयौ
बिरह-चिंगारिनि सौं फेरि डरिबौ कहा ॥२०॥

नैननि के नीर औ उसीर[7] सौं पुलकावलि
जाहिं करि सीरी सीरी बातहिं बिलासैं हम ।

[1]दूर होगी। [2]निवृत्त। [3]योग-संबंधी प्राणायाम। [4]दासी। [5]किरणें।
[6]शोक। [7]खस।

कहै 'रतनाकर' तपाइ बिरहातप की
आवन न देतिं जामैं बिषम उसासैं हम ॥
सोई मन-मंदिर तपावन के काज आज
रावरे कहे तैं ब्रह्म-जोति लै प्रकासैं हम ।
नंद के कुमार सुकुमार कौं बसाइ यामैं
ऊधौ अब हाइ कै बिसास[1] उदवासैं[2] हम ॥२१॥

कीजै ज्ञान-भानु कौ प्रकास गिरि सृंगनि पै
ब्रज में तिहारी कला नैकु खटिहै[3] नहीं ।
कहै 'रतनाकर' न प्रेम-तरु पैहै सूखि
याकी डार-पात तृन[4]-तूल घटिहैं नहीं ॥
रसना हमारी चारु चातकी बनी है ऊधौ
पी-पी की बिहाइ और रट रटिहैं नहीं ।
लोटि-पोटि बात कौ बवंडर बनावत क्यौं
हिय तैं हमारे घनस्याम हटिहैं नहीं ॥२२॥

नेम-व्रत-संजम कै आसन अखंड लाइ
साँसनि कौं घूँटिहैं जहां लौं गिलि[5] जाइगौ ।
कहै 'रतनाकर' धरैंगी मृगछाला अरु
धूरि हूं दरैंगी जऊ अंग छिलि जाइगौ ।
पाँच-आंचि[6] हूं की झार झेलिहैं निहारि जाहि
रावरौ हू कठिन करेजौ हिलि जाइगौ ।
सहिहैं तिहारे कहैं साँसति सबै पै बस
एती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगौ ॥२३॥

साधि लैहैं जोग के जटिल जे बिधान ऊधौ

[1] विश्वासघात। [2] निर्वासित करें। [3] चलेगी। [4] तृण के समान। [5] निगलना।
[6] हठयोग की पंचाग्नि जिसे जला कर सभी ऋतुओं में हठयोगी उसके बीच बैठते हैं।

बाँधि लैहैं लंकनि[1] लपेटि मृगछाला हू ।
कहै 'रतनाकर' सु मेलि लैहैं छार अंग
झेलि लैहैं ललकि घनेरे घाम पाला[2] हू ॥
तुम तौ कहौ औ अनकही कहि लीनी सबै
अब जौ कहौ तौ कहैं कछु ब्रजबाला हू ।
ब्रह्म मिलिबै तैं कहा मिलिहै बतावौ हमैं
ताकौ फल जब लौं मिलै ना नंदलाल हू ॥२४॥
प्रथम भुराइ[3] प्रेम-पाठनि पढ़ाइ उन
तन - मन कीन्हें बिरहागि के तपेला[4] हैं ।
कहै 'रतनाकर' त्यौं आप अब तापै आइ
साँसनि कौ साँसति[5] के झारत झमेला हैं ॥
ऐसे ऐसे सुभ उपदेस के दिबैयनि की
ऊधौ ब्रजदेस मैं अपेल[6] रेल-रेला हैं ।
वे तौ भए जोगी जाइ पाइ कूबरी कौ जोग
आप कहैं उनके गुरू हैं किधौं चेला हैं ॥२५॥
दोनाचल[7] की ना यह छटक्यौ कनूका जाहि
छाइ छिगुनी पै छेम-छत्र छिति छायौ है ।
कहै 'रतनाकर' न कूबर बधू-बर कौ
जाहि रंच रोचैं पानि परसि गँवायौ है ॥
यह गरु प्रेमाचल दृढ़-व्रत धारिनि कौ
जा कैं भार भाव उनहूं कौ सकुचायौ है ।
जानैं कहा जानि कै अजान ह्वै सुजान कान्ह
ताहि तुम्हैं बात मौं उड़ावन पठायौ है ॥२६॥
सुघर सलौने स्याम सुंदर सुजान कान्ह

[1]कटि में । [2]कुहरा, शीत । [3]भुला कर । [4]जल गर्म करने का पात्र । [5]कष्ट । [6]अटल । [7]द्रोणगिरि ।

करुना-निधान के बसीठ[1] बनि आए हौ।
प्रेम-प्रनधारी गिरिधारी कौ सनेसौ[2] नाहिं
होत है अँदेसौ झूठ बोलत बनाए हौ॥
ज्ञान-गुरु-गौरव-गुमान-भरे फूले फिरौ
बंचक के काज पै न रंचक बराए हौ।
रसिक-सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ
मेरी जान ऊधौ कूर-कूबरी-पठाए हौ॥२७॥
आए हौ पठाए वा छतीसे छलिया के इतै
बीस-बिसे[3] ऊधौ बीरबावन कलीच[4] ह्वै।
कहै 'रतनाकर' प्रपंच ना पसारौ गाढ़े
बाढ़े पै रहौगे साढ़े बाइस ही जीच ह्वै॥
प्रेम अरु जोग मैं है जोग छठैं-आठैं पर्‍यौ
एक ह्वै रहैं क्यौं दोऊ हीरा अरु काँच ह्वै।
तीन गुन पाँच तत्त्व बहकि बतावत सो
जैहै तीन-तेरह[5] तिहारी तीन-पाँच ह्वै॥२८॥
चाहत निकारन तिन्हैं जो उर-अंतर तैं
ताकौ जोग नाहिं जोग मंतर तिहारे मैं।
कहै 'रतनाकर' बिलग करिबै मैं होति
नीति-बिपरीत[6] महा कहति पुकारे मैं॥
तातैं तिन्हैं ल्याइ लाइ हिय तैं हमारे बेगि
सोचियै उपाय फेरि चित्त चेतवारे[7] मैं।
ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि पिय प्रान-मूरि
त्यौं-त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं॥२९॥

[1]दूत। [2]सँदेश। [3]निश्चय ही। [4]अंशभूत। [5]तीन-तेरह ... तीन-पाँच — तुम्हारे योग के तीनों गुण और पाँचों तत्त्व नष्ट हो जायँगे, अर्थात् गोपियों पर इनका कोई प्रभाव न पड़ेगा। [6]उलटी बात। [7]सचेत होकर।

हरि-तन-पानिप के भाजन दृगंचल तैं
उमगि तपन तैं तपाक करि धावै ना ।
कहै 'रतनाकर' त्रिलोक-ओक-मंडल[1] मैं
बेगि ब्रह्मद्रव[2] उपद्रव मचावै ना ॥
हर कौं समेत हर-गिरि के गुमान गरि
पल मैं पतालपुर पैठन पठावै ना ।
फैले बरसाने मैं न रावरी कहानी यह
बानी कहूं राधे आधी कान सुनि पावै ना ॥३०॥

आतुर न होहु ऊधौ आवति दिवारी[3] अबै
वैसियै पुरंदर-कृपा जौ लहि जाइगी ।
होत नर ब्रह्म, ब्रह्म-ज्ञान सौं बतावत जो
कछु इहिं नीति की प्रतीति गहि जाइगी ॥
गिरिवर धारि जौ उबारि ब्रज लीन्यौ बलि
तो तौ भाँति काहूं यह बात रहि जाइगी ।
नातरु हमारी भारी बिरह-बलाय[4] संग
सारी ब्रह्म-ज्ञानता तिहारी बहि जाइगी ॥३१॥

बिकसित बिपिन बसंतिकावली कौ रंग
लखियत गोपिनि के अंग पियराने[5] मैं ।
बौर बृंद लसत रसाल-बर बारिनि[6] के
पिक की पुकार है चबाव उमगाने मैं ॥
होत पतझार झार तरुनि समूहनि कौ
बैहरि[7] बतास लै उसास अधिकाने मैं ।
काम-बिधि बाम की कला मैं मीन-मेष कहा
ऊधौ नित बसत बसंत बरसाने मैं ॥३२॥

[1]समस्तब्रह्मांड । [2]गंगाजल । [3]दीपमालिका का उत्सव । [4]विरह-व्याधि ।
[5]विरह-ताप से पीली । [6]बाला स्त्रियां, बाटिका । [7]हवा ।

हाल कहा बूझत बिहाल परी बाल सबै
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ ।
रोग यह कठिन न ऊधौ कहिबे के जोग
सूधौ सौ सँदेस याहि तू न ठहराइयौ ॥
औसर मिलै औ सरताज[1] कछु पूछहि तौ
कहियौ कछू न दसा देखी सो दिखाइयौ ।
आह कै कराहि नैन[2] नीर अवगाहि कछू
कहिबे कौ चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ ॥३३॥
नंद-जसुदा औ गाय गोप-गोपिका की कछू
बात वृषभान-भौन हूँ की जनि कीजियौ ।
कहै 'रतनाकर' कहति सब हाहा खाइ
ह्याँ के परपंचनि सौं रंच[3] न पसीजियौ[4] ॥
आँसू भरि ऐहै औ उदास मुख ह्वै है हाय
ब्रज-दुख त्रास की न तातैं साँस लीजियौ ।
नाम[5] कौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस
स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियौ ॥३४॥*
आए लौटि लज्जित नवाए नैन ऊधौ अब
सब सुख-साधन कौ सूधौ सौ जतन लै ।
कहै 'रतनाकर' गँवाए गुन-गौरव औ
गरब-गढ़ी[6] कौ परिपूरन पतन लै ॥
छाए नैन नीर पीर-कसक कमाए उर
दीनता अधीरता के भार सौं नतन लै ।

[1] मणिमंडित मुकुटधारी श्रीकृष्ण। [2] नैन...अवगाहि—नेत्रों में जल भर कर। [3] लेशमात्र। [4] पिघलना। [5] नाम...दीजियौ—'अमुक गाँव की अमुक गोपी ने अपनी राम-राम कही है' बस इतना ही कहना अधिक नहीं। [6] गर्व रूपी गढ़।

* भाव-प्रबलता से भरी हुई कितनी मार्मिक उक्ति है !

प्रेम-रस रुचिर बिराग-तूमड़ी मैं पूरि
ज्ञान-गूदड़ी मैं अनुराग सौं रतन लै ॥३५॥

प्रेम-मद छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै 'रतनाकर' यौं आवत चकात[१] ऊधौ
मानौ सुधियात[२] कोऊ भावना भुलाई है ॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं
सारत बँहोलिनि[३] जो आँसु-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ
एक कर बंसी बर राधिका पठाई है ॥३६॥

रावरे पठाए जोग देन कौं सिधाए हुते
ज्ञान-गुन-गौरव के अति उदगार मैं।
कहै 'रतनाकर' पै चातुरी हमारी सबै
कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार मैं।
उड़ि उधिरानी[४] किधौं ऊरध उसासनि मैं
बहि धौं बिलानी कहूँ आँसुनि की धार मैं।
चूर ह्वै गई धौं भूरि दुख के दरेरनि मैं
छार ह्वै गई धौं बिरहानल की झार[५] मैं ॥३७॥

लै कै पन[६] सूछम अमोल जो पठायौ आप
ताकौ मोल तनक तुल्यौ न तहाँ साँठी[७] तैं।
कहै 'रतनाकर' पुकारें ठौर-ठौर पर
पौरि बृषभानु की हिरान्यौ मति नाठी[८] तैं ॥
लीजै हेरि आपुहीं न हेरि हम पायौ फेरि
याही फेर माहिं भए माठी दधि-आँटी तैं।

[१]चकित होते हुए। [२]भूली बात को याद करते हुए। [३]कुर्ते की बाँहों से। [४]फैल गई। [५]अग्नि की लपटें। [६]योग का संदेश। [७]पूँजी, धन। [८]नष्ट हुई।

ल्याए धूरि पूरि अंग अंगनि तहाँ की जहाँ
    ज्ञान गयौ मोहन गुमान गिरि गाँठी तैं ॥३८॥

छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कैं तीर
    गौन[1] रौन-रेती[2] सौं कदापि करते नहीं।
कहै 'रतनाकर' बिहाइ प्रेम गाथा गूढ़
    स्त्रौन रसना मैं रस और भरते नहीं॥
गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि
    लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं।
होतौ चित चाव जौ न रावरे चितावन[3] कौ
    तजि ब्रज-गाँव इतै पाँव धरते नहीं ॥३९॥

---

[1] गमन। [2] जिस रेत पर श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ रासलीला की है।
[3] चेतावनी, आदेश।

सत्यनारायण

छप्पय

जग-ब्यौहारनि भोरौ कोरौ गाम-निवासी ।
ब्रज-साहित्य-प्रवीन काब्य-गुन-सिंधु-बिलासी ।।
रचना रुचिर बनाय सहज ही चित आकरषै ।
कृष्णभक्ति अरु देसभक्ति-आनँद-रस बरषै ।।
पढ़ि हृदय-तरंग उमंग उर प्रेम-रंग दिन-दिन चढ़ै ।
सुचि सरल सनेही सुकवि श्रीसतनारायण जसु बढ़ै ।।

ब्रज-कोकिल पंडित सत्यनारायण कविरत्न का जन्म संवत् १९४१ माघ शुक्ला ३, को हुआ था। इनके पिता अलीगढ़ के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके माता-पिता इनके बचपन में ही स्वर्गस्थ हो चुके थे। इनका पालन-पोषण इनकी मौसी ने किया। यह देशी रियासतों में अध्यापिका का काम करती थीं। कुछ काल के बाद वह भी इस संसार से चल बसीं। अब सत्यनाराण बिल्कुल अनाथ हो रहे। धाँधूपुर (तहसील आगरा) के ब्रह्मचारी बाबा रघुनाथदासजी बड़े प्रेम से इनका भरण-पोषण करने लगे। बाबाजी के पवित्र जीवन का इन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। मिढ़ाकर (ज़िला आगरा) के तहसीली स्कूल से हिंदी मिडिल पास करके इनकी रुचि अँग्रेजी पढ़ने की हुई। सन् १९१० में इन्होंने बी० ए० की परीक्षा दी, किंतु फेल हो गये। इन दिनों यह 'सेंट जांस' कालिज में पढ़ते थे।

कविता के प्रति इनकी पहले से ही रुचि थी। बाद को यह कविता-प्रेम इतना बढ़ा कि इन्होंने 'साहित्य-सेवा' को ही अपने जीवन का एक-

मात्र उद्देश्य निश्चित कर लिया। यह प्रत्येक सभा-समाज में कविता सुनाने लगे। इनका कविता पढ़ने का ढँग तो इतना मनोहर था कि लोग सुन कर चित्र-लिखे से खड़े रह जाते थे।

"मेरी शारदा सदन" के अधिष्ठाता पंडित मुकुंदरामजी की बड़ी कन्या से पंडित जी का विवाह हुआ। पंडितजी थे श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त, साहित्य रसिक और सीधे-सादे ग्रामीण और श्रीमती सावित्री देवी (पंडितजी की धर्म-पत्नी) आर्य्यसमाज की कट्टर अनुयायिनी, और शुष्क विचारवाली! पृथ्वी-आकाश का अंतर! दोनों प्राणियों में कभी दाम्पत्य-प्रेम की झलक नहीं दिखाई दी। बेचारे पंडितजी कभी तो 'भयौ यह अनचाहन कौ संग' कहते हुए आह भरते थे, तो कभी 'बस, अब नहिं जाति सही' के स्वर में घंटों रोया करते थे।

उनका असह्य अंतर्नाद परमात्मा के कानों तक पहुँच गया। फल यह हुआ, कि १६ अप्रैल, सन् १९१८ को वह हिंदी-संसार को सदा के लिए सूना करके चल बसे!! उनके प्राण-पक्षी किस प्रकार उड़ गये --यह लिखने की बात नहीं हैं। अब तो छाती पर पत्थर रख लेना ही ठीक है!

सत्यनारायणजी बड़े ही भावुक, सरल और शांत प्रकृति के थे। देहाती फ़ैशन में रहा करते थे। इंदौर के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर तो कुछ स्वयं सेवकों ने उन्हें गँवार समझ कर पंडाल के अंदर ही नहीं जाने दिया था। स्वदेश-भक्ति आप के हृदय में कूटकूट कर भरी हुई थी। आपने राष्ट्रीय कविताएं जितनी भावपूर्ण, जोशीली और मधुर रची हैं, वैसी हमारी तुच्छ सम्मति में, अब तक तो नहीं बनीं, आगे की राम जाने।

महात्मा गांधी के स्तवन में उन्होंने जो कविता रची थी, उसके कुछ पद नीचे लिखे जाते हैं:

प्रेम पुनीत मार्ग के गामी, सब जग के उजियारे।
प्रभु - पद - पद्म - पराग - राग के, अलबेले अलि, प्यारे॥
हिंदू - नयन - चकोर - चंद्र तुम, नव जीवन-विस्तारक।
सहृदय-हृदय- कुमोद-खिलावन, मोद भरन उपकारक॥

मोहन प्यारे, तुमको निसि-दिन, विनय विनीत हमारी ।
हिंदू - हिंदी - हिंद देश के, बनहु सत्य हितकारी ॥

और भी :

तुमसे तुम तुमहीं लसत, और कहा कहि चितभरें ।
सिवराज, प्रताप्रउत्सर्जिनी, किन-किन सों तुलना करें ?

इस कविता ने लोगों पर जो प्रभाव डाला, वह अनिर्वचनीय था ।

सत्यनारायणजी ने 'भ्रमर-दूत' की जिस ढंग से रचना की है, वह अनूठी और सद्यः प्रभावोत्पादिनी है । श्रीकृष्ण-भक्ति के साथ ही उसमें स्वदेश प्रेम का जैसा कुछ मधुर मिश्रण हुआ है, उसे साहित्य-रसिक ही अनुभव कर सकते हैं । इनके 'उत्तर रामचरित' और 'मालती-माधव' नाटक के अनुवाद परम सरस और उत्कृष्ट हुए हैं। ये दोनों नाटक छप गये हैं । आगरे की नागरी-प्रचारिणी सभा ने इनकी फुटकर कविताओं का एक बड़ा ही सुंदर संग्रह 'हृदय-तरंग' के नाम से प्रकाशित किया है। उसके संग्रह-कर्त्ता हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी हैं ।

इसमें संदेह नहीं, कि सत्यनारायणजी ब्रजभाषा के एक महाकवि थे । इनके हृदय में हिंदी के उद्धार के लिए हमेशा ही दर्द बना रहता था । कृष्ण-प्रेम में आँखें झूमती रहती थीं । कौन जानता था, कि 'ब्रज-माधुरी-निकुंज' की एक भव्य कोकिल इतने ही स्वल्प समय में कूक कर सदा के लिए उड़ जायगी ! ब्रज-माधुरी-पूर्ण आपके कतिपय पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं :

ब्रजभाषा

दोहा

सजन सरलघनस्याम अब, दीजै रस बरसाय ।
जासों ब्रजभाषा - लता, हरी - भरी लहराय ॥१॥

भुवन-विदित यह जदपि चारु भारत भुवि[1] पावन ।
पै रसपूर्न कमंडल ब्रज - मंडल मनभावन ॥

[1] भूमि ।

परम-पुन्यमय प्रकृति-छटा जहँ विधि बिथुराई[१] ।
जग सुर-मुनि-नर मंजु जासु जानत सुघराई[२] ॥
जिहि प्रभाव-बस नित-नूतन जलधर सोभा धरि ।
सफल काम अभिराम सघन घनस्याम आपु हरि ॥
श्रीपति[३]-पद-पंकज-रज परसत जो पुनीत अति ।
आय जहां आनंद करति अनुभव सहृदय मति ॥
जुगुल चरन - अरबिंद - ध्यान - मकरंद-पान-हित ।
मुनि-मन मुदित मलिंद निरंतर बिरमत जहँ नित ॥
तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगन के रासी ।
भोरे-भारे बसत नेह-बिकसित ब्रजबासी ॥२॥
जिहि आश्रय लहि कलिमल-[४] हर तुलसी-सौरभ-जसु ।
मंजु मधुर मृदु सरस सुगम सुचि हरिजन सरबसु ॥
केसव[५] अरु मतिराम[६], बिहारी देव अनूपम ।
हरिश्चंद्र से जासु कूल कुसुमित रसाल[७] द्रुम ॥
'अष्टछाप'[८] अनुपम कदंब अघ-ओक-निकंदन ।
मुकुलित प्रेमाकुलित सुखद सुरभित जग-बंदन ॥
तुरत सकल भयहरनि आर्य-जागृति जय-सानी ।
जनमन निजबस-करनि लसति पिक भूषन-बानी ॥
बिबिध रंग-रंजित मन-रंजन सुखमा आकर ।
सुचि सुगंध के सदम खिले अगनित पदमाकर[९] ॥

[१] बिखेर दी है, छा दी है; । [२] चतुराई । [३] श्रीकृष्ण । [४] कलियुग मे किये गये पापों का नाश करने वाला । [५] ओड़छा वाले, महाकवि केशवदास । इन्होंने 'रामचंद्रिका', 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' और 'ज्ञानगीता' बनाई है । [६] महाकवि भूषण के छोटे भाई । इनके 'रसराज' और 'ललित-ललाम' रीति-ग्रंथों मे प्रसिद्ध है । [७] आम्र; सुंदर । [८] वल्लभ-कुलानुयायी आठ महाकवियो का मंडल । [९] (१) कविवर पद्माकर, जिनके 'पद्माभरण', 'गंगा लहरी' आदि ग्रंथ पसिद्ध है (२) कमलों का बन ।

जिन पराग सों चौंकि भ्रमत उत्सुकता-प्रेरे।
रहसि-रहसि रसखान रसिक अलि गुंज घनेरे॥
बरन-बरन[1] में मोहन की प्रतिमूर्ति बिराजति।
अच्छर आभा[2] जासु अलौकिक अद्भुत भ्राजति॥३॥

तिहारो को पावै प्रभु पार।
बिपुल सृष्टि नित नव विचित्र के चित्रकार-आधार॥
मकरी के सम जगत-जाल यहि, सृजत और विस्तारत।
कौतुक[3] ही में हरत ताहिं पुनि, बेद पुरान उचारत[4]॥
जग में तुम, औ तुम में सब जग, 'बासुदेव'[5] अभिराम।
सकल रंग तन बसत आपके, याही सों घनस्याम[6]॥
परम पुरुष तुम, प्रकृति नटी सँग, लीला रचत अपार।
जग[7]-व्यापन सों 'विष्णु' कहावत, अचरज, तउ अबिकार॥
जितने जात समीप, दूर अति होत जात तव ग्यान[8]।
सत्य छितिज[9] सम तरसावत नित, बिस्व-रूप भगवान॥४॥

माधव, आप सदा के कोरे।
दीन-दुखी जो तुमको जाँचत, सो दाननि के भोरे[10]॥
किंतु बात यह तुव सुभाव वे नैकहुँ जानत नाहीं।
सुनि सुनि सुजस रावरो तुव ढिग, आवन को ललचाहीं॥
नाम धरै तुमको जग-मोहन, मोह[11] न तुमकों आवै।
करुनानिधि, तुव हृदय न एकहु करुना-बुंद समावै॥

[1]अच्छर-अच्छर। [2]प्रभा, छटा। [3]निष्काम बुद्धि से लीला पूर्वक ही। [4]कहते हैं। [5](१) महाराज बसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण (२) सब में बसने वाले। [6]मेघ के समान श्याम मूर्ति; रँग-बिरंगे मेघों के समान सुंदर। [7]जग...अबिकार—यद्यपि तुम सब जगत में रम रहे हो फिर भी अविकारी ही बने हुए हो। [8]अविद्यात्मक मिथ्या ज्ञान। [9]छितिज; वह रेखा जो पृथ्वी से आकाश छूती हुई मालूम होती है। [10]धोखे में आकर। [11]प्रेम दया।

लेत एक कौ देत दूसरेहिं, दानी बनि जगमाहीं ।
ऐसो हेर-फेर[1] नित नूतन, लाग्यौ रहत सदाहीं ॥
भाँति-भाँति के गोपिन के जो तुम प्रभु चीर चुराये ।
अति उदारता सों लै वेही, द्रौपदि कों पकराये[2] ॥
रतनाकर[3] कों मथत सुधा कौ कलस आप जो पायौ ।
मंद-मंद मुसुकात मनोहर, सो देवन कों प्यायौ ॥
मत्त गयंद कुवलिया[4] के जो, खेल[5] प्रान हरि लीनें ।
बड़ी दया दरसाइ दयानिधि ! सो गजेंद्र को दीनें ॥
करिकैं निधन[6] बालि रावन कौ राजपाट जो आयौ ।
तहँ सुग्रीव बिभीषन को करि अति अहसान बिठायौ ॥
पौंडरीक[7] कौ सर्बनास करि माल-मता जो लीयौ ।
ताको बिप्र सुदामा के सिर, करि सनेह 'मढ़ि दीयौ' ॥
ऐसी 'तूमा-पलटी'[8] के गुन 'नेति-नेति' स्रुति गावैं ।
सेस महेस सुरेस गनेसहुँ, सहसा पार न पावैं ॥
इत माया अगाध सागर तुम डोबहु भारत-नैया ।
रचि महाभारत कहूं लरावत अपु[9] में भैया-भैया ॥
या कारन जग में प्रसिद्ध अति 'निबटी रकम' कहाओ !
'बड़े-बड़े तुम मठा घुँवारे', क्यों साँची खुलवाओ ॥५॥

माधव, अब न अधिक तरसैए ।
जैसी करत सदा सों आये, बुही दया दरसैए ॥

[1]इधर का उधर कर देना । [2]सौंप दिये । [3]रतनाकर . . . प्यायौ—जब देवताओं और राक्षसों ने समुद्र मथ अमृत का घड़ा निकाला तब उसके लिये आपस में झगड़ा होने लगा । विष्णु भगवान् ने तुरंत मोहिनी-रूप धारण कर राक्षसों को अपने सौंदर्य पर मोहित कर लिया और अमृत देवताओं को पिला दिया । [4]कंस का मतवाला हाथी । [5]लीलापूर्वक ही । [6]वध । [7]पुंडरीक; एक पापी राजा । [8]इसका लेकर उसको दे देना, हेर-फेर कर देना । [9]आपस ।

मानि लेउ, हम क्रूर, कुढंगी[1] कपटी, कुटिल गँवार ।
कैसे असरन-सरन कहौ तुम जन के तारनहार ।।
तुम्हरे अछत तीन-तेरह[2] यह, देस-दसा दरसावै ।
पै तुमकों यहि जनम[3]-धरे की तनकहुँ लाज न आवै ।।
आरत तुमहिं पुकारत हम सब, सुनत न त्रिभुवन राई ।
अँगुरी डारि कान में बैठे, धरि ऐसी निठुराई ।।
अजहुँ प्रार्थना यही आप सों, अपुनो बिरुद सँवारौ ।
'सत्य' दीन दुखियन की बिपदा, आतुर आइ निबारौ ।।६।।

मोहन ! कबलौं मौन गहौगे ?
निज आँखिन पै धरैं ठीकुरी, कितने और रहौगे ?
तुम देखत भारत-मानवकुल, आकुल छिन-छिन छीजै ।
कहा भयौ पाषान हृदय तुव, जो नहि तनिक पसीजै ।।
'रसना[4]' नाम भयौ अब साँचो, टेरत - टेरत हारे ।
छुट्यौ न तउ तव हृदय-कृष्णपन[5], दृग सो चले पनारे ।।
बिपति-ग्राहने ग्रस्यौ बिस्व-गज, होन चहत अनहोनी[6] ।
ऐसे समय, साँवरे, सूझी तुमकों आँखमिचौनी[7] ।।
भुवन-बिदित निज सतगुन तुमने, कहौ कहां बिसराये ।
रह्यौ सुभाव यही जो, तौ क्यों 'करुनासिंधु' कहाये ।।७।।

अब न सतावौ ।
करुनाघन इन नयनन सों, द्वै बुँदियां तौ टपकावौ[8] ।।
सारे जग सों अधिक कियौ का, हमने[9] ऐसो पाप ।
नित नव दई निर्दई बनि जो, देत हमैं संताप ।।

[1]कुकर्मी । [2]तितर-बितर । [3](भारतवर्ष में) अवतार धारण करने की । [4](१) जीभ (२) रसना, जिसमें रस न हो । [5]कालापन, कपट । [6] अनुचित । [7]आँख बंद कर छिप जाना; ध्यान न देना । [8]बरसाओ । [9] हम भारत-वासियों ने ।

साँची तुमहिं सुनावत जो हम, चौंकत सकल समाज[1]।
अपनी जाँघ[2] उघारै उघरति, बस, अपनी ही लाज।
तुम आछे हम बुरे सही, बस, हमरो ही अपराध।
करनो हो सो अजहूं कीजै, लीजै पुन्य अगाध॥
होरी सी जातीय प्रेम की फूँकि, न धूरि उड़ावौ।
जुग कर-जोरि यही 'सेत' माँगत, अलग न और लगावौ॥८॥*

बस, अब नहिं जाति सही।
बिपुल बेदना बिबिध भाँति, जो तन-मन व्यापि रही॥
कबलौं सहैं, अवधि सहिबे की कछु तौ निश्चित कीजै।
दीनबंधु, यह दीन दसा लखि, क्यों नहिं हृदय पसीजै॥
बारन[3]-दुखटारन, तारन में प्रभु, तुम बार न लाये।
फिर क्यो करुना करत स्वजन पै, करुनानिधि अलसाये॥
यदि जो कर्म-जातना[4] भोगत, तुम्हरे हू अनुगामी।
तौ करि कृपा बतायो चहियतु, तुम काहे के स्वामी॥
अथवा बिरद-बानि अपनी कछु, कै तुमने तजि दीनी।
या कारन, हम सम अनाथ की, नाथ न जो सुधि लीनीं॥
बेद बदत[5] गावत पुरान सब, तुम भय-ताप नसावत।
सरनागत की पीर तनकहूं, तुम्हैं तीर-सम लागत॥
हमसे सरनापन्न[6] दुखी कों, जाने क्यों बिसरायौ।
सरनागत-बत्सल[7] 'सत' योंही, कोरो[8] नाम धरायौ॥९॥

हे घन स्याम, कहां घनस्याम।
रज मँडराति चरन-रज कित सों, सीस धरैं अठजाम॥

[1]अपने को सभ्य माननेवाली संसार की सारी जातियां। [2]अपनी बात अपने मुँह से कहने से। [3]गजेंद्र। [4]सत्कर्मों के फल-स्वरूप कष्ट। [5]कहते हैं। [6]शरण में आया हुआ। [7]प्यार करने वाले। [8]झूठा, व्यर्थ।

* 'भारत-दुर्दशा' का इतना अच्छा पद हमारे देखने में तो नहीं आया।

स्वेत पटल लै घन, कहँ त्यागी सुरभी सुखद ललाम ।
मोरनि घोर सोर चहुँ सुनियत, मोर मुकुट किहि ठाम ।।
गरजत पुनि-पुनि, कहां बतावौ मुरली मृदु सुर-धाम ।
तड़पावत हौ तड़ितहिं छिन-छिन, पीतांबर नहिं नाम ।।१०।।†

भ्रमरदूत*

श्रीराधावर निजजन - बाधा सकल - नसावन ।
जाकौ ब्रज मनभावन, जो ब्रज कौ मनभावन ।।
रसिक-सिरोमनि मन-हरन, निरमलनेह - निकुंज ।
मोदभरन उर-सुर-करन, अविचल[1] आनँद - पुंज ।।
रँगीलो साँवरो ।।११।।

कंस मारि भू - भार-उतारन, खल - दल - तारन ।
बिस्तारन बिज्ञान बिमल, स्रुति[2] - सेतु-सँवारन ।।
जन - मन - रंजन सोहना[3], गुन-आगर चित-चोर ।
भव - भय - भंजन मोहना, नागर नंदकिसोर ।।
गयो जब द्वारिका ।।१२।।

बिलखाती, सनेह पुलकाती, जसुमति माई ।
स्याम - बिरह - अकुलाती, पाती कबहुं न पाई ।।
जिय प्रिय हरि दरसन बिना, छिन-छिन परम अधीर ।
सोचति मोचति[4] निसिदिना, निसरतु नैननु नीर ।।
बिकल, कल ना हिये ।।१३।।

[1]अटूट, नित्य एकरस । [2]स्रुति...संवारन—वैदिक धर्म का उद्धार करने वाले । [3]सुंदर । [4]छोड़ती है, गिराती है ।

†यह क्या ही भावपूर्ण पद है !

*सत्यनारायणजी का यह कृष्णभक्ति और स्वदेश-प्रेम से पूर्ण 'भ्रमरदूत' खेद है कि अपूर्ण ही मिला है । यह 'भ्रमरदूत' हमारी राय में सत्यनारायणजी को अजर-अमर बनाये रहेगा ।

पावन सावन मास नई उनई[1] घन-पाँती ।
मुनि-मन-भाई छई, रसमई मंजुल काँती[2] ॥
सोहत सुंदर चहुँ सजल, सरिता पोखर[3] ताल ।
लोल-लोल तहँ अति अमल, दादुर बोल रसाल ॥
छटा चूई[4] परै ॥१४॥

अलबेली कहुँ बेलि, द्रुमन सों लिपटि सुहाई ।
धोये - धोये पातन[5] की अनुपम कमनाई[6] ॥
चातक चलि कोयल ललित, बोलत मधुरे बोल ।
कूकि-कूकि केकी ललित, कुंजन करत कलोल ॥
निरखि घन की छटा ॥१५॥

इंद्र-धनुष अरु इंद्रबधूटिन की सुचि सोभा ।
को जग जन्म्यौ मनुज, जासु मन निरखि न लोभा ॥
प्रिय पावन पावस-लहरि, लहलहात चहुँ ओर ।
छाई छवि छिति पै छहरि[7], ताकौ ओर न छोर ॥
लसै मन मोहिनी ॥१६॥

कहूं बालिका-पुंज कुंज लखि परियत पावन ।
सुख-सरसावन, सरल सुहावन, हिय-सरसावन[8] ॥
कोकिल - कंट - लजावनी, मनभावनी अपार ।
भ्रातृ[9]-प्रेम-सरसावनी, रागति मंजु मल्हार[10] ॥
हिंडोरनि झूलतीं ॥१७॥

बालबृंद हरषत, उर - दरसत चहुँ चलि आवैं ।
मधुर - मधुर मुसुकाइ रहस[11]-बतियां बतरावैं ॥

[1]घिर आई । [2]कांति, छटा । [3]छोटा तलैया, गड्ढे । [4]निकली पड़ती है । [5]पत्तों की । [6]सुंदरता । [7]बिखर कर । [8]प्रसन्न करने वाली । [9]इस पद से सत्यनारायण की आंतरिक पवित्रता का अच्छा पता चलता है । [10]पावस मे गाने का एक राग । [11]आनंद ।

तरुवर डाल हलावहीं 'धौरी' 'धूमरि' टेरि ।
सुंदर राग अलापहीं, भौंरा चकई[1] फेरि ॥
बिबिध क्रीड़ा करैं ॥१८॥

लखि यह सुखमा[2]-जाल लाल निज बिन नँदरानी ।
हरि-सुधि उमड़ी, घुमड़ी तन उर अति अकुलानी ॥
सुधि-बुधि तजि, माथौ पकरि, करि-करि सोच अपार ।
दृगजल मिस मानहुँ निकरि, बही बिरह की धार ॥
कृष्ण-रटना लगी ॥१९॥

कृष्ण-बिरह की बेलि नई तो उर हरियाई[3] ।
सोचन-अश्रु-बिमोचन दोउ दल[4] बल अधिकाई ॥
पाइ प्रेमरस बढ़ि गई, तनतरु लिपटी धाइ ।
फैल फूटि चहुँधा छई, बिथा न बरनी जाइ ॥
अकथ ताकी कथा ॥२०॥*

कहति बिकल मन महरि[5] कहा हरि ढूढ़न जाऊं ।
कब गहि लालन ललकत[6] मन गहि हृदय लगाऊं ॥
सीरी[7] कब छाती करौं, कब सुत-दरसन पाउं ।
कबै मोद निज मन भरौं, किहिं कर धाइ पठाउं ॥
सँदेसो स्याम पै ॥२१॥

पढ़ी न अच्छर एक, ग्यान सपनें ना पायौ ।
दूध-दही चाटत में, सबरो जन्म गमायौ ॥
मात-पिता बैरी भये, सिच्छा दई न मोहि ।
सबरे दिन यौं ही गये, कहा कहे तें होहि ॥
मनहिं मन में रही ॥२२॥†

[1] खिलौने । [2] प्राकृतिक सौंदर्य की राशि । [3] हरा हो गई, ताज़ा हो गई । [4] कोंपल । [5] यशोदाजी । [6] प्रेमोत्कंठित । [7] ठंडी ।

*विरह-बेलि का क्या ही सुंदर सांगोपांग रूपक है । †यह संकेत वर्तमान

सुनी गरग[1] सों अनुसूया[2] की पुन्य कहानी ।
सीता सती पुनीता की सुठि कथा पुरानी ॥
बिसद ब्रह्म बिद्या पगी, मैत्रेयी[3] तिय-रत्न ।
सास्त्र-पारगी,[4] गारगी[5], मंदालसा[6] सयत्न ॥
पढ़ीं सब की सबै ॥२३॥
निज-निज जनम-धरन कौ फल उनने हीं पायौ ।
अबिचल अभिमत सकल भाँति सुंदर अपनायौ ॥
उदाहरनि उज्जल दियौ, जग कौ तियनि अनूप ।
पावन जस दस दिसि छयौ, उनकौ सुकृत सरूप ॥
पाइ बिद्या-बलै ॥२४ ।
नारी-सिच्छा निरादरत जे लोग अनारी ।
ते स्वदेस - अवनति - प्रचंड - पातक-अधिकारी ॥
निरखि हाल मेरो प्रथम, लेउ समुझि सब कोइ ।
बिद्याबल लहि मति परम, अबला सबला होइ ॥
लखौ अजमाइकैं ॥२५॥
कौनै भेजौं दूत, पूत सों बिथा सुनावै ।
बातन में बहराइ[7], जाइ ताकों यहँ लावै ॥
त्यागि मधुपुरी सों गयो, छाँड़ि सबन कौ साथ

स्त्री-शिक्षा के अभाव पर जान पड़ता है ।

[1]गर्ग ऋषि: ब्रज के गोपों के कुलगुरु । [2]अत्रि ऋषि की पतिव्रता स्त्री दत्तात्रेय, चंद्र और दुर्वासा इन्हीं के पुत्र थे । [3]महर्षि याज्ञवल्क्य की पत्नी; इन्होंने अपने पति से ब्रह्म-विद्या रूपी जायदाद माँग ली थी । [4]शास्त्रों में पूर्ण निपुण । [5]गर्ग मुनि की विदुषी पुत्री । इन्होंने जनक की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ किया था । [6]राजा ऋतुध्वज की रानी । इन्होंने अपने सब पुत्रों को निवृत्ति मार्ग का उपदेश देकर बाल-संन्यासी बना डाला था । [7]फुसला कर ।

सात समुंदर पै भयौ, दूरि द्वारिकानाथ ।।
जाइगो को वहां ।।२६।।
नास होइ अक्रूर[1] क्रूर तेरो बजमारे[2] ।
बातन में दै सबनि लै गयौ प्रान हमारे ।।
क्यों न दिखावत लाइ कोउ, सूरति ललित ललाम ।
कहँ मूरति रमनीय दोउ, स्याम और बलराम ।।
रही अकुलाइ मैं ।।२७।।
अति उदास, बिन आस, सबै तन-सुरति भुलानी ।
पूत-प्रेम सो भरी परम, दरसन-ललचानी ।।
बिलपति कलपति अति जबै, लखि जननी निज स्याम ।
भगत-भगत[3] आये तबै, भाये मन अभिराम ।।
भ्रमर के रूप में ।।२८।।
ठिठक्यो,[4] अटक्यौ भ्रमर देखि जसुमति महरानी ।
निज-दुख सों अति दुखी ताहि मन में अनुमानी ।।
तिहि दिसि चितवत चकित चित, सजल जुगल भरि नैन ।
हरिबियोग कातर स्रमित, आरत गदगद[5] बैन ।।
कहन तासों लगी ।।२९।।
"तेरो तन घनस्याम, स्याम घनस्याम उतै सुनि ।
तेरी गुंजन सुरलि[6] मधुप, उत मधुर मुरलि धुनि ।।
पीत रेख तव कटि बसति, उत पीतांबर चारु ।
बिपिनबिहारी दोउ लसत, एकरूप सिंगार ।।
जुगुल रस के चखा[7] ।।३०।।

[1]श्रीकृष्ण के चाचा; यही कृष्ण-बलराम को, कंस के आदेशानुसार, गोकुल से मथुरा लिवा ले गये थे। [2]बज्र से मारा हुआ; दुष्ट। [3]भागते-भागते। [4]ठहर गया। [5]भरे हुए गले से निकले वचन। [6]सुरीली, मीठी। [7]चखने वाले, रसिक।

याही कारज निज प्यारे ढिग तोहिं पठाऊं ।
कहियो वासों बिथा सबै जो अबै सुनाऊं ॥
जैयौ पटपद, धायकैं, कहि निज कृपा बिसेस ।
लैयौ काम बनायकैं, दैयौ यह संदेस ॥
सिदौसी[1] लौटियो ॥३१॥

जननी[2] जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहुँ तें प्यारी ।
सो तजि सबरो मोह साँवरे, तुमनि बिसारी ॥
का तुम्हरी गति-मति भई, जो ऐसो बरताव ।
किधौं नीति बदली नई, ताको परयौ प्रभाव ॥
कुटिल बिष कौ भरयौ ॥३२॥

माखन कर पौंछन सों चिक्कन चारु सुहावत ।
निधुबन स्याम तमाल, रह्यौ जो हिय हरसावत ॥
लागत ताके लखन सों, मति चलि बाकी ओर ।
बात लगावत सखन सों, आवत नंदकिशोर ॥
कितहुँ सो भाजिकैं ॥३३॥*

वुही कलिंदी-कूल-कदंबन के बन छाये ।
बरन-बरन के लता-भवन मनहरन सुहाये ॥
वुही कुंद की कुंज ये, परम प्रमोद-समाज ।
पै मुकुंद बिन बिपमये[3], सारे सुखमा-साज ॥
चित्त वाँहीं[4] धरयौ ॥३४॥

लगत पलास उदास, असोक सोक में भारी ।
बौरे बने रसाल, माधवीलता दुखारी ॥
तजि-तजि निज प्रफुलितपनौं बिरह-बिथित अकुलात ।

[1]जल्दी । [2]जननी...प्यारी—इस श्लोकार्द्ध की प्रतिच्छाया है—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' । [3]विष के समान घातक । [4]वहीं पर ।

* इस पद में विलक्षण माधुर्य और प्रसाद गुण है !

जड़ हूं है चेतन मनों, दीन मलीन लखात ।
एक माधौ बिना ॥३५॥

नित नूतन तृन डारि सघन बंसीबट छैयां ।
फेरि-फेरि कर-कमल, चराईं जां हरि गैयां ॥
ते तित सुधि आंतहीं करत, सब तन रहीं[1] झुराय ।
नयन स्रवत जल, नहिं चरत, व्याकुल उदर अघाय ॥
उटाये म्हौं[2] फिरैं ॥३६॥

बचन-हीन ये दीन गऊ दुख सों दिन बितवति ।
दरस-लालसा लगी चकित-चित इत-उत चितवति ॥
एक संग तिनको तजत, अलि कहियौ, "ऐ लाल ।
क्यों न होय निज तुम लजत[3] जग कहाय गोपाल[4] "॥
मोह[5] ऐसौ तज्यौ ॥३७॥

नील कमल-दल स्याम जासु तन सुंदर सोहै ।
नीलांबर बसनाभिराम[6] विद्युत मन मोहै ॥
भ्रम में परि घनस्याम के, लखि घनस्याम अगार ।
नाचि-नाचि ब्रजधाम के, कूकत मोर अपार ॥
भरे आनंद में ॥३८॥

यहँ कौ नव नवनीत मिल्यौ मिसरी अति उत्तम ।
भला सके मिलि कहा सहर में सद[7] याके सम ॥
रहै यही लालो[8] अजहुँ, काढ़त यहिं जब भोर[9] ।
सूखो रहत न होइ कहुँ, मेरो माखन - चोर ॥
बंध्यौ निज टेव[10] कौ ॥३९॥

या बिनु गो-ग्वालनु को हित की बात सुझावै ।

[1] सूख गई है । [2] मुँह । [3] शर्माते हो । [4] गौओं के पालने वाले । [5] ममता, प्रेम । [6] सुंदर वस्त्र । [7] सद्यः, ताज़ा । [8] लालसा, चाह । [9] सबेरा । [10] आदत ।

अरु स्वतंत्रता; समता, सहभ्रातृता[1] सिखावै ॥
जदपि सकल बिधि ये सहत, दारुन अत्याचार ।
पै नहिं कछु मुख सौ कहत, कोरे[2] बने गँवार ॥
कोउ अगुआ[3] नहीं ॥४०॥*
भये संकुचित हृदय भीरु अब ऐसे भय में ।
काऊ कौ बिस्वास न निज जातीय उदय में ॥
लखियत कोउ रीति न भलो, नहिं पूरब-अनुराग ।
अपनी[4]-अपनी ढापुली, अपनो-अपनो राग ॥
अलापैं जोर मों ॥४१॥
नहिं देसीय भेष-भावनु की आसा कोऊ ।
लखियत जो ब्रजभाषा, जाति हिरानी[5] सोऊ ॥
आस्तिक बुधि-बंधन नसे, बिगरी सब मरजाद ।
सब काऊ के हिय बसे, न्यारे - न्यारे स्वाद ॥
अनोखे ढंग के ॥४२॥
बेलि नवेली[6] अलबेली[7] दोउ नम्र[8] सुहावैं ।
तिनके कोमल सरल भाव कौ सब जस गावैं ॥
अबकी गोपी मदभरी, अधर[9] चलै इतराय ।
चार दिना की छोहरी, गई ऐसी गरवाय ॥
जहां देखौ तहां ॥४३॥
गोबरधन कर - कमल धरि जो इंद्र लजायौ ।
तुम बिनु सो तिहिं कौ बदलौ अब चहत चुकायौ ॥

[1]भाईचारा । [2]बिलकुल ही निरक्षर । [3]नेता । [4]अपनी...राग—जिसे जो अच्छा लगता है, वह वही करता है; मनमुखीपन । [5]खोई जाती है । [6]नई लता । [7]स्त्री । [8](१) झुकी हुई; (२) शील-संकोचवाली । [9]अधर...इतराय—मस्ती से, किसी को कुछ भी न समझती हुई, मार्ग-कुमार्ग पर जा रही है ।

*वर्त्तमान देश-दशा का क्या ही सजीव सुचारु चित्र है !

नहिं बरसावत सुघन अब, नियमपूर्वक नीर ।
जासों गोकुल[1] होत सब, दिन - दिन परम अधीर ॥
नीर सपनो भयौ ॥४४॥

गोरी को गोरे लागत जग अतिहीं प्यारे ।
मो[2] कारी को कारे तुम नयननु के तारे ॥
उनकों[3] तो संसार सब, मो दुखिया कों कौन ।
कहिए, कहा विचार है, जो तुम साधी मौन ॥
बने अपस्वारथी ॥४५॥

पहले को सो अब न तिहारो यह बृंदाबन ।
याके चारों ओर भये बहुबिधि परिवर्तन ॥
बने खेत चौरस नये, काटि घने बनपुंज ।
देखन कों बस रहि गये, निधुबन[4] सेवाकुंज[5] ॥
कहां चरिहैं गऊ ॥४६॥

पहली-सी नहिं जमुनाहू में अब गहराई ।
जल कौ थल, अरु थल कौ जल अब परत लखाई ॥
कालीदह कौ ठौर जहं, चमकत उज्ज्वल रेत ।
काछी माली करत तहं, अपने-अपने खेत ॥
घिरे झाऊनि सों ॥४७॥

नित नव परत अकाल, काल कौ चलत चक्र चहुं ।
जीवन कौ आनंद न देख्यौ जात यहां कहुं ॥
बढ़्यौ यथेच्छाचार[6]-कृत, जहं देखौ तहं राज ।

[1](१) ब्रज (२) गोवंश। [2]मो...तारे—मुझ काली-कलूटी को, भैया, तुम जैसे काले रंगवाले ही अच्छे लगते हैं; भारत-माता को काले भारतीय ही अच्छे लगते हैं, विलायती गोरे नहीं ! [3]उन गोरों को। [4]एक कुंज, जहां श्रीस्वामी हरिदासजी रहते थे। [5]एक कुंज, जहां श्रीहितहरिवंशजी रहते थे। [6]मनमुखीपन ।

होत जात दुर्बल बिकृत[1], दिन-दिन आर्य-समाज ॥
दिनन के फेर सों ॥४८॥
जे तजि मातृभूमि सों ममता, होत प्रवासी[2] ।
तिन्हैं[3] बिदेसी तंग करत दै बिपता खासी ॥
नहिं आये निरदय दई, आये गौरव जाय ।
साँप[4]-छछूँदर-गति भई, मन-हीं-मन अकुलाय ॥
रहे सब-के-सबै ॥४९॥
टिमटिमाति जातीय जोति जो दीप-सिखा-सी ।
लगत बाहिरी ब्यारि[5] बुझन चाहत अबलासी ॥
सेष न रह्यो सनेह कौ, काहू हिय में लेस ।
कासों कहिए गेह कों, देसहि में परदेस ॥
भयौ अब जानिए ॥५०॥

दोहा

वह मुरली अधरान की, वह चितवन की कोर ।
सघन कुंज की वह छटा, अरु वह जमुन-हिलोर[6] ॥५१॥
पीतपटों लिपटाय कैं, लै लकुटी[7] अभिराम ।
बसहु मंद मुसिक्याय उर, सगुन रूप घनस्याम ॥५२॥
आवौ, बैठौ, हँसौ प्रिय, जातें बढ़ै उछाह ।
हम पागल प्रेमीनु कों, और चाहिए काह ॥५३॥

[1]कुछ का कुछ; नष्ट-भ्रष्ट। [2]अपने देश को छोड़ कर परदेश में रहने वाले। [3]तिन्हैं...खासी—यह चरण 'दक्षिण' अफ्रीका के दुखी प्रवासियों पर लिखा गया जान पड़ता है। [4]दुविधा की अवस्था, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता; कहते हैं, जब साँप-छछूँदर (एक चूहा) को पकड़ लेता है तब उस पर बड़ी आपत्ति आ जाती है। खा ले, तो मर जाता है और छोड़ दे, तो अंधा हो जाता है। 'भई गति साँप-छछूँदर केरी'—तुलसी। [5]बाहरी, विदेशियों की। [6]तरंग। [7]लकड़ी, छड़ी।

करम-धरम-नित-नेम कौ, सब बिधि देख्यौ तार[1] ।
पै असार संसार में, एक प्रेम ही सार ॥५४॥
चित चिंता तजि, डारिकैं भार जगत के नेम ।
रे मन, स्यामा-स्याम की, सरन गहौ करि प्रेम ॥५५॥
श्रीराधापति माधव, श्रीसीतापति धीर ।
मत्स आदि अवतार नित, नमौं, हरहु भवपीर[2] ॥५६॥*
रेवति-प्रिय[3] मूसलहली[4], बला सिरी[5] बलराम ।
बंदौं जग व्यापक सकल, कृष्णाग्रज[6] सुखधाम ॥५७॥
भव-बाधा गाधा[7]-हरन, राधा राधापीय ।
दुखदारिद दरि, बिस्तरहु, मंगल मेरे हीय ॥५८॥
श्रीराधा बृषभानुजा, कृष्ण प्रिया हरिसक्ति[8] ।
देहु अचल निज पदन की, परम पावनी भक्ति ॥५९॥
मकराकृत कुंडल स्रवन, पीतबरन तन ईस ।
सहित राधिका मो हृदय, बास करौ गोपीस ॥६०॥
'क्यों पीवहिं मो चरन-रस, मुनी पियूष बिहाय ।'
यह जानन बालक हरी, चूसत स्वपद[9] अघाय ॥६१॥†
चंद्र-कमल कौ जगत में, अनुचित बैर कहात ।
यासों हरि निजपद कमल, बिधु-मुख हेत लखात ॥६२॥

[1]भेद । [2]सांसारिक दुःख । [3]रेवतीजी के पति । [4]मूसल और हल ही जिनके अस्त्र हैं । [5]श्री । [6]श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता वलरामजी । [7]अथाह दुःख । [8]भगवान् की आह्लादिनी शक्ति । [9]अपने चरण को ।

*इस दोहे के पहले चरण में एक मात्रा कम होती है, किंतु संस्कृत के नियमानुसार संयुक्ताक्षर 'श्री' के पहले 'माधव' के 'व' को दीर्घ मान लेने से छंद ठीक हो जाता है ।

†प्रायः शिशु अपने पैर के अँगूठे को मुँह से चूसने लगते हैं; यहां बालक कृष्ण पर यह अनूठी उक्ति घटाई गई है ।

'करौं जगत पावन सकल,' सोचि जनौं मन एह ।
जदपि निपट निरगुन[1] तदपि, धरत सगुन हरि देह ॥६३॥
जदपि समल[2] जमलारजुन,[3] लह्यो मुनी कौ साप ।
परसि कृष्ण ऊखल बंध्यौ, सुरगहिं गये सदाप[4] ॥६४॥
अरे कृष्ण, दधि-मथनिया, क्यों डारत कर, तात ?
'चैंटी जो जामें गिरी, तिनहिं निकारन, मात !' ॥६५॥
पीतबसन घनस्याम तन, ऐसो सोभित होत ।
मनहुँ सघन घनस्याम में, दामिनि-दमक उदोत ॥६६॥
सोहत राधा - चंद्रमुख, किरन हँसी - मृदुकोर ।
लागति जनु घनस्याम के सखि थिर[5] नयन चकोर ॥६७॥
सोहत हरि गोपीनु सँग, रास करत जा काल ।
मानहुँ मोतीमाल मधि, नीलम[6] लसत बिसाल ॥६८॥
मृगमद, गरबहु[7] जानि जनि, 'मोर सुगंध सुहात' ।
तुम किरात[8] के बान सों, मरवायौ निज तात[9] ॥६९॥
'प्यारो रवि नीचें गिरत, कबहूं देखौं मैं न' ।
मन-मलिनी[10] यों कमलिनी, मींचत[11] स्वकमल-नैन ॥७०॥
कहा करौं, कहँ जाउँ सखि, कैसे बिलपौं बीर ।
बिरहअनल सों दग्ध हिय, कहौं, काहिं निज पीर ॥७१॥
पद हू में काँटौ लग्यौ, करत बिकल दै पीर ।

[1]मायात्मक सत्त्व, रज और तमोगुण से रहित । [2]पापी । [3]अर्जुन वृक्षों का जोड़ा । वृक्ष पूर्व जन्म में कुबेर के पुत्र थे । इनके नाम नलकूबर और मणिग्रीव थे । नारदीय शाप से इन्हें वृक्ष-योनि में आना पड़ा । श्रीकृष्ण ने इन्हें शाप-मुक्त किया । [4]सदर्प, मानसहित । [5]टक लगाये हुए । [6]नीले रंग का एक मणि । 'सिया सोने की अँगूठी, रामनीलम नगीना है'—ललित० । [7]घमंड करो । [8]बहेलिया, शिकारी । [9]पिता, अर्थात् मृग । [10]उदास । [11]बंद कर लेती है, रात को कमल का फूल बंद हो जाता है ।

जा जन के हिरदय छिद्यौ, ताकौं कल कस बीर ॥७२॥*
सुमिरत-सुमिरत नाथ कों, कठिन सोक कौ सूल ।
टूक - टूक हीयो करै, अजहूं सालत हूल[1] ॥७३॥
गई रैनि, आये न पिय, सखि मम जीवनप्रान ।
बिरह आगि कों चहक[2] कैं, प्रान करत प्रस्थान ॥७४॥
कहुरे कागा, परमप्रिय, प्रिय आवन की बात ।
तिन आये हौं देउँगी, तोहिं दूध अरु भात ॥७५॥†
माधव, तेरे बिरह में, तज्यौ सकल निज बेस ।
नीर - भरे ताके नयन, धूरि - धूसरित केस ॥७६॥§

सवैया

कोमल जो नवफूल खिले, हिय बेधि बिधे ! दुख-तार पिरोये ।
देस दरिद्र दुखी फिर हूं, तुम ताहू पै कौन नसा नहिं भोये[3] ॥
बिप्र सुदामा कों हेरि इतो, अपनो जन जानि दयानिधि, रोये ।
भारत गारत[4] हेरि, कितै, करुना तजिकैं करुनानिधि, सोये ॥७७॥
सुखकारक, दारक[5] दारिद के, औ निवारक[6] जो भवफंदन के ।
छल-छारक[7], जारक[8] जालन के, पुनि टारक जो दुख-द्वंदन के ॥
भय-हारक, कारक काज सबै, सुप्रसारक[9] प्रेम के बंधन के ।
रहु रे मन, तू पद-पंकज में, बृषभानु-सुता नँद-नंदन के ॥७८॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

[1]हूक, दर्द की कसक। [2]जल कर। [3]चूर हुए। [4]नष्ट, बरबाद। [5]विदारक; चीरने फाड़ने वाले। [6]रोकने वाले, काटने वाले। [7]भस्म कर देने वाले। [8]जलाने वाले। [9]फैलाने वाले, विकसित करने वाले।

*इस दोहे में पूर्वीभाषा का यह 'कस' शब्द ब्रजभाषा-रसिकों को कुछ कसकता-सा है।

†लोक-प्रसिद्ध है, कि कौए के बोलने से प्रियागमन की भावी सूचना मिलती है।

§यहां दूती श्रीकृष्ण को विरहिणी राधिका की दशा सुना रही है।

उन पुस्तकों के नाम, जिनकी इस ग्रंथ के संकलन करने में, प्रसंगानुसार चर्चा की गई है :—

१. सूरसागर—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ; २. सूरसागर—बा० राधाकृष्णदास; ३. संक्षिप्त सूरसागर—प्रो० बेनीप्रसाद, एम० ए०; ४. चौरासी वैष्णवों की वार्ता; ५. दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता; ६. भक्तमाल—नाभाकृत; ७. भक्तमाल—प्रतापसिंह; ८. उत्तरार्द्ध भक्तमाल—भारतेंदु हरिश्चंद्र; ९. नव भक्तमाल—गोस्वामी राधाचरण; १०. मिश्रबंधुविनोद—मिश्रबंधु; ११. शिवसिंह सरोज—ठाकुर शिवसिंह सेंगर; १२. कविता-कौमुदी भाग १ और २—पं० रामनरेश त्रिपाठी; १३. हिंदी नवरत्न—मिश्रबंधु; १४. नंददास की रासपंचाध्यायी—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी; १५. नंददास की रासपंचाध्यायी और भ्रमरगीत—बा० बालमुकुंद गुप्त; १६. नागर समुच्चय (श्रीनागरीदास कृत); १७. सुख सागर तरंग (देव कृत)—पं० बालदत्त मिश्र; १८. बिहारी की सतसई (भूमिका और संजीवन भाष्य)—पं० पद्मसिंह शर्मा; १९. बिहारीबोधिनी—लाला भगवानदीन; २०. देव और बिहारी—पं० कृष्णबिहारी मिश्र, बी० ए०, एल्० एल्० बी०; २१. ध्रुवग्रंथावली—(भारत जीवन); २२. सुजान रसखान—(भारत जीवन); २३. प्रेमवाटिका—(रसखान कृत)—पं० किशोरीलाल गोस्वामी; २४. रागरत्नाकर (वेङ्कटेश्वर प्रेस, बंबई); २५. भ्रमोच्छेदक—पं० गोकुलप्रसाद शर्मा; २६. निंबार्कप्रभा—महात्मा हंसदासजी; २७. भगवत रसिक की बानी—महात्मा भगवानदासजी; २८. सरस-मंजावली और ललितप्रकाश (सहचरिशरण कृत); २९. सुजानसागर (आनंदघन कृत)—भा० हरिश्चंद्र; ३०. विरहलीला (आनंदघन कृत)—बा० काशीप्रसाद जायसवाल; ३१. लघुरसकलिका—ललितकिशोरी; ३२. ब्रज-विहार—नारायण स्वामी; ३३. भा० हरिश्चंद्र का जीवन चरित—बा० राधाकृष्ण दास; ३४. भा० हरिश्चंद्र की ग्रंथावली—(खड्गविलास प्रेस,

बाँकीपुर); ३५. हृदयतरंग (सत्यनारायण कृत) नागरी-प्रचारिणी सभा, आगरा; ३६. श्रीराधासुधाशतक (हठीकृत); ३७. उद्धवशतक—जगन्नाथदास 'रत्नाकर', बी० ए०; ३८. गदाधर भट्ट की बानी (हस्तलिखित); ३९. स्वामी हरिदास कृत सिद्धांती पद तथा केलिमाला (हस्तलिखित); ४०. हितचतुरासी और श्रीहितजी के सिद्धांती पद (हस्तलिखित); ४१. सूरदास मदनमोहन के फुटकर पद (हस्तलिखित); ४२. व्यासजी की बानी (हस्तलिखित); ४३. युगलशतक श्रीभट्ट कृत (हस्तलिखित); ४४. छद्म लीलाएं—हित वृंदावनदास कृत (हस्तलिखित); ४५. कृष्णदास जी के पद; ४६. परमानंददासजी के पद (हस्तलिखित); ४७. कुंभनदासजी के पद (हस्तलिखित); ४८. गुणमंजरीदास कृत पदावशेष और छद्म—गो० राधाचरण; ४९. हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखकों के एतत्संबंधी फुटकर लेख, समालोचनाएं आदि ।